मूल्य — दस रुपये

प्रथम संस्करण — अक्तूबर, १९६०

प्रकाशक — राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मुद्रक — हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

भूमिका

आसेतु-हिमाचल और अटक से कटक तक इस विस्तृत परिपावन भारत-भूमि में निवसित महर्षियों का सत्य-धर्म केवल एक है, और वह है हिन्दू धर्म। हिन्दुओं का विश्वास है कि ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चार वेद स्वयंभूत हैं। इन वेदों में कर्मज्ञान और भक्ति का विशद विवरण है। उन्हीं वेदों का अनुसरण करते हुए भगवद्गीता उद्घोषित करती है कि निष्काम कर्म करो। भक्त भगवान् के सगुण रूप की उपासना करते हुए निष्काम कर्म से अपने चित्त को शुद्ध करता है और सारा जगत् ईश्वरमय देखता और परमानन्दानुपलब्धि में डूब जाता है। ज्ञानी समझता है, यह देह अनित्य है, ब्रह्म ही नित्य है, जीवात्मा और परमात्मा की एकता ही है मोक्ष। यों चिन्तन करके तथा ध्यान लगाकर वह निर्गुण ब्रह्म में लीन होता है। वेदों की अनेक शाखाएं हैं। एक-एक शाखा में अलग-अलग उपनिषद् हैं जिनमें वेदों के सूत्रों और तत्त्वों की विशद विवेचना है। ओंकार, प्रणव, अष्टाक्षर, पञ्चाक्षर, षोडशनाम-मन्त्र, राम-मन्त्र, पंचाक्षर, गायत्री आदि विशिष्ट मन्त्रों का विश्लेषण करके उपासना-मार्ग के नियम भी भारतीय धर्म-ग्रंथों में बताए गए हैं। इनके अतिरिक्त मुक्ति-पद पाने के उपाय, उपासना-क्रम, समाधि-भेद, सप्त भूमिका के रूप, महद् वचनों का सार तथा अन्य विशिष्ट तत्त्वों का वर्णन उन ग्रंथों में महान् महर्षियों ने किया है।

कठिनाई यह है कि उपर्युक्त उपनिषद् जैसे दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन करना सामान्य जनता की बुद्धि के परे की बात है। अतएव उक्त ग्रंथों में वर्णित गूढ़-गंभीर विषयों की सरल रीति से विवेचना करने के लिए अष्टादश पुराणों की रचना की गई। इनमें मुख्यतः उपनिषदों के तत्त्व बताए गए हैं। पुराणों में परम प्रसिद्ध और जनप्रिय पुराण है भागवत। संस्कृत में दो भागवत हैं, एक विष्णुभागवत, दूसरा देवी-भागवत। भागवत का रूपान्तर कई भाषाओं में हुआ है। महापण्डित श्री उल्लूर, एस. परमेश्वर अय्यर का कथन है कि विष्णु-भक्ति के उत्तम ग्रंथों में विष्णु-भागवत प्रमुख ग्रंथ है।[1]

भागवत में विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों की कथा का वर्णन है। पूर्वोक्तानुसार श्री कृष्ण के जन्म और उनके चरित्र की पूर्ण कथा, ज्ञान और भक्ति के उपदेश, मोक्ष-प्राप्ति आदि अनेक विषय रोचक भाषा में सुन्दर ढंग से लिखे गए हैं। [illegible] भागवत की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं, "पुराणों में सबसे उत्तम भागवत है। यद्यपि [illegible] आदि उत्तम ग्रंथ हैं तो भी आत्मतत्त्व जानने का सरल मार्ग दूसरे ग्रंथों की अपेक्षा इसमें विशद तथा भावात्मक ढंग से लिखा गया है।" आगे वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य का

---

१. केरल-भाषा चरित्रम्, भाग ३, पृ० २२४, ले० उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर।

मुक्ति पाने का मार्ग व्यक्तिगत होता है। भागवत की यही विशेषता है कि उसमे सब प्रकार के मनुष्यो को सरल मार्ग से मुक्ति पाने के उपाय बताए गए है।[1] इस पुस्तक के आधार पर भारत की विभिन्न भाषाओ मे भक्तकवियो ने सुन्दर-सुन्दर रचनाए रची है।

हिन्दी और मलयालम के मध्यकालीन कृष्ण-भक्त कवियो ने जो काव्य रचे उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध मे किया गया है। इन कवियो के दृष्टिकोण मे किन-किन बातो की समानता है और किनमे अन्तर—इसकी भी सोदाहरण विवेचना आगे के पृष्ठो मे की गई है। स्थल का व्यवधान और वातावरण की भिन्नता होने पर भी दोनो भाषाओ के कवियो की कृतियो मे भाव-साम्य और विषय की एकता है। परन्तु उनकी प्रतिपादन-पद्धति और विचारधारा का अन्तर निस्सदेह एक मनोरजक विषय हो सकता है। साहित्यिक अन्वेषण की दृष्टि से भी इस विषय का महत्त्व कम नही कहा जा सकता। अस्तु।

मलयालम के कवियो की रचनाओ का अध्ययन करने से पूर्व उसके पद्य-साहित्य की सक्षिप्त रूपरेखा पर दृष्टि डालना समीचीन होगा। इससे प्रस्तुत विषय को हृदयगम करने मे सुविधा होगी।

प्रस्तावना

कई वर्षों से भक्त-कवियों की कृतियों के अध्ययन-मनन में मेरा मन रमा हुआ था। पाच वर्ष तक घरबार तक छोडकर साधुओं की संगति में अपना समय बिताता रहा, परन्तु प्रबल माया के प्रभाव से मुझे फिर सासारिक बन्धनों में फसना पडा। मेरे मन में जो भक्ति-भावना सुप्तावस्था में पहले से विद्यमान थी वह कुछ समय के बाद धीरे-धीरे पुन जागरित होने लगी। फलत भारत के विविध प्रान्तों में भक्त-जनों के उपदेश तथा उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं का अध्ययन मैंने किया। उसीके परिणाम-स्वरूप हिन्दी तथा मलयालम के प्रमुख कृष्णभक्त कवियों की प्रधान कविताओं का प्रथम तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहा हू।

सबसे पहले मुझे लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर डा० दीनदयालु जी गुप्त से इस विषय को चुनने की प्रेरणा मिली। इस ग्रथ के विषय-विभाजन और विविध प्रसगों के शीर्षकों का चुनाव भी उन्हींके प्रसिद्ध ग्रथ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार ही किया गया है। हिन्दी-भाषा के भक्तकवियों के विषय में प० रामचन्द्र शुक्ल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० मुशीराम शर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, डा० ब्रजेश्वर वर्मा आदि अनेक विद्वानों ने अमूल्य ग्रन्थ तथा खोजपूर्ण लेख लिखे हैं, परन्तु मलयालम भाषा के कृष्ण-भक्तों के विषय में कोई भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक नहीं लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी के समान मलयालम में भी कृष्ण-भक्तों की बहुत-सी रचनाए हैं—मुक्तक तथा प्रबन्ध के रूप में बहुत-कुछ लिखा गया है। अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सन् १६६२ से १७२८ तक हिन्दी में अधिकतर कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी मुक्तक काव्य की रचना हुई। इतने ही समय में मलयालम में भी मुक्तक के अतिरिक्त दस से अधिक प्रबन्ध-काव्य और खण्ड-काव्य लिखे गए।

मलयालम के कृष्ण-भक्त और राम-भक्त कवियों के बीच में आदर्श की भिन्नता नहीं है। राम का वर्णन करते समय जिन विशेषताओं का प्रयोग किया गया है उन्हींका प्रयोग कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण भगवान् की स्तुति करने में किया है। दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रान्त के भक्तों में 'शैव' और 'वैष्णव' जैसा साम्प्रदायिक भेद नहीं है। दोनों भक्त भस्म भी लगाते हैं और चन्दन भी। उपास्यदेव के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत भी नहीं है। कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित रचनाओं में सबसे श्रेष्ठ प्राचीन ग्रन्थ भागवद्गीता

है। इसका रूपान्तर सबसे पहले मलयालम भाषा मे किया गया।[1] कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी कविताओ का मलयालम भाषा मे बाहुल्य है, जिसके पर्याप्त प्रमाण इस ग्रन्थ मे दिए गए है। हिन्दी मे कृष्ण-साहित्य का प्रमुख स्थान है ही। अत पी-एच० डी० उपाधि के लिए ग्रन्थ के रूप मे दोनो भाषाओ के कृष्ण-भक्त कवियो के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास मैने किया है। इसके पहले दक्षिण तथा उत्तर की भाषाओ की कृतियो का तुलनात्मक अध्ययन उपर्युक्त उपाधि के लिए किसीने भी नही प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत कृति मे दोनो भाषाओ के कवियो की कृतियो मे परिलक्षित समानता और असमानता का दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि दोनो भाषाओ की रचनाए कई बातो मे एक-सी है, तो भी भगवान् कृष्ण के रूप का चित्रण करने मे प्रत्येक भाषा के कवियो के अपने-अपने दृष्टिकोण अलग है। यदि हिन्दी मे सूरदास ने कृष्ण का बाल-रूप चित्रित करने मे अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की है तो श्री एजुत्तच्छन ने श्री कृष्ण की गम्भीर प्रकृति उदार भाव, भक्त-वात्सल्य आदि के चित्रण मे कमाल दिखाया है। श्री एजुत्तच्छन, श्री चेरु-श्शेरी नपूतिरि, श्री कुचन नप्यार आदि ने श्री कृष्ण को आततायियो के सहारक, प्रजा-परिपालक, तरुणियो के प्रेमी, गोपालको के सखा, नन्द के नन्दन, ज्ञानियो के तत्त्वस्वरूप कर्ममार्गियो के विराट् स्वरूप, और देहिया के आत्मा के रूप मे चित्रित किया है। कृष्ण के चरित्र को लेकर इन लोगो ने मानव-जीवन के सारे पहलुओ पर प्रकाश डाला है और यह सिद्ध किया है कि कृष्ण का अवतार ही पूर्णावतार है। इन कवियो के समकालीन सूर-दास और परमानन्ददास आदि हिन्दी-कविया की रचनाए श्री कृष्ण की बाल तथा किशो-रावस्था की घटनाओ के वर्णनो तक ही सीमित है। सूरदास ने कृष्ण और राधा के रूप, सौन्दर्य उनकी चेष्टाए, यमुना-तट, वशी वट, निकुज, गोचारण, वन-विहार, चोरी, नट-खटी, प्रेम-प्रसग आदि को अपनी रचनाओ का विषय बनाया है। इन्होने जीवन की गभीर समस्याओ पर, मलयालम के कवियो के समान प्रकाश नही डाला। तो भी जिन अवस्थाओ के विषय मे इन्होने लिखा है उनकी बराबरी कोई कवि नही कर सकता। दो।सर, प्रभा-

है। शृंगार तथा वात्सल्य-रस-प्रधान कविताएं लिखने में सूरदास तथा चेरुश्शेरी नपूतिरि बेजोड़ हैं। भक्तिरसमयी कविताओं में सूर, एजुत्तच्छन और पून्तानम नपूतिरि की कविताएं उत्तमोत्तम हैं। हिन्दी के कवियों की भाषा ब्रज है। मलयालम कवियों की रचनाएं भी शुद्ध तथा परिमार्जित भाषा में लिखी गई हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों की प्रचुरता हम इन सभी कृतियों में पाते हैं।

उपासना-क्षेत्र में दोनों भाषाओं के कवियों में हम साम्य देखते हैं। सूरदास, रामपुरत्तु वारियर आदि कवियों ने कृष्ण का भजन सख्य-भाव से किया है। पून्तानम नपूतिरि ने तुलसीदास के समान सेव्य-सेवक-भाव से कृतियां रची हैं। श्री एजुत्तच्छन ने सामीप्य आदि मुक्ति की चार अवस्थाओं का वर्णन करके अन्त में कहा है कि मुझमें और भगवान् में कोई अन्तर नहीं।

मलयालम और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों का 'तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करना ही इस कृति का मुख्य उद्देश्य है, परन्तु साथ में उनकी उन रचनाओं का भी, जिनमें कृष्ण की महिमा और भक्तवत्सलता वर्णित है, रसास्वादन कराने की चेष्टा की गई है।

इस अध्ययन में जिन महान् व्यक्तियों से प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिली है उनमें सर्वप्रथम गुरुदेव डा० दीनदयालु जी गुप्त और मित्र श्री प्रेमनारायण जी टंडन हैं। मलयालम भाषा के कवि तिलक वटक्क कूर राजराज वर्मा से भी बड़ी सहायता मिली है। इन सभी के प्रति लेखक अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

जिन अगणित आचार्यों, सहृदय लोगों तथा सच्चे मित्रों के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हो सका, जो ज्योतिर्मयी शक्ति सर्वथा प्रेरणा देती रही उन सबका स्मरण करते हुए यह कृति सज्जनों के सामने लेखक प्रस्तुत करता है।

—लेखक

विषय-सूची

○ ●

मलयालम भाषा के पद्य-साहित्य की रूपरेखा

(प्राचीन काल से लेकर श्री कुञ्चन नंप्यार तक)

१७२८ ई० तक

दक्षिण भारत के सुदूरवर्ती दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश में स्थित केरल प्रान्त प्रकृति देवी का क्रीडा-स्थल है। उसके उत्तरपूर्व भाग में सह्य पर्वत एक प्रहरी के समान खड़ा है। पश्चिम में अरब सागर है और उसका दक्षिण भाग सुप्रसिद्ध 'कन्याकुमारी'-अरबसागर, हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी—इन तीनों का संगम-स्थल है। हजारों-लाखों यात्री यहां आकर सागर-स्नान करते हैं और स्थानीय मन्दिर की मनोमोहिनी तथा उज्ज्वल मूर्ति को देख चकित रह जाते हैं। केरल प्रदेश दर्शकों के लिए एक वाटिका के समान प्रतीत होता है। यहां का नारियल कल्पवृक्ष ही है। कालीमिर्च, रबड़, चाय और कहवा आदि केरल प्रान्त में बहुत अधिक पैदा होते हैं। यहां की नदियों, सरोवरों और झीलों को देखकर प्रकृति-प्रेमी लोग आनन्द-सागर में डूब जाते हैं। केरल दक्षिण का कश्मीर है।

इस प्रदेश के लोग सुशिक्षित तथा सभ्य होते हैं। इस देश की मातृभाषा मलयालम है, जो द्राविड भाषाओं में प्रमुख है। करीब डेढ़ करोड़ लोग यह भाषा बोलते हैं। इसका साहित्य सम्पन्न है। पंडितों के मत के अनुसार मलयालम-भाषा-साहित्य दो कालों में बांटा जा सकता है।[1]

१. *प्राचीन काल* (एजुत्तच्छन से पूर्व)
२. *आधुनिक काल* (एजुत्तच्छन से लेकर अब तक)

प्राचीन काल

प्राचीन काल में बहुत से धार्मिक तथा ग्रामीण गीत द्राविड वृत्त में लिखे गए हैं। वे गीत बहुत ही लोकप्रिय हैं और प्रायः साधारण जनता इन्हें पसन्द कर लेती है। जब नंपूतिरि[2] लोग यहां आकर रहने लगे तो धीरे-धीरे उनको प्रमुख स्थानीय अधिवासियों ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने संस्कृत भाषा को अपनाकर [illegible] तक उसका प्रचार किया। फलस्वरूप उसका बड़ा प्रभाव मलयालम पर पड़ा। मलयालम

१ [illegible]
२ [illegible]

मे सस्कृत की कई पुस्तको के अनुवाद निकले। मलयालम-प्रदेश के कई प्रतिभासपन्न लोगो ने सस्कृत मे भी कई ग्रथ रचे। अनूदित ग्रथो मे निरणम् कवियो की 'रामचरितम्', 'भगवद्-गीता' 'कृष्णगाथा', 'अध्यात्मरामायणम्' आदि प्रधान माने जाते हैं। सस्कृत-ग्रथो के आधार पर द्राविड वृत्तो मे भी ये पुस्तकें लिखी गई हैं।

समय के साथ-साथ भाषा के स्वरूप मे अनेक परिवर्तन हो गए। मलयालम भाषा की विभक्तिया लगाकर सस्कृत के बहुत से शब्दो का प्रयोग होने लगा। मलयालम तथा सस्कृत की इस मिश्र शैली को 'मणिप्रवालम्' कहते है। इस शैली को अपनाने वाले कवियो ने आर्या, वसन्ततिलका, मदाक्राता जैसे सस्कृत वृत्तो मे कविताए रचना आरभ कर दिया।

'कण्णश-रामायणम्' आदि ग्रथ मलयालम भाषा की प्राचीन कृतियो मे उत्तम हैं। यद्यपि वाल्मीकि-रामायण का यथेष्ट प्रभाव 'रामचरित' मे परिलक्षित होता है तो भी कवि ने कई स्थलो पर अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है, यथा 'रामचरित' का रावण पचवटी मे भिक्षु के वेष में सीताजी के सामने आता है और सीताजी को श्री रामचद्रजी के पास पहुचाने का वचन देता है। उसी समय शूर्पणखा एक भयकर रूप धारण करके वहा आती है और सीताजी को धमकी देती है। भय के मारे सीताजी थर-थर कापने लगती हैं। तब रावण कहता है—हे देवी! डरिए मत, मेरे रथ मे बैठ जाइए। असमजस मे पडकर सीताजी बैठ जाती हैं। उपयुक्त अवसर पाकर रावण सीताजी को लका ले भागता है। इस प्रकार की घटना मूल ग्रथ मे नही है। स्पष्ट है कि कथा मे यह परिवर्तन कवि ने अपनी ओर से किया है। इसकी भाषा सुदर और सुबोध है। इसके लेखक का पता अभी तक नही लग पाया है। इस पुस्तक की आकर्षक शैली देखकर विद्वानो ने इसके कवि को 'मलयालम भाषा का चौसर' (Chaucer अग्रेजी के आदिकवि) कहा है।

निरणम कवियो मे सबसे बडे कवि माधव पणिक्कर हैं। उन्होने सबसे पहले गीता का अनुवाद प्रातीय भाषा में सुदर शैली मे किया है। उनके भाई शकर पणिक्कर ने 'श्रीकृष्णविजयम्' और 'भारतमाला' नामक दो पुस्तकें लिखी। तीसरे कवि राम पणिक्कर उन दोनो कवियो के भानजे माने जाते हैं। 'रामायणम्', 'भागवतम्', 'शिवरात्रि-माहात्म्य', 'भारतम्', 'ब्रह्माडपुराणम्' आदि सुदर काव्य उन्होने रचे है।

इन पुस्तको के अलावा गीत-काव्य के रूप मे कई पुस्तकें मलयालम मे लिखी गई हैं। उनके लेखको के बारे में लोग अब भी अनभिज्ञ है।

मणिप्रवाल शैली मे लिखी पुस्तको मे 'उण्णिनीलि-सदेशम्' एक उत्तम कृति है। सदेश-काव्यो मे प्रथम तथा प्रधान काव्य भी यह है। इस काव्य का विषय इस प्रकार है—'कडुत्तुरत्ति' नामक एक गाव मे एक रात को नायिका अपने पतिदेव के साथ सोती है। आधी रात के समय एक यक्षिणी आकर नायक को लेकर दक्षिण की तरफ चल देती है। 'तिरुवनतपुरम्' पहुचने पर नायक जाग पडता है और नरसिंह मत्र जपने लगता है।

उसी समय यक्षिणी उनको वहीं छोड़कर अप्रत्यक्ष हो जाती है। उस समय सवेरा होने वाला होता है। भाटों के स्तुति-गीत से वह समझ जाता है कि पास ही श्री पद्मनाभ का मंदिर है। मन्दिर में जाकर देखता है कि उसका मित्र कोल्लम देश का राजा वहां बैठा है। वह मित्र को सारी कहानी सुना देता है और उससे प्रार्थना करता है कि आप मेरा सन्देश मेरी स्त्री के पास जाकर सुना दें। मैं तो रोग-पीड़ित हूं इसलिए स्वयं जा नहीं सकता। इतना कहकर वह अपनी प्रिया के घर जाने का रास्ता नायक को बता देता है। राजकुमार सन्देशवाहक बनकर जाता है। यही संक्षेप में कथा है। प्रकृति का वर्णन करने में कवि ने अनुपम शक्ति का परिचय दिया है। शृंगार के साथ भक्ति का समन्वय करके कवि ने एक नई परिपाटी ही चला दी है। नायिका के विरह का मार्मिक वर्णन हुआ है। विरह-व्यथा का चित्रण तथा सन्देश की युक्तियां अत्यंत प्रभावोत्पादक हैं। संक्षेप में कहा जाए तो यह कृति आदि से अन्त तक मधुरिमामय है।

'उण्णिनीलि-सन्देश' के समान 'कोक-सन्देश' नामक एक सुन्दर कृति भी किसी अज्ञातनामा कवि ने लिखी है। 'अनन्तपुरम्' का सरस वर्णन हम और एक काव्य में पढ़ सकते हैं। इसके कवि भी अज्ञात हैं। 'चेरियच्ची-वर्णनम्' में नायिका चेरियच्ची की विरह-दशा का हृदयहारी वर्णन है।

चंपू-ग्रन्थों का प्रणयन—

केरल का सबसे पहला चंपू-ग्रंथ 'अमोघराघव' है। तेरहवीं शताब्दी से ही चंपू का आविर्भाव होने लगा था। कुछ मुख्य ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय हम नीचे दे रहे हैं

उण्णियच्चि-चरितम्—इस चंपू-ग्रंथ की नायिका उण्णियच्ची नामक एक युवती बालिका है जिसपर एक गन्धर्व अनुरक्त हो जाता है। यही इसकी कथावस्तु है। भाषा सुन्दर है। वर्णन करने में कवि ने अपनी विशिष्ट योग्यता का परिचय दिया है। कवि का नाम अज्ञात है।

उण्णियाटि-चरितम्—इसके रचयिता कवि 'दामोदर' चाक्यार-वंशज हैं। काय-कुलम् नामक एक छोटी रियासत के राजा की पुत्री है जो इस काव्य की नायिका है। नायिका का गान सुनकर इन्द्र और उनके साथी प्रभावित होते हैं और उसकी खोज में वे निकल पड़ते हैं। मार्ग में वे मनोहर दृश्य देखते हैं। काव्य में इन सबका हृदयग्राही वर्णन किया गया है।

इसी काल में 'श्रीकृष्ण-स्तव' नामक एक स्तोत्र-ग्रंथ भी लिखा गया है। भगवान् श्री कृष्ण की स्तुति के रूप में पचानवे सुन्दर पद्य इस पुस्तक में लिखे गए हैं। हाल ही में ट्रावनकोर विश्वविद्यालय ने इसे प्रकाशित किया है।

दूसरे कई सुन्दर कविता-ग्रन्थों के अलावा 'पान्तूर-मणिप्रवालम्' नामक एक वैद्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थ मणिप्रवाल शैली में लिखा गया है। इसके कवि पान्तूर नामक स्थान में रहने वाले थे। उन्हें 'नंपि' कहकर पुकारते हैं। इतिहास की दृष्टि से यह उच्च

कोटि का काव्य नही कहा जा सकता। किन्तु अन्य दृष्टियो मे यह महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। कहा जाता है कि इसका निर्माण चौदहवी शताब्दी मे हुआ है।

अब तक रीति-ग्रथो की उत्पत्ति नही हुई थी। उस अभाव को किसी महान् कवि ने 'लीलातिलकम्' नामक रीति-ग्रथ लिखकर पूरा किया। उसके लेखक के बारे मे लोग अब भी अनभिज्ञ हैं। 'लीलातिलकम्' सस्कृत मे लिखा गया है, किन्तु उदाहरण मणि-प्रवाल शैली मे व्याख्या के साथ कवि ने दिए हैं। इसमे तनिक भी सन्देह नही कि इस पुस्तक के लेखक प्रतिभावान् अवश्य हैं। साथ ही वे कई भाषाओ के ज्ञाता मालूम होते हैं।

इसके अलावा 'अलकार-सक्षेपम्' नामक एक मणिप्रवाल शास्त्र-ग्रथ भी पाया जाता है। 'लीलातिलकम्' की शैली के आधार पर ही यह ग्रथ लिखा गया है। इसके कवि का पता अब तक किसीको नही लग पाया है।

कोलत्तुनाट राजा—

उत्तर केरल मे 'कोलत्तुनाट' नामक एक छोटा देशी राज्य था। सन् १८०० ई० से उस राज्य के राजाओ ने भाषा की उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण काम किए थे। सस्कृत भाषा को उन्होने बडा प्रोत्साहन दिया था। पन्द्रहवी शताब्दी मे वहा केरल वर्मा नामक राजा राज्य करते थे। राम वर्मा उनका भानजा था। ये दोनो भाषाप्रेमी तथा कवि थे। राम वर्मा ने 'भारतसग्रहम्' नामक एक महाकाव्य लिखा है। उनके दरबारी कवियो मे राघव वार्यर और शकर वार्यर का स्थान प्रमुख था। राघव वार्यर ने युधिष्ठिर-विजय' पर 'पदार्थ-चिन्तनम्' नामक एक भाष्य-ग्रथ लिखा। 'श्रीकृष्णविजयम्' काव्य के रचयिता है शकर वार्यर।

शकर वार्यर के गुरुदेव श्रीकठ वार्यर ने सस्कृत भाषा मे 'रघूदय' नामक एक यमक काव्य लिखा। इसके अतिरिक्त भागवत के दशम स्कध के आधार पर प्राकृत मे 'शौरी-चरितम्' पुस्तक लिखी गई है।

शकर कवि का काव्य 'श्रीकृष्णविजयम्' सस्कृत भाषा की अमूल्य रचना है। इसकी कोमल-कात पदावली का श्रवण करके ही श्रोता लोग आनद मे उन्मत्त हो जाते हैं। यह कृति अलकार, रस आदि की खान है। कवि के शिष्यो मे एक ने 'कृष्णाभ्युदयम्' लिखकर अमर कीर्ति पाई है। कवि के नाम-धाम आदि के बारे मे लोग अनभिज्ञ हैं।

'काट्टुमाटुस्' नामक एक विख्यात कुटुम्ब कोलत्तुनाट राज्य मे था। कहा जाता है कि उस परिवार के लोगो पर भगवान् परशुराम जी की निरन्तर कृपा बनी रहती थी। उक्त परिवार मे 'पूर्ण सरस्वती' नाम से प्रसिद्ध एक महान् कवि का आविर्भाव हुआ। उनका असली नाम आज तक कोई जान नही सका है। उनका जीवनकाल चौदहवी शताब्दी के मध्य मे माना जाता है। वे महान् कवि, प्रकाण्ड पण्डित, सहृदय समालोचक और भाष्यकार थे। उन्होने विविध विषयो पर लगभग बारह ग्रथ रचे हैं। उनमे 'विद्युल्लता' एक काव्य, 'कमलिनीराजहसम्' एक नाटक और 'हस-सदेशम्' प्रसिद्ध हैं। 'हस-

'भारतगाथा' 'कृष्णगाथा' से घटकर है। फिर भी इसमे अनेक सुदर स्थल हैं। यद्यपि महाभारत के आधार पर 'भारतगाथा' लिखी गई है तो भी वहुत सी ऐसी कथाए उसमे हैं जो मूल मे नही हैं।

'भागवतम् पाट्टु' (गीत)—यह कृति भागवत के आधार पर लिखे गए प्राचीन गीतो से पूर्ण है। इसके कवि का पता नही चल सका है।

'दारुकवधम् पाट्टु' (गीत)—यह भी इसी तरह का एक गीत-ग्रथ है। इसके कवि भी अज्ञात हैं।

गुरुदक्षिण पाट्टु—श्री कृष्ण की गुरुदक्षिणा का प्रसग इस ग्रथ का विषय है।

सेतुबन्धनम् पाट्टु—

इन कृतियो के कवियो के सबध मे लोग कुछ नही जानते।

उपर्युक्त पुस्तको के अतिरिक्त भाषा मे कई फुटकर गीत भी पाए जाते हैं। वे सभी काव्य की दृष्टि से चमत्कारपूर्ण हैं।

चम्पू-ग्रथ—

लिखा जा चुका है कि कोजिकोट सामूतिरि के यहा एक कविमडली थी, जिसमे साढे अठारह कविश्रेष्ठ वर्तमान थे। भाषाकवि पुनम् उनमे एक थे। (फिर भी वे अर्ध-कवि माने गए थे।) उन्होने सस्कृत के चम्पू ग्रथो के समान मलयालम मे 'रामायण-चम्पू' लिखा। मलयालम तथा सस्कृत के सुदर शब्दो का समन्वय इसमे पाया जाता है। सव प्रकार के लोग इसे पढकर आनद उठा सकते हैं। 'रामायण-चम्पू' के समान 'भारत-चम्पू' भी लिखा गया है। लेकिन उसके कवि अज्ञात हैं। और भी कई चम्पू-ग्रथो की रचना पन्द्रहवी शताब्दी मे हुई है जिनमें 'रावणविजयम् चम्पू', 'रुक्मिणीस्वयवरम् चम्पू', 'कामदहनम् चम्पू', 'उमातपस्स-पार्वतीस्वयवरम् चम्पू', 'पारिजातहरणम् चम्पू' आदि मुख्य हैं।

मणिप्रवाल साहित्य—

पन्द्रहवी सदी मे मणिप्रवाल शैली मे कई सुन्दर कृतिया रची गई है। 'चन्द्रोत्सवम्' उनमे एक मुख्य कृति है।

चन्द्रोत्सवम्—प्रस्तुत ग्रथ मणिप्रवाल साहित्य की उत्तम रचना है। इसे 'चन्द्रिका-महोत्सवम्' और 'मेदिनीचन्द्रिकोत्सवम्' भी कहते हैं। इसकी भाषा सुन्दर तथा मजी हुई है। यह शृगाररस-प्रधान काव्य उत्कृष्ट भावो से परिपूर्ण है। इसकी प्रसादगुणमयी शैली पाठक को हठात् आकर्षित कर लेती है।

मरतक पर्वत की तराई मे एक गन्धर्व-सुन्दरी अपने प्रियतम के साथ टहल रही थी। मलय पर्वत की शीतल सुगन्धित वायु वहने लगी। उस सुन्दरी को ऐसा मालूम हुआ कि उस वायु मे एक अपूर्व सुगन्धि भरी हुई है। जिस पुष्प के कारण वह हवा सौरभ-युक्त हो गई थी उसे ला देने की प्रार्थना उसने अपने पति से की। गन्धर्व पुष्प की खोज

करते-करते केरल प्रदेश के मध्य स्थित 'त्रिशिवपेरूर' नामक स्थान में पहुंचा। वहां उसने देखा कि एक मन्दिर में एक वेश्या चन्द्रोत्सव मनाने जा रही है। उसके हाथ में सुन्दर कुसुमों का गुच्छा भी था। उसे देखकर गन्धर्व ने समझ लिया कि जिस सुगन्धि का अनुभव उसे तथा उसकी प्रियतमा को हुआ था, उसका उद्गमस्थान यही कुसुमगुच्छ है। गन्धर्व वहां करीब छह दिन रहा और वापस चला गया। उसने सब समाचार अपनी प्रियतमा को कह सुनाया। यही संक्षेप में चन्द्रोत्सव की कथा है। केरल के प्रताप, वैभव आदि का सुन्दर वर्णन कवि ने इसमें किया है।

कवि की कथन-कला-चातुरी के कई उदाहरण इसमें पाए जाते हैं। स्वभावोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का उत्तम प्रयोग इसमें हुआ है। इस उत्तम कृति के सार्वभौम कवि का नाम अब तक जाना नहीं जा सका है। वे जाति के नम्पूतिरि ब्राह्मण थे।

'कामाक्षी-स्तुति', 'लक्ष्मी-स्तुति' जैसे बहुत से स्तोत्र-ग्रंथ भी इस काल में लिखे गए हैं। महाकाव्यों के अतिरिक्त मलयालम में मणिप्रवाल शैली में कई मुक्तक काव्य भी रचे गए हैं। अधिकांश कृतियां शृंगाररस-प्रधान हैं। कन्याकुमारी से लेकर गोकर्ण तक रहने वाले राजाओं, मन्दिरों के देवों और सुन्दरियों के आधार पर मुक्तक काव्य रचे गए हैं। पन्द्रहवीं सदी में पद्य के साथ-साथ गद्य-ग्रन्थों का भी अच्छी संख्या में निर्माण हुआ है परन्तु अप्रासंगिक होने के कारण गद्य-ग्रंथों की चर्चा यहां करना अनुचित होगा।

सन् १६०० ई० में केरल के कई महान् लेखकों ने संस्कृत में कई पुस्तकें लिखी हैं। उसी समय मणिप्रवाल शैली में कई रचनाएं रची गई हैं। मजमंगलम् नारायण नम्पूतिरी ने संस्कृत तथा मलयालम के पदों को मिलाकर मिश्रित शैली में करीब बारह पुस्तकें लिखी हैं। उनमें 'नैषध चम्पू', 'राजरत्नावलीयम्', 'बाणयुद्धम्' आदि ग्रन्थ उत्कृष्ट माने जाते हैं। 'कोटियविरहम्' शृंगारप्रधान काव्य है। उसे सर्वोत्कृष्ट काव्य कहें तो तनिक भी अत्युक्ति न होगी। पंडितों का मत है कि इस प्रकार का एक भी शृंगार-काव्य अन्य भाषाओं में नहीं मिलता। उस समय तक पौराणिक कथाओं के आधार पर ही चम्पू ग्रंथ लिखे गए थे परन्तु 'कोटियविरहम्' और 'राजरत्नावलीयम्' दोनों अपवाद हैं। अतः इनके रचयिता विशेष रूप से आदर के पात्र हैं।

ब्राह्मणि पाट्ट (ब्राह्मणियों का गीत)—

ब्राह्मणियां मन्दिरों में काम करने वाली एक जाति-विशेष की स्त्रियां हैं। देवी की पूजा के अवसर पर और 'नायर' जाति के लोगों के विवाह के समय एक प्रकार का गीत ये स्त्रियां गाया करती हैं। इन्हीं गीतों को ब्राह्मणि पाट्ट (गीत) कहते हैं। वेदोच्चारण के समान ही इस गीत को गाया जाता है। सोलहवीं सदी में इनका बड़ा प्रचार था। 'विष्णुमायाचरितम्', 'सती-परिणयम्', 'नृगमोक्षम्' आदि प्रस्तुत गीतों के सुन्दर नमूने हैं। रामकथा पर ब्राह्मणि-गीत लिखे गए हैं, जो अत्यन्त सुन्दर माने जाते हैं। कोच्चिन

राज्य के राजा राम वर्मा जी ने एक पुस्तक लिखी है जिसमे ऐसे उत्कृष्ट गीत सगृहीत हैं। यह रचना आद्यन्त सुन्दर है।

कोच्चिन राज्य के दरबारी कवियो मे प्रमुख नीलकठ नपूतिरी ने 'चेल्लूरनाथोदयम्', 'नारायणीयम्' और 'तैन्मलनाथोदयम्' लिखकर मलयालम भाषा की बडी सेवा की है। उनकी कविताए ओजगुण-प्रधान हैं। चम्पू-ग्रन्थो मे प्रस्तुत 'नारायणीयम्' सबसे सुन्दर है।

इसी काल मे गजेन्द्रमोक्षम्, प्रह्लादचरितम्, कृष्णावतारम्, पूतनामोक्षम्, कुचेलवृत्तम् आदि अठारह चम्पू-ग्रन्थ और भी लिखे गए हैं। इनमे कसवधम्, रामार्जुनीयम्, दक्षयागम्, त्रिपुरदहनम्, गौरीचरितम्, स्यमन्तकम् और श्रीमती-स्वयवरम् चम्पू उत्तम हैं।

पून्तानम् नपूतिरी—भाषा-कवियो मे इनका प्रमुख स्थान माना जाता है। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। भक्ति-सम्बन्धी रचनाए इन्होने की हैं। इनके विषय मे विशद विवरण आगे दिया गया है। इनके समय मे ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे गए हैं।

आधुनिक काल

तुचत्तु एजुतच्छन—आधुनिक मलयालम के जनक तुचत्तु एजुतच्छन का नाम केरल के सभी लोग जानते है। उन्होने सतत प्रयत्न करके अपनी मातृभाषा की श्रीवृद्धि की और उसे सब प्रकार से समृद्ध बनाया। उनके सम्बन्ध मे विशद विवरण आगे दिया गया है।

एजुतच्छन पक्के ज्ञानी तथा परम भक्त थे। अपने शिष्ट व्यवहार के कारण वे पूज्य माने गए। उनकी कविता की भाषा शुद्ध तथा परिमार्जित है। अपनी कविताओ द्वारा उन्होने लोगो की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की है। सभी दृष्टियो से उनकी रचनाए सर्वोत्तम हैं। अपने शान्त तथा हृदयहारी विचारो के द्वारा उन्होने लोगो के जीवन मे बडा परिवर्तन कर डाला। मलयालम भाषा-योषा के सुपुत्रो मे प्रथम स्थान अलकृत करने वाले महाकवि तुचत्तु एजुतच्छन ही हैं।

एजुतच्छन के शिष्यो ने भी भाषा की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। 'शिवरात्रि माहात्म्यम्' नामक काव्य उनके किसी एक शिष्य ने लिखा है। एजुतच्छन के वशज 'देवगुरु' ने 'वेदान्तसारम्' और 'विज्ञानरत्नम्' लिखकर अमर कीर्ति पाई। 'वेदान्तसारम् किलिप्पाट्टु' नामक एक और काव्य देवगुरु का लिखा हुआ माना जाता है।

परापर गुरु—कहा जाता है कि इनके नाम पर 'आत्मबोध' काव्य लिखा गया है जो शकराचार्य के 'वेदान्तसार' का अनुवाद है। 'किलिप्पाट्टु' शैली पर यह काव्य लिखा गया है।

स्कन्दपुराणम् किलिप्पाट्टु—यह स्कन्दपुराण का अनुवाद कहा जाता है। इसकी कविता सुन्दर नहीं मानी जाती।

नागानन्दम् किलिप्पाट्टु—इसका कवि अज्ञात है। कविता के क्षेत्र में इसका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है।

कृष्णलीला पाट्टु—रासक्रीड़ा पर यह कृति रची गई है। इसकी कविता में स्वाभाविकता और कोमलता सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

रामाश्वमेधम्—यह एक सुन्दर काव्य है। इसका कवि कौन है, इसके बारे में पता नहीं चल सका है।

भारत-संक्षेप—इसके कवि एक भक्त हैं। इसका रचनाकाल सन् १६१७ ई० माना जाता है। भारत के पौलोमम् सर्ग से भीष्म के राजधर्म पर उपदेश तक की कथा इसमें वर्णित है। पूरा ग्रन्थ पढ़ने पर मालूम होगा कि कवि वेदान्ती है।

श्रीरामस्वर्गारोहणम् किलिप्पाट्टु और भारतम् किलिप्पाट्टु दोनों एक ही शैली पर लिखे गए हैं। अतः अनुमान किया जा सकता है कि दोनों का रचयिता एक ही व्यक्ति है।

एकादशी-माहात्म्यम्, नागाच्छेदम्, पुत्रकामेष्टि, रामायणम्, नासिकेतु पुराणम्, मार्कण्ड पुराणम्, चित्रगुप्तचरितम् आदि सुन्दर रचनाएं किलिप्पाट्टु शैली पर लिखी गई हैं।

पादवशकरम्—यह प्राचीन कीर्तनग्रंथों में उत्तम माना जाता है। यह शिव को प्रसन्न करने के लिए रचे गीतों का संग्रह है।

'पार्वतीपाणिग्रहण प्राक् वृत्तम्' नामक कीर्तन-ग्रंथ में संस्कृत विभक्तियों का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है। पार्वती की कथा ही इसमें वर्णित है। कई स्थलों पर कवि की मार्मिकता और भावुकता का परिचय मिलता है।

'कुचेलवृत्तम् गानुवृत्तम्' में कुचेल की कथा कीर्तन के रूप में एक अज्ञातनामा नम्पूतिरि ब्राह्मण ने लिखी है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त मलयालम भाषा में कई कीर्तन-ग्रंथ पाए जाते हैं। जिनमें भक्ति की महिमा सुन्दर तथा आकर्षक शैली में अनेक भक्तकवियों ने लिखी है। विरक्त होने के कारण उन लोगों ने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया है। इन कीर्तन-गीतों को पढ़कर साधारण जनता भक्तिरसलीन हो जाती है, श्रीकृष्ण की बाललीला और राम-सीता उपर्युक्त कवियों के प्रिय विषय हैं। साहित्य की दृष्टि से ये ग्रंथ उत्तम हैं। अज्ञातनामता इन गीतों का प्रधान गुण है।

कथकळि साहित्य—

... का पद्य-साहित्य का एक प्रमुख भाग है। 'कथकळि' साहित्य में ... सौन्दर्य ...

ही केरल की कीर्ति फैलने लगी थी। प्राचीन काल मे लोग मनोरजन के लिए गीत आदि का सहारा लेते थे। युद्धोत्साही जनता नकली युद्धो मे भाग लेती थी। नकली युद्ध दिखाने वाले नटो को कई नामो से पुकारा जाने लगा। 'चाक्यार' जाति के लोग पौराणिक कथा-कथन मे सामयिक घटनाओ को बडी चतुराई से मिलाकर लोगो का मन बहलाते थे। वे समाज की कुरीतियो पर तीखा व्यग्य करते और उन्हे दूर करने की प्रेरणा देते थे। चाक्यार सभा मे जब किसीकी हसी उडाते तब उसका विरोध करना मना था। ऐसी सभाओ मे न तो कोई बात कर सकता था और न हस सकता था। ऐसी पद्धति को 'चाक्यार कूत्तु' कहते हैं। 'कूतु' और 'पाठकम्' आदि सहृदय लोगो के मनोरजन के विषय हैं।

यही लोग जयदेव का 'गीतगोविन्द' मधुर ढग से सुनाकर लोगो को प्रसन्न करते थे। इस प्रकार की प्रथा अब भी प्रचलित है। धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे। कूत्तु, पाठकम्, गीतगोविन्द का गान आदि ध्यान मे रखकर कोज़िकोट के राजा मानविक्रम ने सन् १७८४ के लगभग एक नई पद्धति निकाली, जिसका नाम कृष्णनाट्टम्' रखा। 'कृष्ण-नाट्टम्' में श्री कृष्ण की कथा का अभिनय सगीत के साथ होता था। उसे कुछ और सुधार कर केरलीय जनता की रुचि के अनुसार राम की कथाओ का अभिनय होने लगा। यह उत्तर भारत की रामलीला के समान है।

'रामनाट्टम्' का परिष्कृत रूप ही कथकलि है। कथकलि की कथा प्रचलित होती थी। शास्त्रविधि के अनुसार नृत्त, गीत, वादन और अभिनय के द्वारा दर्शको मे रस का सचार किया जाता था। इस प्रकार कथकलि काफी लोकप्रिय बन गई। शुरू मे कथकलि मे कई बातो की कमिया खटकती थी। धीरे-धीरे वे सब दोष दूर कर दिए गए। रामायण की कथा के आधार पर 'कोट्टारक्कर तपुरान' ने आठ दिनो के अभिनय द्वारा समाप्त होने वाली कथकलि लिखी। दृश्य कलाओ मे कथकलि का महत्त्व दिन दूना रात चौगुना बढने लगा।

वेट्टत्तु देश के एक राजा तथा कोच्चिन देश के पडितो ने कथकलि को नवीन काल के अनुकूल सुधारने का परिश्रम किया, जिसमे वे सफल भी हुए। कथकलि का अपूर्व प्रचार देखकर हम समझ सकते हैं कि लोग अब अधिक सख्या मे उसका आस्वादन करने लगे हैं। देश भेद या जाति-भेद इसके आस्वादन के मार्ग मे बाधा नही डालता।

कथकलि की कृतियो मे 'कोट्टयत्तु तपुरान' की रचनाए उच्चकोटि की मानी जाती है। 'बकवधम्', 'किरम्मीर-वधम्', 'निवातकवच', 'कालकेयवधम्' और 'कल्याण-सौगन्धिकम्', कोट्टयत्तु तपुरान की प्रमुख रचनाए हैं। मलयालम भाषा-साहित्य मे इनका उच्च स्थान है।

उण्णायि वार्यर—'कथकलि' लिखने वाले कवियो मे वार्यर का स्थान सबसे ऊचा है। पात्र-निर्माण, दृश्य-विधान और कथा-कथन आदि मे उन्होने कमाल किया है। उनके जीवन-काल के सबध मे मतभेद है। अधिकाश पडितो का मत है कि अठारहवी सदी

मे उनका जन्म हुआ। उनका लिखा हुआ 'नलचरितम्' सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, प्रकाड पाडित्य और कवित्व-शक्ति आदि का पूरा-पूरा परिचय प्रस्तुत रचना मे मिलता है। कहा जाता है कि ऐसी लक्षणयुक्त रचना संस्कृत-साहित्य में भी मिलना कठिन है। कविता का अकृत्रिम सौन्दर्य उसमें आद्यन्त पाया जाता है। कवि ने जीवन के विविध पहलुओ का चित्र बडी सूक्ष्मता से खीचा है। व्यास और हर्ष जैसे प्रतिभासपन्न कवियो ने नल-चरित पर काव्य-रचना की है, पर वार्यर की कृति एतद्-विषयक अन्य तमाम कृतियो को मात करती है। मूल कथा को वार्यर ने अपनी कला-चातुरी मे एक कोमल कथावस्तु का रूप दे दिया। बिहारी के समान वार्यर ने अपनी कृति के द्वारा गागर मे सागर भर दिया है। जीवन की गभीर समस्याओ को सुलझाने मे उन्होंने जिस सामर्थ्य का परिचय दिया है वह निस्सन्देह प्रशसनीय है। कई प्रसगों में विपत्ति-काल में दार्शनिक की भाति तटस्थ भाव से कठिनाइयो का सामना करने की सलाह कवि देता है। कभी-कभी कवि कहता है कि मायाजनित कार्यों मे लिप्त रहकर मोक्ष पाना बहुत कठिन है। ससार में विचरण करते हुए योगी ही विजय पा सकते हैं। कोई योगी बने और मारा-मारा फिरे, यह कवि को बिल्कुल पसन्द नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की कठिनाइयो को देखकर, डरे बिना आगे बढे और लक्ष्य तक पहुच जाए, यही कवि का अपना आदर्श था। जब तक मलयालम भाषा और साहित्य का आदर रहेगा तब तक वार्यर की उक्त कृति उज्ज्वल नक्षत्र की भाति साहित्य के आकाश में चमकती रहेगी।

और भी कई उत्कृष्ट रचनाए कथकलि साहित्य मे पाई जाती हैं। उनकी कविताए बहुत सुन्दर हैं। केरल के सहृदय लोग कथकलि के पद बडे चाव से पढते हैं। यहां तक कि अशिक्षित लोग भी इन्हें कठस्थ कर लेते हैं। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो एक-दो पद राह चलते-चलते या घर बैठे-बैठे न गुनगुनाते हो। कथकलि साहित्य के बाद-बाद श्री नम्प्यार ने तुल्लल्-पद्धति निकाली। इसका विवरण आगे दिया गया है।

पहला परिच्छेद

वैष्णव-धर्म

आदिम मनुष्य का मन प्रकृति की विचित्र लीलाओं को देखकर चकित होता था। बिजली की कड़क, बादल का गर्जन, भयंकर आंधी आदि उसके मन में भय उत्पन्न करते थे। बालसूर्य की लाल किरणें, चांदनी रात, हरे-भरे वृक्ष-समूह आदि को देखकर कभी-कभी उसका मन आनन्द-सागर में डुबकियां लगाने लगता था। धीरे-धीरे प्रकृति की शक्तियों के बारे में वह सोचने लगा। सबसे पहले उसने सोचा कि सूर्य, चन्द्र आदि उसके अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक हैं, अतः उनके प्रति उसके मन में एक प्रकार का श्रद्धा-भाव उत्पन्न होने लगा। ज्यों-ज्यों वह चिन्तन करता गया, त्यों-त्यों उसका मस्तिष्क विकसित होता गया। अन्त में उसको यह ज्ञान हुआ कि इस सारे प्रपंच का संचालन करने वाली कोई अद्भुत शक्ति है। अब वह उसकी खोज में प्रवृत्त हुआ और उसके प्रति उसके मन में बड़ी श्रद्धा जागरित हुई। इसीसे मनुष्य के मन में भक्ति का भाव उदय हुआ। जब कभी उसपर आपत्ति आती तो वह बड़े दीनभाव से उस शक्ति की प्रार्थना करने लगता। उसने पूर्णरूप से यह समझ लिया कि सम्पूर्ण जगत् का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता भी वही शक्ति है। अतएव उसने अपना सर्वस्व उसके आगे अर्पित किया। अनुभवों से भी उसको मालूम होने लगा कि उस शक्ति की प्रार्थना करने से उसका सुख-समृद्धि का अभीष्ट सिद्ध होता है। ऐसी भक्ति की भावना जब मनुष्य के मन में पैदा हुई तब से भक्ति-मार्ग के सच्चे इतिहास का श्रीगणेश होता है।[1] भक्ति तथा देव-सम्बन्धी प्राचीनतम उल्लेख वेदों में मिलता है। डा० राधाकृष्णन का मत है कि इनका रचनाकाल ३००० ई० पूर्व है।[2] वेद में भिन्न-भिन्न प्राकृतिक शक्तियों को भिन्न-भिन्न नाम देकर उनमें देवत्व की कल्पना की गई है। यह भी निश्चित कर लिया गया है कि इन देवों व शक्तियों का मूल एक है। वेदों के निर्माताओं ने वरुण, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि नामों से देवताओं को सम्बोधित किया है। कालान्तर में जिन जिन देवों पर सृष्टि, स्थिति, लय का दायित्व आरोपित किया गया, उनकी महिमा बढ़ने लगी।

1 [illegible]
2 [illegible]

पांच सौ वर्ष पूर्व हो चुका था।[1] बौद्ध तथा जैन धर्मों के समान पहले-पहल यह भी एक प्रकार का सुधारात्मक आन्दोलन था। इन दोनों धर्मों के विपरीत इसका मूल आधार ईश्वरवाद है। इसे प्राचीनकाल में 'एकान्तिक' धर्म के नाम से पुकारते थे। इसमें साम्प्रदायिकता आ गई और लोग इसे पांच रात्र अथवा भागवत धर्म के नाम से पुकारने लगे। सात्वत नाम के क्षत्रियों का धर्म यही था। शनैः-शनैः यह नारायण-धर्म और विष्णु-धर्म में मिलकर एक हो गया। भगवद्गीताकार ने उपनिषदों तथा सांख्ययोग से बहुत सी बातें लेकर वैष्णव-धर्म में उनका समावेश किया और उसके दार्शनिक आधार को दृढ़ किया। ईसा से कुछ काल पश्चात् आभीरों ने धर्म में एक नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा की। उन्होंने कृष्ण के गोपाल-रूप की आराधना आरम्भ की, और भागवत-धर्म में गोपालन-धर्म का सूत्रपात किया। आठवीं सदी तक भागवत-धर्म का इसी रूप में प्रचार होता रहा।[2] इन्हीं दिनों में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद तथा मायावाद का इस धर्म में समन्वय किया। कहा जाता है कि शंकराचार्य का जीवनकाल सन् ७८८ और ८२० के बीच में है।[3] शंकर के सिद्धान्तों से समाज सन्तुष्ट न हुआ। उनके सिद्धान्तों में जगत् और जीव की व्यावहारिक सत्ता थी, वास्तविक सत्ता न थी। इसके फलस्वरूप शंकर के मत का लोगों ने विरोध किया और अन्त में ११वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने तथा बाद में अन्य वैष्णव आचार्यों ने मायावाद का खंडन करके फिर से जगत् और जीव की वास्तविक सत्ता स्थापित की और सगुण भक्ति का प्रसार किया।[4]

दक्षिण के आचार्य और कवि

रामानुजाचार्य आदि वैष्णव-धर्म के प्रवर्तकों के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने से पहले दक्षिण भारत के आचार्यों और कवियों का इतिहास पढ़ना आवश्यक है।

पांचवीं शताब्दी के लगभग दक्षिण में भक्ति-प्रधान वैष्णव-मत विकसित हो रहा

---

१ Vaishnavism, Shaivism and minor religious systems By R. B Bhandarkar Page 3

२ Vaishnava faith and movement Page 2

—ले० डा० एस० के० डे०

३ श्री शंकराचार्य—ले० [illegible] शर्मा, पृष्ठ १२

४ साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शंकर के सामने [illegible] थे। उनके [illegible] बौद्ध और [illegible] [illegible]

जिनका गायन करने में अब भी भक्तगण अपने जीवन को सफल मानते हैं।

इनमें कुलशेखर आड्वार, मलयालम-भाषाभाषी जनता के प्रमुख राज्य तिरुवितांकूर के नरेश थे। उन्होंने 'मुकुन्दमाल' नामक पुस्तक लिखी। उनका जन्मकाल ई० बारहवीं सदी का पूर्वार्ध भाग है। बचपन से वे विष्णु भगवान् के पक्के भक्त थे। वे सदा 'रामायण' बड़े चाव से सुना करते थे। एक दिन रामायण पढ़ी जा रही थी। खर-वध का प्रसंग था। रामचन्द्र अकेले खर तथा उसकी असंख्य सेना का सामना करने के लिए निकले थे। भक्तप्रवर कुलशेखर ने भक्ति में सराबोर होकर तुरन्त आज्ञा दी कि हमारे दोनों भाई तथा सारी सेनाएं रामचन्द्रजी की सहायता करने के लिए कूच करें। फिर युद्ध का फल जानने के लिए वे उत्कंठित हुए। जब पढ़ने वालों ने सुनाया कि रामचन्द्रजी विजयी होकर लौटे तब कहीं उनका चित्त शान्त हुआ।[1]

आड्वार भक्तों के अलावा दक्षिण में नाथमुनि जैसे आचार्य वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक हो गए हैं। कहा जाता है कि उनका जीवनकाल सन् ८२४ ई० से सन् ९२४ ई० के बीच में है।[2] उनके बाद आचार्य पुंडरीकाक्ष यमुनाचार्य आदि महान् व्यक्तियों ने वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार किया और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत-मत की पुष्टि के लिए क्षेत्र तैयार किया। रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद का खण्डन करके उत्तर भारत में विष्णुभक्ति का पुनरुत्थान किया।[3]

रामानुजाचार्य—

इन्होंने मद्रास से छब्बीस मील दूर पेरम्बदूर नामक स्थान में जन्म लिया। उनका जीवन-काल सन् १०३७ ई० और ११३७ ई० के बीच में माना जाता है। इन्होंने देखा कि धर्म की बड़ी शोचनीय अवस्था है। अतएव उन्होंने नये सिरे से वैष्णव-धर्म को सुधारने का बीड़ा उठाया। शंकर के मायावाद का खंडन करने के लिए इन्होंने खूब मेहनत की। शंकर ने ज्ञान का आश्रय लेकर बौद्ध शून्यवाद का खंडन किया था। अतः इनका मत अधिक लोकप्रिय न हो सका। रामानुज का नया धर्म साधारण जनता के लिए न था। इसलिए अपनी उपासना-पद्धति में इन्होंने भक्ति को स्थान दे दिया। ये पदार्थत्रय में विश्वास करते थे। पदार्थत्रय परब्रह्म (विष्णु) चित् (जीव) और अचित् (जड़ या दृश्य) हैं। तीनों अविनाशी हैं परन्तु केवल ब्रह्म स्वतन्त्र है। शेष दो परब्रह्म से निर्मित और उसीपर निर्भर हैं। प्रलय में भी तीनों में अभिन्नता नहीं होती। मूर्ति, अर्चावतार, पूर्णावतार, सूक्ष्म और अन्तर्यामी—ये पांच प्रकार की अभिव्यक्तियां परब्रह्म की हैं, ऐसा ये कहते हैं। साधक को मूर्ति से प्रारम्भ कर क्रमशः अन्तर्यामी की प्राप्ति होती है और वह बैकुंठ या साकेत को प्राप्त कर, परब्रह्म से मिलकर चिदानंद का अनुभव करता है।

---

1. Early History of Vaishnavism in India, page 15
2. [illegible], पृष्ठ ३६।
3. [illegible], पृष्ठ ४०।

था। वहा आडवारो ने इसके विकास मे विशेष योग दिया। आडवार भक्तकवि थे और तमिल प्रात के निवासी भी। भागवत-धर्म पर वे गीतो की रचना करते थे और उन्हे गाते थे।[1] आडवार भक्त सख्या मे बारह थे। यद्यपि उनका कोई सप्रदाय नही था, तो भी वे भगवान् की भक्ति मे मग्न होकर उनकी महिमा का गान करते तथा लोक-कल्याण की भावना का प्रचार करते थे। उनके रचे हुए जो भी गीत हैं उनका नाम है 'प्रबन्धम्'। 'प्रबन्धम्' के सारे गीत लोग बडे चाव तथा भक्ति से गाते हैं। दक्षिण मे यह ग्रथ वेदो के समान श्रद्धा का पात्र माना जाता है। बारहवो आडवार भक्त समकालीन नही थे। अपितु, उनके आविर्भाव का काल लगभग दूसरी शताब्दी से लेकर दसवी तक माना जाता है। अत उनमे से प्रथम चार को प्राचीन, उनके बाद के वाले क्रमश पाच को मध्यकालीन एव शेष को अन्तिम कहने की परिपाटी चली आती है। उनका वर्गीकरण निम्नाकित है

(क) *प्राचीन*—१ पोयकै आडवार २ भूतत्ताडवार
३ पेय आडवार ४ तिरुमडिरगे आडवार

(ख) *मध्यकालीन*—१ शटकोप या नम्म आडवार २ मधुर कवि आडवार
३ कुलशेखर आडवार ४ पेरिय आडवार
५ आडाल

(ग) *अन्तिम* १ तोडरटिप्पोटि आडवार २ तिरुप्पाण आडवार
तथा ३ तिरुमके आडवार

इनमे सर्वप्रसिद्ध नम्म या शटकोप ने एक शद्र-परिवार मे जन्म लिया था। उन्होने देश भर मे भ्रमण करके बहुत से गीत रचे थे।

पाचवी शताब्दी से दसवी तक इनके गीतो का एक बडा साहित्य एकत्रित हो गया है। इनकी कविताओ मे कही भगवान् के विरह मे व्याकुल भक्त-हृदय की वेदना है तो कही गभीर दार्शनिक विचार हैं, कही सूफी कवियो के प्रेम-गीतो से मिलते-जुलते गीत भी पाए जाते हैं। वे अपना सर्वस्व भगवान् पर अर्पण करके घूमते-फिरते रहते थे। उनकी यह प्रबल धारणा थी कि भगवान् की सेवा करना और भगवद्भक्तो की सेवा करना समान है। भगवान् विष्णु को वे अनन्त, अखड तथा अविनाशी मानते थे। राम और कृष्ण को वे विष्णु का अवतार मानकर दोनो के भक्तो का समान भाव से आदर करते थे तथा उनके प्रति वे सच्चे प्रेम से व्यवहार करते थे।

चडाल, ब्राह्मण, शद्र, क्षत्रिय आदि जाति की भेद भावना का त्याग करके आडवार के भक्त बनते थे और उनको गुरु मानकर अपने आराध्य देव विष्णु की पूजा करते थे।[2] आडवार भक्तो ने दास्य, वात्सल्य तथा माधुर्य प्रधान-भक्ति पर अनेक पद लिखे हैं

---

१ Early History of Vaishnavism in South India, Page 13

२ Cultural Heritage of India Series, भाग २ के तथा The Historical Evolution of Shri Vaishnavism in South India, by V Ramachariya M A के लेख का साराश।

जिनका गायन करने में अब भी भक्तगण अपने जीवन को सफल मानते हैं।

इनमें कुलशेखर आळवार, मलयालम-भाषाभाषी जनता के प्रमुख राज्य तिरु-वितांकूर के नरेश थे। उन्होंने 'मुकुन्दमाल' नामक पुस्तक लिखी। उनका जन्मकाल ई० बारहवी सदी का पूर्वार्ध भाग है। बचपन से वे विष्णु भगवान् के पक्के भक्त थे। वे सदा 'रामायण' बड़े चाव से सुना करते थे। एक दिन रामायण पढी जा रही थी। खर-वध का प्रसग था। रामचन्द्र अकेले खर तथा उसकी असख्य सेना का सामना करने के लिए निकले थे। भक्तप्रवर कुलशेखर ने भक्ति मे सराबोर होकर तुरन्त आज्ञा दी कि हमारे दोनो भाई तथा सारी सेनाए रामचन्द्रजी की सहायता करने के लिए कूच करें। फिर युद्ध का फल जानने के लिए वे उत्कठित हुए। जब पढने वालो ने सुनाया कि रामचन्द्र-जी विजयी होकर लौटे तब कहीं उनका चित्त शान्त हुआ।[1]

आळवार भक्तो के अलावा दक्षिण में नाथमुनि जैसे आचार्य वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक हो गए हैं। कहा जाता है कि उनका जीवनकाल सन् ८२४ ई० से सन् ९२४ ई० के बीच में है।[2] उनके बाद आचार्य पुडरीकाक्ष यमुनाचार्य आदि महान् व्यक्तियो ने वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार किया और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत-मत की पुष्टि के लिए क्षेत्र तैयार किया। रामानुजाचार्य ने शकर के मायावाद का खण्डन करके उत्तर भारत में विष्णुभक्ति का पुनरुत्थान किया।[3]

रामानुजाचार्य—

इन्होंने मद्रास से इक्कीस मील दूर परमबद्दूर नामक स्थान मे जन्म लिया। इनका जीवन-काल सन् १०३७ ई० और ११३७ ई० के बीच मे माना जाता है। इन्होंने देखा कि धर्म की बडी शोचनीय अवस्था है। अतएव इन्होंने नये सिरे से वैष्णव-धर्म को सुधारने का बीड़ा उठाया। शकर के मायावाद का खडन करने के लिए इन्होंने खूब मेहनत की। शकर ने ज्ञान का आश्रय लेकर बौद्ध शून्यवाद का खडन किया था। अत इनका मत अधिक लोकप्रिय न हो सका। रामानुज का नया धर्म साधारण जनता के लिए न था। इसलिए अपनी उपासना-पद्धति मे इन्होंने भक्ति को स्थान दे दिया। ये पदार्थत्रय में विश्वास करते थे। पदार्थत्रय परब्रह्म (विष्णु) चित् (जीव) और अचित् (जड या दृश्य) हैं। तीनो अविनाशी हैं परन्तु केवल ब्रह्म स्वतत्र है। शेष दो परब्रह्म से निमित और उसीपर निर्भर हैं। प्रलय मे भी तीनो मे अभिन्नता नही होती। मूर्ति, अशावतार, पूर्णावतार, सूक्ष्म और अन्तर्यामी—ये पाच प्रकार की अभिव्यक्तियां परब्रह्म की हैं, ऐसा ये कहते हैं। साधक को मूर्ति से आरम्भ कर क्रमश अन्तर्यामी की प्राप्ति होती है और वह वैकुठ या साकेत को प्राप्त कर, परब्रह्म मे निरन्तर निवास का अनुभव करता है।

---

1. Early History of Vaishnavism in India, page 15
2. [illegible] सम्प्रदाय—[illegible] पृष्ठ [illegible]।
3. [illegible]

रामानुजाचार्य ज्ञानियो को मुक्ति-प्राप्ति के लिए ज्ञानोपदेश देते थे और साधारण लोगो को भक्ति मार्ग का उपदेश। ये अपने शिष्यो से कहा करते थे कि भयकर भवसागर से मुक्ति पाने के लिए भगवान् को सब-कुछ अर्पण कर देना चाहिए। इसी आत्मसमर्पण को 'प्रपत्ति' कहते हैं। साधारणत गुरु के उपदेशो के अनुसार आचरण करने मे सब लोग सफल नही होते। उनके लिए सरल तथा सुगम मार्ग ही भगवान् का शरणागत होना है।

"रामानुज का मुख्य सिद्धान्त यह है कि आत्मा के बिना शरीर किसी भी अवस्था मे अवस्थित नही रह सकता, अत मुक्तावस्था मे आत्मा को शरीर प्राप्त होता है। परन्तु शुद्ध तत्त्व का बना हुआ वह शरीर अप्राकृत होता है और भगवान् की सेवा करने के निमित्त ही उसे धारण किया जाता है। इसी शुद्ध तत्त्व से वैकुण्ठ आदि लोक निर्मित होते हैं। यह वैकुण्ठ नारायण के ही योग्य विविध विचित्र और अनन्त भोग्य पदार्थो तथा भोग्य स्थानो से सम्बद्ध, अनन्त आश्चर्यमय, महावैभवविस्तारयुक्त, नित्यनिर्मल, क्षयरहित परमव्योम है। यहा मुक्त आत्मा नारायण के समान ही आनन्द का अनुभव करती है। रामानुज का मत है कि इस स्थान की प्राप्ति करना परम पुरुषार्थ है।"[1]

रामानन्द—

चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ में रामानन्द ने रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय को बहुत ही व्यापक और लोकप्रिय रूप दे दिया।[2] इनके गुरु राघवानन्द थे।[3] रामानन्द ने सारे भारत का पर्यटन करके जाति-भेद का बहिष्कार किया एव सस्कृत के स्थान पर लोकभापा मे अपने मत का प्रचार करके उसे बहुत लोकप्रिय बना दिया। कर्म के क्षेत्र मे शास्त्रमर्यादा इन्हे मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध ये नही मानते थे। सब जातियो के लोगो को एकत्र कर ये राम-भक्ति का उपदेश करने लगे और राम-नाम की महिमा सुनाने लगे। इनके रचे हुए 'वैष्णवमताब्जभास्कर' और 'श्रीरामार्चनपद्धति' दो ग्रथ मिलते हैं। कबीरदास, सेननाई, पीपा, रैदास आदि इनके प्रमुख शिष्य माने जाते हैं।

रामानुज ने अपने ब्रह्म को नारायण कहा है, उसीका नाम विष्णु है और वही इस सम्प्रदाय के आराध्य देव हैं। नारायणरूप विष्णु का दर्शन सम्भव है और यह दर्शन केवल समाधियुक्त भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर शकर के मत मे ब्रह्म चिर-रूप है, उसमे व्यक्तित्व नही, कोई सज्ञा नही दी जा सकती। वह एकान्तत शुद्ध तथा निर्गुण है। रामानुज का ब्रह्म व्यक्ति-रूप है और गुणो का निधान है। उसे निर्गुण बनाना रूपक मात्र है। शकर के ब्रह्म मे लिग आदि का कोई भेद नही, परन्तु

१ महाकवि सूरदास—ले० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ४१।
२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४३।
३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ११७।

रामानुज के नारायण लक्ष्मी के प्रेमी तथा पति हैं।[1]

लक्ष्मण और सीता-सहित राम को उपास्य रूप में ग्रहण करना रामानन्द-सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। ऐसा कोई भी श्लोक रामानन्द ने नही लिखा है जहा केवल सीताराम हों। यम-नियम आदि अष्टांग के योग के अनुसार कपट-भाव छोडकर जो अनन्य भाव से भगवान् की भक्ति करता है वही रामानन्द के मत में परम भक्त है। वही इस ससार-सागर से मोक्ष पाने का अधिकारी है।

मध्वाचार्य—

मध्व या आनन्दतीर्थ के जन्म के बारे में मतभेद है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि इनका जन्म सन् १२३७ ई० में मगलौर से साठ मील उत्तर उडिप्पि में, और मृत्यु सन् १३३३ ई० में हुई।[2] डा० दीनदयालु गुप्त का मत है कि मध्वाचार्य ने सन् १२७६ ई० में अपना शरीर छोडा।[3] जन्म-स्थान के सम्बन्ध में दोनों का मत समान है।

मध्वाचार्य ने शकर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खडन, विष्णु की प्रधानता का प्रचार तथा द्वैत-सिद्धान्त की स्थापना के लिए बडा प्रयत्न किया। इस सम्प्रदाय के लोग विश्वास करते हैं कि विष्णु अनन्त गुणों के सागर हैं, शक्तियुक्त हैं और नित्य हैं। अनन्य भक्ति से ही विष्णु की प्राप्ति हो सकती है। भागवत में लिखा है कि श्री कृष्ण का अवतार ही पूर्ण है, शेष सभी अंशावतार हैं। मध्व ने भगवान् के सभी अवतारों को पूर्ण कहा है। ये जनता को यह उपदेश देने लगे कि भगवान् के किसी भी अवतार को उपास्य मानकर यदि कोई भक्ति करे तो भगवत्पद प्राप्त हो सकता है।[4]

मध्वाचार्य ने राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसग को मान्यता नही दी है। ये श्री कृष्ण के बाल-रूप की उपासना पर जोर देते थे। अपने सम्प्रदाय में मध्व वायु के अवतार माने जाते हैं। इनके दो प्रधान ग्रथ हैं।

विष्णुस्वामी—

कुछ विद्वानों के मतानुसार विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री विष्णुस्वामी श्री शकर से भी पूर्व हुए थे, किन्तु शकरमत से तात्त्विक मतभेद होने के कारण इनकी गणना भी शकर-विरोधी प्रमुख वैष्णवाचार्यों में की जाती है।

विष्णुस्वामी का जन्म कब हुआ, इस विषय पर बडा मतभेद है। विष्णुस्वामी किसी द्राविड देश के क्षत्रिय राजा के ब्राह्मण मन्त्री के पुत्र थे। अनुमान किया जाता है कि ये रामानुज और निम्बार्क के पश्चात् और मध्वाचार्य के पूर्व जीवित थे।[5] ये प्रतिभा-

1 [illegible] सोसायटी, १८[illegible] [illegible] सीताराम।

2 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ [illegible]।

3 अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ [illegible]।

4 [illegible]—डा० [illegible], पृष्ठ [illegible]।

5 [illegible]—डा० [illegible], पृष्ठ [illegible]।

ज्ञानी विद्वान् थे और इन्हे शास्त्रो का पूर्ण ज्ञान था। कहते हैं, इन्होने कठिन तपस्या द्वारा भगवान् का साक्षात् दर्शन किया था।[1] ये ब्रह्म को अद्वैत किन्तु साकार मानते थे और श्री कृष्ण के रूप मे उसकी उपासना करते थे।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय को रुद्र-सम्प्रदाय भी कहा जाता है। कहते हैं कि भगवान् शकर ने शुद्धाद्वैत का सर्वप्रथम उपदेश बालखिल्य ऋषियो को दिया था। यही ज्ञान कालान्तर म विष्णुस्वामी को प्राप्त हुआ और इन्होने लोक मे सर्वप्रथम शुद्धाद्वैत सिद्धात की प्रतिष्ठा की। इन्होने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र का भाष्य किया। यह भाष्य 'सर्वसूक्त' के नाम से प्रसिद्ध है। विक्रम की नवी शताब्दी म शकर के अद्वैत-मत के अनुयायी किसी विद्वान् पडित ने विष्णुस्वामी की गद्दी पर आसीन तत्कालीन आचार्य को इस सम्प्रदाय के 'परमात्मा साकार है' वाले सिद्धान्त का शास्त्रार्थ द्वारा खडन करके परास्त किया था, तब से लोक मे विष्णुस्वामी के मत की प्रतिष्ठा भग हो गई थी। श्री वल्लभाचार्य के समय मे यह मत केवल नाम-मात्र के लिए शेष था और इस उच्छिन्न मठ के अधिकारी कोई बिल्वमगल नामक आचार्य थे। विद्यानगर के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ मे विजयी होने पर श्री वल्लभ को शुद्धाद्वैत के प्राचीन सिद्धान्त की पुन प्रतिष्ठा करने का अधिकार दिया गया और उनको विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय का आचार्य घोषित किया गया। इस प्रकार यह सिद्ध है कि यद्यपि शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक विष्णुस्वामी हैं तथापि इस मत की वास्तविक उन्नति का श्रेय वल्लभाचार्यजी को ही है। यह भी कहा जाता है कि महाराष्ट्रसन्त श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन, हीरालाल और श्रीराम विष्णुस्वामी-मतावलबी थे। महाराष्ट्र मे प्रचार पाने वाला भागवत-धर्म, जो पीछे वारकरी नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उच्च भक्त थे, विष्णुस्वामी-मत का ही रूपान्तर है।[2]

निम्बार्काचार्य—

निम्बार्क के जन्मकाल के बारे मे विद्वानो का मत भिन्न-भिन्न है। डा० भडारकर ने इनका समय सन् १२६२ ई० बताया है।[3] डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है निम्बार्क बारहवी शताब्दी मे पैदा हुए। ये तेलुगू प्रदेश से आकर वृन्दावन मे बस गए थे। प्रसिद्ध गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव इनके शिष्य थे। ये सूर्य के अवतार माने जाते हैं। कहा जाता है कि इन्होने सूर्य की गति को रोककर उसे आकाश से हटाकर नीम वृक्ष के पीछे कुछ काल तक के लिए छिपा दिया था, क्योकि सूर्यास्त से पूर्व इन्हे किसी सन्त को भोजन देना था। सूर्यास्त के बाद भोजन करना निम्बार्क की दैनिक चर्या के विरुद्ध था। ये राधा-कृष्ण के उपासक और द्वैताद्वैत के प्रवर्तक कहे जाते हैं। ये रामानुज से विशेष प्रभावित

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४१।
२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४२।
३ Vaishnavism and Shaivism by Dr Bhandarkar, Page 63

हुए थे।[1] ये बड़े सिद्ध थे। इनकी अतुलनीय शक्ति का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके चलाए हुए सम्प्रदाय का नाम है निम्बार्क-सम्प्रदाय। 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' तथा 'दश-श्लोकी' यह दो इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य-ग्रंथ है तथा 'दशश्लोकी' में संक्षिप्त रीति से ज्ञेय पंचविधि का निरूपण है। 'सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्ण-स्तवराज' नामक पच्चीस श्लोक वाला स्तोत्र भी इन्होंने लिखा है। निम्बार्क-सम्प्रदाय को 'सनक-सम्प्रदाय' अथवा 'हंस-सम्प्रदाय' भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि सनक-सनन्दन आदि ऋषि इस सम्प्रदाय के आदिम आचार्य हैं। इस सम्प्रदाय का प्रचार आजकल बहुत कम हो गया है। उत्तर भारत में यत्र-तत्र इस सम्प्रदाय के भक्त पाए जाते हैं। इसकी एक शाखा राधावल्लभ-सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्तक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी हितहरिवंश थे।[2] इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सार यह है कि ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपने अस्तित्व को विलीन कर सकता है। ब्रह्म से एकाकार होने पर उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। जीव को इस ब्रह्म-मिलन की साधना भक्ति द्वारा करनी चाहिए। कृष्ण के साथ राधा सब स्वर्गों से परे गो-लोक में निवास करती हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं। उन्हींसे राधा और गोपिकाओं का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार राधा और कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। निम्बार्क स्मार्त नहीं हैं। इसलिए ये राधाकृष्ण के अतिरिक्त किसी देवी-देवता को नहीं मानते।

चैतन्य—

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सन् १४८२ ई० में बंगाल में जन्म लिया।[3] छोटी सी उम्र में इन्होंने शिक्षा पाई। एक दिन ईश्वरपुरी नामक एक वैष्णव भक्त से इनकी भेंट हुई। उनके उपदेश सुनकर चैतन्य बहुत प्रभावित हुए और घर बार छोड़कर संन्यासी हो गए। श्री कृष्ण के नाम-कीर्तन में ये सब-कुछ भूल जाते थे। इनकी भक्ति देखकर लोग चकित होने लगे। कुछ समय के बाद ये आसेतु-हिमाचल भ्रमण करके कृष्ण-भक्ति का सन्देश देश के कोने-कोने में पहुंचाने के कार्य में अपना सारा समय व्यतीत करने लगे। अपने शिष्यों के साथ ये वृन्दावन में आए और वहां रहने का निश्चय कर लिया। तब से यह स्थान मुख्य तीर्थ-स्थान बन गया। श्री चैतन्य अपने अनुयायियों के साथ वृन्दावन में रहकर राधा-कृष्ण की उपासना करते थे। इनकी प्रशंसा में भक्तकवि नाभादास ने सुन्दर कविता रची है।[4]

---

1. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २६४।
2. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४३।
3. Cultural Haritage of India-Series : Part II, Page 13
4. श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गम्भीर।
   बेला भजन सुपात्र कथन कहूँ न्यारी। वृन्दावन दृढ़ बास जुगल चरननि अनुसारी।
   पोथी लेखन पान अघट अक्षर चित दीनी। सद्ग्रन्थन को सार सबै हस्तामल कीनी।
   सन्देह ग्रन्थि छेदन समर्थ, रस रास उपासक परम धीर।
   श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गम्भीर।

   —भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, रूपकला, छ० ९२, पृ० ६१३।

चैतन्यदेव ने कोई सिद्धान्त तथा साधना-सम्बन्धी ग्रन्थ नही लिखा। ये अन्य वैष्णवाचार्यों के समान दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन केवल व्याख्यान द्वारा अपने भक्तो के बीच मे कर देते थे। इनके देहावसान के बाद ही इनके सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ। उसके प्रवर्तक श्री रूपगोस्वामी थे। 'हरिभक्त-रसामृत-सिन्धु', 'उज्ज्वल नील-मणि' तथा 'लघुभागवतामृत' नामक तीन पुस्तकें लिखकर उन्होने अमर कीर्ति पाई। इनमें प्रथम दो ग्रन्थो मे भक्ति और उसके स्वरूप का बहुत ही विशद वर्णन है। काव्य-रस-शास्त्र की पद्धति पर भक्ति-रस के भावो का सविस्तार वर्णन करने वाले कदाचित् ये ही दो प्रथम ग्रन्थ हैं।[1]

चैतन्य-सम्प्रदाय मे भक्ति के चारो भावो को प्रधान मानते हुए भी माधुर्य-भाव पर विशेष जोर दिया गया है। इस सम्प्रदाय के अनुसार परम तत्त्व एक है। वह तत्त्व सच्चिदानन्द-स्वरूप अनन्त शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है। जैसे रूप-रसादि गुणो का मूल स्रोत एक पदार्थ दुग्ध है और पृथक्-पृथक् इन्द्रियो द्वारा पृथक्-पृथक् रूप मे दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही परम तत्त्व उपासना-भेद से अलग-अलग प्रकार से अनुभूत होता है।[2] यह परम तत्त्व 'श्री कृष्ण' ही है।

श्री चैतन्य ने राधा-भाव (दाम्पत्य-भाव) से कृष्ण की उपासना की। उन्होने राधा-कृष्ण के अनन्य प्रेम से सारे बगाल को ओत-प्रोत कर दिया। उनका जीवन तन्मयता-सक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री चैतन्यदेव ने अचिन्त्य भेदाभेद-सिद्धान्त के आधार पर अपनी रागानुगा भक्ति का प्रचार किया। श्री रामानुजाचार्य के श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्तको जैसे निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि महापुरुषो के समान इन्होने भी अपना सम्प्रदाय चलाया जिससे भक्ति-साधना के महत्त्व की धाक क्रमश सारे देश मे जम गई और दक्षिण भारत से लेकर वृन्दा-वन तक के भूखड मे भक्ति विशेषत कृष्ण-भक्ति का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया।

ज्ञानदेव—

वारकरी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक ज्ञानेश्वर का जन्म स० १३३२ मे हुआ और कहा जाता है कि इनका गोलोकवास स० १३५३ मे हुआ।[3] इनका जन्म स्थान दक्षिण भारत के पढरपुर नामक स्थान के आसपास आलदी नामक एक गाव है। इन्होने दो उत्तम ग्रथ रचे। पहला 'ज्ञानेश्वरी' दूसरा 'अमृतानुभव'। इन दोनो पुस्तको के द्वारा इन्होने वारकरी-

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ २२।

२ तत्तत् श्री भगवत्येव स्वरूप भूरि विद्यते।
उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके ॥
यथा रूपरसादीना गुणानामाश्रय सदा।
क्षीरादिरेक एकार्थो जायते बहुधेन्द्रिय ॥
—लघुभागवतामृत, पृ० १२६।

३ उत्तर भारत की सत परम्परा—प० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ८८।

सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए भक्ति-साधना का सामान्य जनता में प्रचार किया। इनके 'अमृतानुभव' नामक ग्रन्थ के एक पद से जान पड़ता है कि कश्मीरी शैव-सम्प्रदाय के मूलाधार शिव-सूत्रों का इनपर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था और कदाचित् इसी कारण इन्होंने शंकराद्वैत के मायावाद का खंडन भी किया था।[1]

यह भी कहा जाता है कि पंढरपुर में स्थापित विट्ठल नामक विष्णु की कृष्णमूर्ति के सिर पर शिव की मूर्ति बनी हुई है और वारकरी-सम्प्रदाय के अनुयायी शिव एवं विष्णु में कोई भेद-भाव नहीं मानते, वरन् एकादशीव्रत के साथ-साथ सोमवार के दिन भी उपवास करते हैं।

इस सम्प्रदाय के लोग योग-साधना को एक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। ज्ञानेश्वर की सर्वप्रसिद्ध रचना 'ज्ञानेश्वरी' श्रीमद्भगवद्गीता पर एक सुन्दर भाष्य है, जो उनके सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार मराठी भाषा में लिखा गया है। यह निर्गुण-निराकार परमात्मा की भक्ति का अद्वैतवादी ढंग से प्रतिपादन करता है। इसकी शैली बड़ी प्रभावोत्पादक है। ज्ञानेश्वर ने अपने केवल इक्कीस वर्ष के अल्पजीवन-काल में ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त तीर्थ-यात्रा भी की थी, जिसका रोचक वर्णन इनके सहयोगी मित्र और सम्भवत शिष्य नामदेव ने अपनी रचना 'तीर्थावली' में किया है। ज्ञानेश्वर व नामदेव के अतिरिक्त उक्त सम्प्रदाय में आगे चलकर एकनाथ (सं० १५९०–१६५६) व तुकाराम (सं० १६६६–१७०७) जैसे अन्य सन्त भी हुए, जिन्होंने इनके उपदेशों का प्रचार किया।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत चार शाखाएं थीं। उन शाखाओं के प्रवर्त्तकों ने अपने सिद्धान्तों को जनता के मध्य में प्रचार करने के लिए जीतोड़ प्रयत्न किया। उनकी अधिकांश रचनाएं मराठी भाषा में थीं। गुजरात, बरार, कर्नाटक आदि देशों में उन सम्प्रदायों के अनुयायी अब भी मिलते हैं।

वारकरी-सम्प्रदायों में पांच देवों की पूजा का विधान है। उनमें सर्वप्रधान इष्ट-देव विट्ठल भगवान् हैं। वे परमात्मा को निर्गुण ब्रह्म बतलाते हैं और अद्वैतवाद का समर्थन करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि सच्ची भक्ति से हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। उनकी भक्ति अद्वैत-भक्ति व अभेद-भक्ति है, जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं हो सकता।

ज्ञानेश्वर एक स्थान पर कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही पहाड़ के भीतर, देवालय, देवता एवं भक्त-परिवार का निर्माण किया जा सकता है, उसी प्रकार भक्ति का व्यवहार एकरूप रहते हुए भी सर्वथा सम्भव है, इसमें सन्देह नहीं है।[2] सभी तो सन्त में

१. [illegible] । [illegible] निमित्ते
[illegible] ।

—३, १९ [illegible] ।

२. [illegible] ।
[illegible] ।

—४०, अमृतानुभव [illegible] ([illegible])

जाकर देव देवत्व मे घनीभूत हो जाता है, भक्त भक्ति मे विलीन हो जाता है, और दोनो का अन्त हो जाने पर अभेद का स्वरूप अनन्त होकर प्रकट हो जाता है। जिस प्रकार गगा जब तक समुद्र से भिन्न रहती है तब तक दोनो एकाकार नही हो सकते, वैसे ही परमात्मा के साथ तद्रूप हुए बिना भक्ति का होना कभी सम्भव नही। निर्गुण की इस अद्वैत-भक्ति के लिए ये लोग ब्रह्म के सगुण रूप को भी एक साधन मानते हैं और उसके साथ तादात्म्य का भाव प्राप्त करने के लिए उसके नाम का निरन्तर स्मरण तथा उसके अलौकिक गुणो का सदा कीर्तन किया करते हैं। इनके यहा इस प्रकार भक्ति और ज्ञान का एक सुन्दर, सामञ्जस्य लक्षित होता है, जिसे साधना के रूप मे स्वीकार कर किसी भी जाति या श्रेणी का मनुष्य कल्याण का भागी बन सकता है।

वारकरी-सम्प्रदाय का नाम दो शब्दो अर्थात् 'वारी' एव 'करी' के सयोग से बना था, जिसका अर्थ 'परिक्रमा करने वाला' था। किन्तु इस परिक्रमा का अर्थ पढरपुर के मन्दिर मे स्थापित विट्ठल भगवान् की प्रतिमास की दोनो एकादशियो में की जाने वाली तीर्थ-यात्रा तक सीमित था और इस सम्प्रदाय के प्रत्येक अनुयायी का यह कर्तव्य था कि वह कम से कम आषाढ या कार्तिक मे इसे अवश्य कर ले। इन अवसरो पर यात्री बहुधा सयमित जीवन बिताते थे। ये लोग अपने आराध्य देवता के सामने खडे होकर भजन व कीर्तन करते थे और भावावेश में नाचने भी लगते थे। इससे मालूम होता है कि सगुण भक्तो में और इनमे किसी तरह का भेद नही है। फिर भी वर्णाश्रम के नियमो से मुक्त रहकर एक अकृतिम जीवन बिताना, सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा करना, प्रकृति-मार्ग को स्वीकार करना तथा साम्प्रदायिक रूढियो को अधिक महत्त्व न देना आदि बातें इन्हे साधारण भक्तो की श्रेणी से पृथक् कर देती थी। वारकरी-सम्प्रदाय के इन भक्तो को इसी कारण सन्त कहने की भी परिपाटी चल निकली और इन सन्तो के लिए 'वारकरी' शब्द का प्रयोग करने की परम्परा बन गई।

उत्तर भारत के सम्प्रदाय

कश्मीरी शैव सम्प्रदाय—

दक्षिण भारत के अन्तिम वैष्णव आडवार भक्तो के समय मे उत्तर भारत के कश्मीर प्रदेश मे कतिपय शैव भक्तो का भी आविर्भाव होने लगा था, जिनकी परम्परा में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होने कश्मीरी शैव-सम्प्रदाय का प्रचार किया। इसके मूल प्रवर्तक वसुगुप्त माने जाते हैं जो विक्रम की नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उत्पन्न हुए थे।[1] इनके 'शिवसूत्र' प्रसिद्ध हैं। इन्होने भी वैष्णवाचार्यों के समान दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रचार किया। इनके दो प्रसिद्ध शिष्य थे जो कल्लट और सोमानन्द नाम से

---

१ उत्तर भारत की 'सन्त परम्परा'—ले० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ८६।

प्रसिद्ध थे। इन दोनों का दार्शनिक मत 'ईश्वराद्वैतवाद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह शंकराचार्य के ब्रह्माद्वैतवाद से कई बातों में भिन्न था। ईश्वराद्वैतवाद के समर्थकों का कहना था कि ईश्वर ब्रह्म की भांति निष्क्रिय नहीं, किन्तु स्वतन्त्र कर्ता है और माया उसकी स्वातन्त्र्य-शक्ति व परिगृहीत रूप मात्र है। वह अपनी इच्छा के अनुसार मनुष्य के रूप में अपनी लीला दिखाने के लिए माया को करता है और इसके द्वारा स्फुरण किया करता है। उनका कहना है कि मोक्ष न तो केवल ज्ञान से सम्भव है और न कोरी भक्ति से ही। इसके लिए दोनों का सामञ्जस्य होना परमावश्यक है। शुद्ध भक्ति की साधना में द्वैत भाव अपेक्षित होता है जो अज्ञान का परिचायक है और जिसके कारण किसी समय मोह का उत्पन्न होना सम्भव है। इसलिए भक्ति के साथ ज्ञान का योग होना ही चाहिए क्योंकि ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भक्ति द्वारा उत्पन्न द्वैतमूलक भावना नष्ट हो जाती है। यही ज्ञान-समन्वित भक्ति ही नित्य है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय—

इस सम्प्रदाय को श्री स्वामी हितहरिवंश जी ने चलाया।[1] पहले ये माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे परन्तु बाद को निम्बार्कस्वामी की श्रीकृष्ण-भक्ति पद्धति का अनुसरण करने लगे। हितहरिवंश ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय की स्थापना में वृन्दावन में की थी। उनके अनुयायी कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्त्व देते हैं और राधा की ही पूजा करते हैं।

हितहरिवंश के दो ग्रन्थ—(१) 'राधासुधानिधि' (संस्कृत में) और (२) 'चौरासी पद' (व्रजभाषा में) प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों में रासलीला का नग्न वर्णन है और शृंगार की पराकाष्ठा है। धार्मिक भावना के अतिरिक्त हितजी के पद कवित्व की दृष्टि से भी उच्च कोटि के माने जाते हैं।[2]

हितजी के शिष्यों में प्रमुख व्यासदेव ने बयालीस ग्रन्थों की रचना करके राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार किया। दामोदरदास जैसे दूसरे कवियों ने भी प्रेम, भक्ति और काव्य के भावों की रस-धारा प्रवाहित की है, परन्तु इस सम्प्रदाय के कवियों की रचनाओं में भाव की वह प्रभावात्मकता नहीं है जो अष्टछाप-काव्य में है।[3]

हरिदासी अथवा सखी-सम्प्रदाय—

हरिदासी-सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक अलीगढ़-निवासी आसधीर थे। उनके देहान्त के बाद इस सम्प्रदाय को हरिदासपुरनिवासी श्री हरिदास ने एक स्वतन्त्र रूप दे दिया और इसके सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। श्री बिहारिनीदास, श्री नागरीदास

१. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६४।
२. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—प्रो० सूर्यकान्त शास्त्री, पृ० २२४।
३. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६७।

तथा श्री ललितकिशोरजी इस सम्प्रदाय के स्तम्भ समझे जाते हैं। इन्होने अपनी रचनाए व्रजभाषा मे की।

यह सम्प्रदाय भी भक्ति का एक साधन मार्ग है, और अपने आरम्भिक काल मे वेदान्त के किसी 'वाद' अथवा किसी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त पर यह मत आधारित नही था। स्वामी हरिदासजी ने राधाकृष्ण की युगल-उपासना केवल सखी-भाव से करने पर ज़ोर दिया।[1]

स्वामी हरिदासजी की प्रशसा करते हुए नाभादासजी ने लिखा है कि वे 'रसिक' नाम की छाप से प्रसिद्ध हुए। वे नित्य ही राधाकृष्ण की पूजा करते थे और उनका नाम जपते थे, सखी-भाव से युक्त होकर श्याम और श्यामा की प्रणय-लीला का आनन्द लेते थे। गान-कला में उनकी सामर्थ्य अद्भुत थी। वे अपने सुमधुर गीतो से राधाकृष्ण को प्रसन्न किया करते थे। राजा लोग भी इन प्रसिद्ध सगीतज्ञ महात्मा के दर्शन करने के लिए लालायित रहते थे।[2]

श्री वल्लभाचार्यजी का सम्प्रदाय—

श्री वल्लभाचार्य का जन्म तेलुगु देश मे स० १५३५ वि० में हुआ था। उनके पिता विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वल्लभ और चैतन्य समकालीन थे। बाल्यावस्था मे ही श्री वल्लभ ने सारे शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। उनकी प्रखर प्रतिभा को देख-कर सब को बडा आश्चर्य हुआ। जब इनके पिताजी का देहान्त हुआ तब उन्होने अपनी स्नेहमयी माता को अपने मामा के घर में पहुचा दिया और आसेतुहिमाचल भ्रमण किया। उसी यात्रा मे विजयनगर के राजा से उनकी भेंट हुई और वे पडितो के साथ वाद-विवाद करते उस राज्य के दरबार में रहने लगे।

एक दिन विविध सम्प्रदायो के पडितो में वाद-विवाद हुआ। अन्त मे वैष्णव-पक्ष की हार होने वाली थी कि श्री वल्लभ ने आकर अपनी अकाट्य युक्तियो और प्रकाड पाडित्य द्वारा वैष्णव-पक्ष के विद्वानो को पराजित होने से बचाया। राजा अत्यधिक प्रसन्न हुए और आचार्य की पदवी देकर विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के सिंहासन पर उन्हे बिठाकर उनका बडा आदर किया।[3]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६७।

२ आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सों नेम जपत नित कुञ्ज विहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी।
गानकला गन्धर्व स्याम स्यामा को तोषें।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषें।
नृपति द्वार ठाड़े रहें दर्शन आसा जास की।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।

—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद, पृ० ६०७।

३ वल्लभ-दिग्विजय, पृ० १९।

वल्लभ ने अपने को अग्नि का अवतार कहा है। उन्होंने यद्यपि विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों का पालन किया तथापि चैतन्य के समान निम्बार्क के मत का भी अवलम्बन किया। कृष्ण को उन्होंने ब्रह्म माना है। राधा को उनकी स्त्री और उनके क्रीडा-स्थल को वैकुण्ठ बताया है। दार्शनिक दृष्टिकोण से उनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत का है। शंकर का अद्वैत जैसे शुद्ध बना दिया गया हो। शंकर की माया के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार माया से रहित अद्वैत ही शुद्धाद्वैत है। शंकर के अद्वैत में भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। इस शुद्धाद्वैत में माया के बहिष्कार के साथ भक्ति के लिए विशेष विधान है। भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है। ज्ञान से ब्रह्म केवल जाना जा सकता है। भक्ति से ब्रह्म की अनुभूति होती है। इस प्रकार भक्ति का स्थान सर्वोच्च है।[1]

प्रेम-साधना के लिए वल्लभ ने लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनों का त्याग उचित ठहराया। इस प्रेमलक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का अनुग्रह होता है, जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसीसे वल्लभाचार्य ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा है। उन्होंने जीव तीन प्रकार के माने हैं—(१) पुष्टि-जीव, जो भगवान् के अनुग्रह का ही भरोसा रखते हैं और नित्य लीला में प्रवेश पाते हैं, (२) मर्यादा-जीव, जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं और (३) प्रवाह-जीव, जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही लगे रहते हैं।[2]

चैतन्य तथा वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में बहुत-कुछ समानता है। दोनों में माधुर्य-भाव-प्रधान भक्ति का विशेष स्थान है। दोनों में राधा-कृष्ण की भक्ति को समान महत्त्व दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि चैतन्य-सम्प्रदाय ने भावुकता को अधिक स्थान मिला है। रासलीला के अनुसरण में चैतन्य-सम्प्रदाय के अनुयायी गान, वाद्य, नृत्य और कीर्तन को विशेष स्थान देते हैं।

वल्लभ-सम्प्रदाय की भक्ति अधिक संयत है। इसमें पूजाविधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'वार्ता' से पता चलता है कि वल्लभाचार्य ने कीर्तन का प्रबन्ध श्री नाथजी की स्थापना के कई वर्ष बाद किया। सम्भव है कि इसका कारण चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव हो, क्योंकि चैतन्य ने स्वयं व्रज की यात्रा की थी और उनके कई अनुयायी व्रज में बहुत दिन तक रहे थे। श्री नाथजी के मन्दिर का प्रबन्ध भी लगभग तीन वर्ष तक बंगालियों के हाथ में रहा। इस प्रकार चैतन्य-सम्प्रदाय की भावुकता और रसिकता वल्लभ-सम्प्रदाय को बहुत समय तक प्रभावित करती रही।

महाप्रभु वल्लभाचार्य बाल गोपाल के उपासक थे। बालरूप की उपासना करने पर भक्त मुक्ति पा सकता है। यह उनका विश्वास और सिद्धान्त था। इसने उपास्य के

१ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ३०-।
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १३६।

सम्बन्ध रखने वाले स्थान और वस्तुए, जमुना, गोकुल, निकुञ्ज सब के सब उन्हे प्रिय थे। 'व्यापी वैकुण्ठवासी' अपने इन इष्टदेव के प्रेममय स्वरूप को उन्होने जनता के सामने रखा और लोगो को हठात् अपनी ओर आकृष्ट किया। बालक का बाल-चापल्य, उसका हसना, रूठना, हठ करना, मचल जाना, ठुमुक-ठुमुककर चलना आदि बातें किसको प्रिय नही होती ? यदि देखा जाए तो परमात्मा का रूप सरल, सुन्दर बालक में ही पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होकर विद्यमान रहता है। उनके शिष्यो पर भी इन बातो का प्रभाव पडा। उनको भक्ति का नया आधार प्राप्त हुआ। वे आनन्द से नाच उठे और अपने प्रभु के रूप का, उनके प्रत्येक कृत्य का उन्होने ऐसा सुन्दर और मनोमोहक दृश्य उपस्थित किया कि भक्तजनो का रोम-रोम खिल उठा। उनकी आत्मा और हृदय आनन्द मे डूब गए। तल्लीनता की उस अवस्था मे उन्होने जो कुछ लिख डाला, वह हमारे साहित्य की अनुपम सम्पत्ति है। बडे आनन्द की बात तो यह है कि भाव, भाषा और शैली (गीतिकाव्य) बहुत-कुछ एक होने पर भी उनके पढने मे हर बार नूतनता दिखाई पडती है। महाभारत और रामायण के पढने में ठीक यही आनन्द प्राप्त होता है। सक्षेप मे वल्लभ के पुष्टिमार्ग तथा अष्टछाप के कवियो द्वारा लिखित काव्य ने मध्ययुगीन मानव-जीवन को सरस और सौन्दर्यप्रिय बनाया। जीवन से उदासीन हिन्दू साहित्य, सगीत और कला में एक बार फिर रुचि लेने लग गए। इन कवियो ने मानव-सस्कृति के उन अगो का स्पर्श किया जिनकी ओर उस समय तक भारतीय धर्म-व्यवस्थापको, साहित्यिको की और कलाकारो की दृष्टि तक नही पहुची थी।

वल्लभाचार्य के मुख्य ग्रथ हैं—(१) पूर्वमीमासा-भाष्य, (२) उत्तर-मीमासा या ब्रह्मसूत्रभाष्य जो अणुभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है और उनके शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन-प्रधान दार्शनिक ग्रथ है, (३) श्रीमद्भागवत की सूक्ष्म टीका तथा सुबोधिनी टीका, (४) तत्त्व दीन निबन्ध, तथा (५) सोलह छोटे-छोटे प्रकरण-ग्रथ। इनमे से पूर्वमीमासा-भाष्य का बहुत थोडा अश मिलता है। अणुभाष्य आचार्यजी पूरा न कर सके थे। अत अन्त के डेढ अध्याय उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने लिखकर उक्त ग्रथ को पूरा किया।[1]

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—लेखक रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १५६।

दूसरा परिच्छेद

कृष्णभक्त कवि

हिन्दी के कवि

सूरदास

जीवनवृत्त—

हिन्दी-साहित्य-नभोमण्डल के जाज्वल्यमान मार्तण्ड सूरदास का जन्म कब हुआ और उनका बाल्यकाल कहा बीता, आदि विषयो के बारे में पंडितो के विभिन्न मत हैं। डा० गुप्तजी ने सिद्ध किया है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट गुड़गाव जिले के एक सीही नामक ग्राम मे हुआ।[1] श्री हरिरायजी कृत भावप्रकाश वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक पुस्तक मे लिखा है कि अपने जन्म स्थान सीही गाव से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे अपने शिष्यो के साथ सूरदास रहते थे।[2] वहाँ रहकर उन्होंने गान-विद्या में प्रवीणता प्राप्त कर ली और उनका यश बिजली की गति से चारो ओर फैलने लगा।

कुछ समय के बाद उनको सांसारिक विषयों से विरक्ति हो गई और अपने थोड़े से शिष्यो के साथ वे पुण्य-स्थानो के दर्शन करने निकल पड़े। फिर गऊघाट पर आकर भगवान् के गुणो का कीर्तन करने और उनके भजन मे समय बिताने लगे।[3]

जाति—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा गया है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे।[4] सच्चे भक्त होने के कारण अपनी जाति व कुल के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ नहीं लिखा है। सूरदास के समकालिक विट्ठलनाथ जैसे भक्तजनों ने उनको ब्राह्मण कहकर पुकारा था, ऐसा वर्णन 'वल्लभ-दिग्विजय' में हम पाते हैं।[5] जनश्रुति भी इसी प्रकार है।

---

1. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डा० [illegible] गुप्त, पृ० १६६ ।
2. सूरदास, कांकरौली पृ० ८ ।
3. सूरदास, कांकरौली पृ० ६ ।
4. [illegible] सूरदास [illegible], [illegible]—[illegible] सूरदास, कांकरौली पृ० १ ।
5. [illegible] सारस्वत [illegible] ([illegible], पृ० [illegible])।

माता-पिता तथा कुटुम्ब—सूर के मा-बाप बडे निर्धन थे। सूरदास जी की अन्धता के कारण वे उनके पालन-पोषण में अधिक ध्यान नही लगाते थे। 'वार्ता' मे कहा गया है कि सूर के तीन भाई थे।[१] बचपन से ही घरबार छोडकर सूर भगवान् के गुणगान मे तल्लीन रहते थे। बचपन से ही ससार के प्रति विरक्ति तथा प्रबल माया से सावधान रहने की प्रवृत्ति आदि का उल्लेख उनके पदो मे है। उससे हम समझ सकते है कि वे परिवार-सम्बन्धी बातो में बडी दिलचस्पी न लेते थे और सम्भवत उन्होने विवाह नही किया था।

सूरदास की अन्धता—सूरदास जन्म से अन्धे थे या पीछे अन्धे हो गए, इस सम्बन्ध में अब भी विद्वान् लोगो मे मतभेद है कि सूरसागर के कई सुन्दर पदो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जो कवि अन्धा हो वह इतनी सुन्दरता तथा तन्मयता से इस प्रकार के सुन्दर पद नही लिख सकता। 'रामरसिकावली' में लिखा है कि सूरदास जन्म से ही अन्धे थे परन्तु भगवान् के प्रसाद से उन्होने दिव्य दृष्टि पाई।[२] डा० गुप्त का मत है कि सूरदास अन्धे थे और जिस समय उन्होने पद-रचना की उस समय भी वे अन्धे ही थे।[3]

शिक्षा-दीक्षा—सूर की शिक्षा के सम्बन्ध मे कही कुछ नही लिखा गया है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा गया है कि वे गऊघाट पर रहकर गान-कला का अभ्यास करते थे। हरिरायजी कृत 'भावप्रकाश' के आधार पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि सूर १८ वर्ष तक एक वृक्ष के नीचे रहते थे। लोग उन्हे 'स्वामी' कहकर पुकारने लगे और वहा रहकर उन्होने गान-विद्या सीखी।[४]

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी हो जाने के बाद वल्लभाचार्य से उन्होने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य ने उनको भागवत सुनाकर उसका तत्त्व समझाया और सूरदास ने भागवत के तत्त्व और वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को हृदयगम करके ही सहस्रो पदो की रचना की।

'सूरसागर' पढने पर मालूम होता है कि सूरदास बडे ही प्रतिभाशाली, कुशल और महाभक्त कवि हैं। उनकी यह कृति ज्ञान और भक्ति का अगाध सागर है। सूर की अपार विद्वत्ता की छाप उसपर है।

साम्प्रदायिक जीवन—श्री वल्लभाचार्य एक दिन ब्रज की ओर जाते समय गऊघाट पर ठहरे, जहा सूरदासजी रहते थे। यही उन दिनो महापुरुषो का मिलन हुआ। सूर को देखकर वल्लभ ने कोई गीत गाने को कहा तो सूर ने बडे सकोच से विनय का पद

---

१ अष्टछाप कांकरौली—पृ० ४ तथा ५।

२ जन्महि ते हैं नैनविहीना, दिव्य दृष्टि देखहि सुख मीना।
—रामरसिकावली। महाराज रघुराजसिहजी कृत में सूरदास।

३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० २०३।

४ सूरदास—ले० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ७३।

सुनाया। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी बड़े प्रभावित हुए और अंत में उन्होंने अपने सम्प्रदाय के तत्त्व समझाकर सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। उन्होंने भगवान् कृष्ण की लीलाओं पर पद रचकर गाने का उपदेश भी दिया। उसी दिन से सूर भगवान् की लीला के गान गाने लगे। गुरु और शिष्य दोनों साथ-साथ रहते थे। शिष्य को श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा करने का भार सौंपा गया।[1]

कहा जाता है कि अकबर बादशाह भी उनके कीर्तन सुनकर प्रभावित हो गए और उनको दरबार में मुख्य स्थान देने के लिए तैयार हो गए, किन्तु वैरागी भक्तवर सूर ने स्वीकार करने से साफ इंकार कर दिया।[2]

स्वभाव और चरित्र—सूरदास सदा भगवान् की पूजा में लगे रहते थे और लौकिक विषयों की ओर से सर्वदा उदासीन रहते थे। उनके दीनता भरे पदों से हम समझ सकते हैं कि वे नम्रता की मूर्ति थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने सूर के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है 'पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाको कछु लेनों होय सो लेउ।'[3]

गोलोकवास—कहा जाता है कि सूरदास को मृत्यु का समय मालूम था और उन्होंने पारसोली नामक स्थान पर जाकर राधा-कृष्ण का ध्यान लगाते हुए अपने शरीर का त्याग किया।[4]

सूर की जन्मतिथि और उनके गोलोकवास की तिथि आदि विषयों के बारे में निश्चित रूप से अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कई पंडितों के मतों के आधार पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि सूर का जन्म संवत् १५३० में हुआ।[5] फिर उन्होंने सिद्ध किया है कि सं० १६४० तक सूर जीवित रहे थे।[6]

डा० गुप्त का मत है कि सूरदास का जन्म सं० १५३५ में हुआ[7] और वे सं० १६३६ तक जीवित थे।[8]

रचनाएं—

वर्तमान काल में गवेषकों ने अब तक सूरदास की चौतीस पुस्तकें खोज निकाली

---

१. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डॉ० दा० गुप्त, पृष्ठ २०७।

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दा० गुप्त, पृष्ठ २०३।

३. अष्टछाप, [illegible], पृष्ठ २०।

४. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृष्ठ २००।

५. सूरदास—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ६२।

६. सूरदास—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ७[illegible]।

७. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डॉ० दा० गुप्त, पृष्ठ [illegible]।

८. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—डॉ० दा० गुप्त, पृष्ठ [illegible]।

हैं। उनमे मुख्य और प्रामाणिक रचनाए सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावली हैं।[१]

सूरसागर—

कृष्ण-भक्ति के काव्यो में सूरसागर का स्थान अद्वितीय है। यह सचमुच रत्नाकर है। जो जितनी गहरी डुबकी लगाता है वह उतने ही अधिक आनन्दरूपी रत्न पाता है। कवि ने एक स्थान पर स्वय लिखा है कि ब्रह्मा ने चार श्लोक रचकर नारद को दिए थे। नारद ने उन्हे व्यास मुनि को समझाया और मुनि ने उनके आधार पर भागवत की रचना करके अपने पुत्र को सुना दिया। उसके तत्त्वो तथा कथाओ को मन में रखकर सूर ने सूरसागर लिखा।[२]

विश्वास, विचार, भावनाए आदि—

उनका समस्त व्यक्तित्व इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मे समाविष्ट है। विनय के पदो मे कवि के आत्मकथन का भास हमे मिलता है, यथा मैंने विषय-वासना में अपना सारा समय बिता दिया। जिन लोगो को मैंने अपना समझा वे ही मुझे त्याग कर चले गए। मुझमे सब प्रकार की दुर्बलता आ गई है, तो भी माया-मोह नही छूटता।[३] विनय के पद ऐसे ही भावो से ओतप्रोत हैं। उनमे हृदय-दौर्बल्य के प्रति पश्चात्ताप, दैन्य तथा असमर्थता के भावो का प्राधान्य है। प्रत्येक पद में कवि ने भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए बडी आतुरता और व्यग्रता से प्रार्थना की है। सूरसागर के प्रथम स्कन्धो मे ऐसे अनेक पद पाए जाते हैं।

भक्ति-माहात्म्य, नाम-महिमा, भक्तिसाधन आदि पर द्वितीय स्कन्ध में गीत लिखे गए है। सूरसागर के बारह स्कन्धो मे भागवत के विविध लीला-अवतारो की कथाओ का सरस वर्णन सुन्दर शैली मे किया गया है। दशम स्कन्ध मे कृष्ण की लीलाओ का विशद वर्णन है। भागवत की कथाओ और तत्त्वो को सूर ने यहा अपनी भावना के अनुसार ही लिखा है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहा कवि की प्रतिभा तथा मौलिकता परिलक्षित होती है। शेष सभी अश भागवत के अनुसार हैं।

भागवत मे वर्णित विभिन्न कृष्ण-लीलाओ का वर्णन सूरदास ने प्रबधात्मक ढग

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २६८।

२ श्री मुख चारि श्लोक दिए ब्रह्मा को समुझाई।
ब्रह्मा नारद सों कहे, नारद व्यास सुनाइ॥
व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पदभाषा करि गाइ॥—२६३। प्रथम स्कंध, सूरसागर।

३ राग कान्हरो
दीन नाथ अब बारि तुम्हारी।
पतितउधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सवारी।
सूरदास प्रभु करुना सागर, तुमते होइ सो होई॥
—सूरसागर प्रथम स्कन्ध, पद स० ११८, स० सूर समिति।

से भी किया है। 'श्रीराधा-कृष्णमिलन', 'पनघटप्रस्ताव', 'दान-लीला' आदि कथाएं सूर की मौलिक रचनाएं हैं। कृष्ण की विविध अवस्थाओं के चित्रण में काव्यात्मक शैली का उपयोग कवि ने किया है। प्रेम और भक्ति का क्रमिक विकास अंकित करने में सूर ने अपने हृदय की गहरी तल्लीनता और तन्मयता का परिचय दिया है। प्रेम और भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए राधा को आलंबन मानकर कवि ने सूरसागर को एक स्वतन्त्र मौलिक रचना का रूप प्रदान कर दिया है, कारण भागवत में राधा का इस प्रकार कहीं भी उल्लेख नहीं है।

सूरसारावली—

भागवत और सूरसागर की कथाओं का सारांश इसमें दिया गया है। डा० दीनदयालु गुप्त ने सिद्ध किया है कि यह कृति सूरदास की ही रचना है।[1] कई पंडित लोग उसे सूरदास की रचना नहीं मानते। हाल ही में डा० व्रजेश्वर वर्मा ने कई युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली के दृष्टिकोण के विचार से सूरसारावली सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं है।[2] परन्तु उनके तर्क डा० गुप्त के कथनों से कट जाते हैं।

साहित्यलहरी—

सूरदास के दृष्टकूटपदों का समूह साहित्यलहरी है। डा० गुप्त का कथन है[3] कि इसका संकलन सूर के ही समय में हुआ होगा। यद्यपि इनके कई पद सूरसागर के कई पदों से मिलते-जुलते हैं तो भी ऐसे बहुत से पद इसमें संगृहीत हैं जो सूरसागर के पदों से नहीं मिलते। अतः यह एक स्वतन्त्र रचना के रूप में माना जाता है।

सूरदास का काव्य गीतबद्ध है। उन गीतों में कृष्ण की कथाओं और उनके जीवन की मार्मिक घटनाओं का वर्णन सुन्दर शैली में उन्होंने लिखा है। कृष्ण की बाल-लीलाओं पर मुग्ध होकर उनका चित्र बड़ी कुशलता से उन्होंने पाठकों के सामने उपस्थित किया है।

सूर ने अपनी कविताओं द्वारा निर्गुणोपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाकर सगुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है कि सूर ने मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।[4]

---

1. [illegible] भाग २ पृ० ४०।
2. [illegible] पृ० [illegible]।
3. [illegible] जो [illegible] में [illegible] है।
—[illegible]
4. [illegible] रामचन्द्र शुक्ल, पृ० [illegible]।

परमानन्ददास

जीवनवृत्त—

सूरसागर के रचयिता सूरदास के समान ही परमानन्ददास भी उच्चकोटि के कवि माने जाते हैं। उनके जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ बहुत कम हैं। डा० दीनदयालु गुप्त जी की गहन गवेषणा के फलस्वरूप कुछ बातें प्रकाश मे आई हैं। 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' मे लिखा है कि परमानन्ददास का जन्म स० १५५० मे हुआ।[1] इनका जन्म-स्थान कन्नौज है। ये जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

शिक्षा-दीक्षा—इनकी शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी विदित नही है। कहा जाता है कि बचपन से ही इनमे कविता करने की उत्कट इच्छा वर्तमान थी और हरि-कीर्तन के लिए पद रचने और गाने मे ये बडे दक्ष थे। ससार के प्रति इनका वैराग्य देखकर लोग इन्हे स्वामी कहकर पुकारने लगे।[2] धीरे-धीरे इनका यश चारो ओर फैलने लगा। एक दिन श्री वल्लभाचार्य से इनकी भेंट हुई। परमानन्ददास की निर्मल भक्ति देखकर आचार्य को बडा आश्चर्य हुआ। एक दिन परमानन्ददास के मुह से कुछ पद सुनकर आचार्यजी समाधिस्थ हो गए, तीन दिन तक उनकी समाधि टूटी नही।

श्री वल्लभाचार्य ने परमानन्ददास को अपना शिष्य बनाया और मन्दिर मे कीर्तन गाने का काम भी उनको सौप दिया। परमानन्ददासजी का मन धन, कीर्ति आदि से सर्वदा विरक्त रहता था। सदा कृष्ण भगवान् के गुणगान मे वे तल्लीन रहते थे। सच्चे भक्तो के समान वे विनम्र व्यक्ति थे, और अपने को भगवान् का तुच्छ दास समझते थे। भक्तो की सेवा-शुश्रूषा मे वे बहुत प्रसन्न रहते थे।

श्री कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओ पर जिन पदो की रचना उन्होंने की वे बहुत ही सुन्दर हैं। श्री विट्ठलनाथ और श्री गोकुलनाथ जैसे प्रकाण्ड पण्डितो ने उनके बनाये हुए पदो की बडी प्रशसा की है।

परमानन्ददास ने बाल-भाव[3], दाम्पत्य-भाव और दास-भाव[4] से कृष्ण की

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २२६।

२ अष्टछाप कांकरौली, पृष्ठ ५६।

३ या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किये, तामों परमानन्ददास के पद मे बाल-लीला भाव, और रहस्यहू झलकत हैं। सो या लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्ददास गाये।'—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८६।

४ या भांति परमानन्ददास ने बहुत कीर्तन किए। सो श्री गोकुल के दर्शन करि कै परमानन्ददास को श्री गोकुल में बहुत आसक्ति भई। तब आचार्य जी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाए जा मांझ श्री गोकुल में आपके चरणारविन्द के पास राखो। सो ऐसे कीर्तन परमानन्ददास ने प्रार्थना के गाए।

उपासना की है, ऐसा 'वार्ता' से ज्ञात होता है। सखी और सख्यभाव-प्रधान अनेक पद भी उन्होंने गाए हैं। कहते हैं कि राधा-कृष्ण का गुणगान करते-करते कवि ने अपना शरीर छोड़ा, मृत्यु का समय ठीक से अभी तक कोई निश्चित नहीं कर सका है। किन्तु डा० गुप्त का मत है कि परमानन्ददास की मृत्यु सूरदास और कुम्भनदास की मृत्यु के बाद लगभग संवत् १६४० वि० में हुई होगी।[1]

रचनाएं—

इस बात का पता लग गया है कि परमानन्ददासजी ने निम्नलिखित पुस्तकें लिखी हैं—(१) दानलीला (२) ध्रुवचरित्र (३) परमानन्ददास के पद (४) वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों के पद और (५) हस्तलिखित परमानन्दसागर और परमानन्द-दासजी के पदकीर्तन-संग्रह।[2]

डा० गुप्त कहते हैं कि हस्तलिखित पद-संग्रह के अध्ययन से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) सब प्रतियों में एक से पद नहीं हैं। बहुत से पद जो एक संग्रह में हैं, दूसरे में नहीं हैं। इससे अनुमान होता है कि यदि सब पदों का मिलान कर उन्हें एकत्र किया जाए तो परमानन्द-सागर में लगभग दो हज़ार पद निकलेंगे।

(२) सब प्रतियों में पदों का क्रम विषय के अनुसार है, रागों के अनुसार नहीं है, जैसा कि सूरदास अथवा अन्य अष्टछाप कवियों के अनेक पद-संग्रहों में मिलता है।

(३) परमानन्ददास के पदों में सूरसागर की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन नहीं है। उनके पदों में दशम स्कन्ध का पूर्वार्द्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और भँवर-गीत तक के प्रसंगों का मुख्यतः वर्णन है। सूरदासजी ने तो स्वयं कई स्थलों पर कहा है कि वे भागवत के आधार पर पद लिख रहे हैं।[3] परमानन्ददास के पदों में से ऐसे उद्देश्य का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। उन्होंने कुछ स्फुट पद, प्रह्लादलीला, दीपमालिका, रामजन्म, नृसिंह, वामन अवतारों की प्रशंसा आदि विषयों पर भी लिखे हैं जो बहुधा वल्लभ-सम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन ग्रन्थों में मिलते हैं।

(४) परमानन्ददासजी के सब से अधिक संख्या के पद कृष्णजी की बाललीला, कृष्ण के प्रति गोपियों की आसक्ति-अवस्था, गोपी-विरह तथा भ्रमरगीत पर लिखे हैं। मान, खण्डिता, युगललीला, रास आदि के पद थोड़ी संख्या में हैं।

(५) परमानन्ददासजी ने इन पदों में कृष्ण की भावात्मक शृंगार-प्रधान लीलाओं का ही वर्णन किया है और कृष्णावतार की [illegible] लीला और [illegible] का

[1] [illegible]
[2] [illegible]

वर्णन नही किया। सूर ने इन कथाओ का भी वर्णन किया है।

(६) सूरसागर मे जैसे श्री कृष्ण की लीलाओ को सूरदास ने पद और छन्द दोनो शैलियो मे लिखा है, उसी प्रकार परमानन्दसागर मे, भवरगीत तथा एक-दो अन्य प्रसगो को छोडकर और कोई प्रसग छन्द-शैली में लिखे नही मिलते। उक्त सग्रहो में केवल पद ही मिलते हैं।[1]

डा० दीनदयालु गुप्त का निष्कर्ष है कि परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना केवल एक परमानन्दसागर है। उसीके पद पृथक्-पृथक् रूप से कीर्तन-सग्रहो में मिलते हैं। दान-लीला तथा ध्रुव-चरित्र उनकी सन्दिग्ध रचनाए हैं।[2]

नन्ददास

जीवनवृत्त—

सूरदास और परमानन्ददास के बाद अष्टछाप के कवियो में प्रमुख स्थान नन्ददास अलकृत करते हैं। उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतभेद है। श्यामसुन्दरदास ने नन्ददास का जन्म सवत् १५६० के लगभग माना है।[3] डा० गुप्तजी का मत है कि नन्ददास का जन्म स० १५६० में हुआ।[4] नाभादासकृत भक्तमाल के अनुसार उनका निवासस्थान रामपुर गाव बतलाया जाता है।

'२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा है कि तुलसीदास और नन्ददास भाई-भाई हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सपादित अष्टछाप-वार्ता से ज्ञात होता है कि नन्ददासजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समकालीन और उनके शिष्य थे। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले वे रामभक्त थे। उसके बाद वे गोकुल मे रहने लगे।

ध्रुवदासकृत 'नामावली' मे नन्ददास की कविता-शक्ति की प्रशसा, उनके काव्य के गुणो का वर्णन और उनके मन की रसिक वृत्ति का ही परिचय दिया गया है। नन्द-दास ने जो कुछ भी कहा है वह सब 'राग-रग' अथवा अनुराग रग में रगा हुआ है। उनकी रचना सरस शब्द-चयन ही उनकी रसिकता का परिचायक है। उनके कवित्त सुन्दर रूप में ढले हुए होते हैं। कृष्ण रस मे मस्त वे मानो पागल हो। नन्ददास की ख्याति उनके जीवनकाल मे ही इतनी फैल चुकी थी कि ध्रुवदास ने, जो उनके समकालीन भक्त थे,

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० ३१०, ३११।

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० ३१२।

३ हिन्दी साहित्य—ले० श्यामसुन्दरदास, पृ० १६२।

४ प्राचीन वार्ता रहस्य (काकरौली) द्वितीय भाग, अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण पृ० १=।

इनकी मार्मिक शब्दों में प्रशंसा की ।[1]

नन्ददास सूरदास की अपेक्षा अधिक तार्किक थे। उनकी भाषा स्पष्ट और परिमार्जित है। भ्रमरगीत मे उद्धव और गोपियो के संवाद में उन्होंने बड़ी मार्मिकता के साथ निर्गुणवाद के विरुद्ध सगुणवाद का पक्ष सिद्ध किया है।

रचनाएं—

रासपंचाध्यायी, नाममंजरी, अनेकार्थमंजरी, रुक्मिणी-मंगल, भंवरगीत, सुदामा-चरित्र, विरहमंजरी, प्रबोधचन्द्रोदय नाटक आदि तीन ग्रंथ उनके रचे हुए कहे जाते हैं ।[2] परन्तु डा० गुप्त ने सिद्ध किया है कि नन्ददास के निम्नलिखित ग्रंथ प्रामाणिक हैं—(१) रसमंजरी, (२) अनेकार्थमंजरी (३) मानमंजरी (४) दशमस्कन्ध (५) श्याम-सगाई (६) गोवर्धनलीला (७) सुदामाचरित्र (८) विरहमंजरी (९) रूपमंजरी (१०) रुक्मिणीमंगल (११) रासपंचाध्यायी (१२) भंवरगीत (१३) सिद्धान्त-पंचाध्यायी ।

नन्ददास की रचनाओ में भ्रमरगीत और रासपंचाध्यायी ये दोनो ग्रन्थ सब से उत्तम माने जाते हैं। भ्रमरगीत मे निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाई गई है तथा गोरखनाथ जैसे योगियो के पंथ और कबीर आदि संतो के ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा वल्लभा-चार्यजी की प्रेम-भक्ति का महत्त्व सिद्ध किया गया है। भ्रमरगीत की समस्त रचनाओं में ऐसा अद्भुत आकर्षण और प्रवाह है कि पाठक बलात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। इसकी रचना भी रोला-दोहा के मिश्रण से बने छन्दों में की गई है जो सुनने में बहुत मधुर है।

रासपंचाध्यायी के पांच अध्याय श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के अध्याय २९-३३ पर आधारित हैं ।[3] इसकी भाषा बहुत सुन्दर है। कोमल-कान्त पदावली और श्रुतिमधुर भाषा-शैली के कारण यह हिन्दी का 'गीतगोविन्द' कहा जा सकता है। शृंगार-रस-प्रधान कविताएं रचने मे नन्ददासजी प्रवीण हैं। श्री कृष्ण के विरह मे गोपियां तड़प-तड़पकर व्याकुल होती हैं। पुनर्मिलन के समय जिस प्रेमोल्लास के साथ गोपियां उनमें

---

[1] नंददास जे कछु कह्यो राग रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेह-मय सुनत स्रवन उठ जागि।
रचि [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
—[illegible] दोहे नं० ७?, ८६ [illegible]

[2] [illegible]—डा० [illegible], पृ० १८८।

[3] नन्ददास—डा० उमाशंकर शुक्ल, पृ० ६८।

आते थे और वे भी बिना ऊंच-नीच का भेद-भाव समझे सब का स्वागत करती थी। मीरा का व्याह कब और किसके साथ हुआ, इस विषय में भी विद्वानों के मत भिन्न भिन्न हैं। प्रसिद्ध लेखक श्री रामप्रसाद त्रिपाठी और इतिहासकार श्री झा का मत है कि मीरा का व्याह मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा सांगा के किसी राजकुमार से हुआ। बचपन से ही मीरा श्री कृष्ण को अपना पतिदेव मानकर पूजा करती रही थी। कहा जाता है कि मीरा की तेईस वर्ष की अवस्था के भीतर उनके मा-बाप, पितामह, पति और ससुर की मृत्यु हो गई।[1] उन घटनाओं के बाद मीरा के हृदय में बड़ी विरक्ति छा गई और भगवान् कृष्ण के प्रति उनका प्रेम सौगुना बढ़ गया।

पति के जीवनकाल में ही मीरा शृंगारिक वस्तुओं का उपयोग नहीं करती थी। भक्त मीरा सांसारिक वस्तुओं का मोह छोड़कर सदा ईश्वर-भजन में लीन रहती थी। उनके वैराग्यपूर्ण काव्य से यह बात स्पष्ट होती है।[2]

ऊंच-नीच भाव छोड़कर अन्य भक्तों के साथ भगवान् के कीर्तन गाती हुई मीरा अपना समय बिताने लगी। यह देखकर राजघराने के लोग आपे से बाहर हो गए और उन्होंने तरह-तरह की यन्त्रणाएं मीरा को दीं जिनका उल्लेख उन्होंने अपने पदों में यत्र-तत्र किया है।[3]

एक सच्चे भक्त की भांति मीरा भी अपनी अनन्य भक्ति में अटल रहीं। इन कष्ट-सहन के उपरान्त उन्हें ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

जब ससुराल के लोगों ने मीरा को भक्ति-मार्ग से विमुख करने की अधिकाधिक चेष्टा की तो मीरा उस स्थान को छोड़कर अपने चाचा वीरमदेव के यहां जाकर रहने लगीं। दुर्भाग्य से वीरमदेव पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े। तब मीरा वृन्दावन में जाकर अपने उपास्यदेव की भक्ति और सेवा में तन-मन से जुट गईं। वहां से मीरा द्वारिका पहुंचीं और रणछोड़जी के मन्दिर में भगवान् की प्रार्थना करते हुए समय बिताने लगीं। उस समय वीरमदेव के लोगों ने मीरा को घर लौटाने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु मीरा अन्त तक द्वारिका में ही रहीं। उपलब्ध ऐतिहासिक और काव्यगत प्रमाणों के आधार पर यह

---

१ मीरा की पदावली—सं० [illegible] शास्त्री, पृ० ६।

२ म्हा मोहन [illegible] री मानी, [illegible] सिर [illegible]।
मैंने [illegible] पदविनाश [illegible] नहीं [illegible]। (मीरा-माधुरी पृ० ३३)

३ मैं गोविन्द गुण गाणा। टेर।
राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठ्यां कहं जाणा।
राणा भेज्या जहर पियाला, इमरित करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, सांवलिया वर पाणा।।४१।।
—मीरांबाई की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८।

गाने में उनकी प्रवीणता देखकर अकबर और सुख्यात गायक तानसेन दंग रह जाते थे। राग-रागनियों में गाने लायक कई पद उनके रचे मिले हैं।

रसखान

ये मुसलमान कवि थे। इनके जन्म के समय के सम्बन्ध में लोग अब भी भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। डा० रामकुमार वर्मा की राय है कि इनका कविता-काल सम्वत् १६७१ के लगभग है।[1] गोसाईं विट्ठलदासजी से इन्होंने दीक्षा ली और श्री कृष्ण के पक्के भक्त बन गए। इनकी लिखी हुई 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी सरस भक्तिमयी और भावमयी कविताएं वास्तव में ही रस की खान हैं। कृष्ण के प्रति इनकी रचनाएं कृष्ण-भक्ति की कविताओं में उत्तम मानी जाती हैं। हिन्दी-साहित्य में इनका उच्च स्थान है।

ध्रुवदास

वृन्दावननिवासी ध्रुवदास हितहरिवंश के शिष्य माने जाते हैं। जन्म और मृत्यु के सबंध में विश्वास करने के लायक प्रमाण नहीं मिले हैं। दोहे, चौपाई, कवित्त जैसे कई छन्दों में प्रेमतत्त्व का वर्णन इन्होंने बड़ी सुन्दरता से लिखा है। कहा जाता है कि ध्रुवदास ने करीब चालीस तक पुस्तकें लिखी हैं।[2]

आनन्दघन

रसिक गायक कविरत्न आनन्दघन का जन्म सम्वत् १७४६ के करीब हुआ।[3] उनका असली नाम घनानन्द था। बादशाह का आदर न करने के कारण उनको कई यातनाएं झेलनी पड़ीं। अन्त में जब उनकी प्रेयसी वेश्या सुजान ने भी उनका साथ छोड़ दिया तो उनका मन संसार से विरक्त हो गया और वे वृन्दावन जाकर निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक बन गए। वे सारा समय मुरलीधर के विषय में सुन्दर कविताएं रचने और गाने में बिताने लगे। उनकी पुस्तकों में सुजान-सागर सर्वोत्तम है। इसका एक-एक पद पढ़कर लोग मुग्ध हो जाते हैं। 'कृष्णकाण्ड निबन्ध', 'रसकेलिवल्ली', 'बानी' ये तीन ग्रंथ भी इन्होंने रचे हैं।[4]

मलयालम के कवि

निरणम कवि

मलयालम भाषा के कृष्णभक्त कवियों में मुख्य हैं निरणम कवि। इनका जन्म तिरुविताङ्कूर राज्य के मध्य में स्थित निरणम नामक गांव में हुआ था। इनके जन्मस्थान

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—लेखक डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ [illegible]।
2. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३४।
3. [illegible]—डा० [illegible] द्विवेदी, पृ० २५६।
4. [illegible]—डा० द्विवेदी, पृ० २५८।

का ठीक निर्णय करना कठिन है। अधिकाश विद्वानो की राय है कि ये मारे कवि ई० सन् १३७५ और १४७५ के बीच मे उत्पन्न हुए।[1]

निरणम गाव में रहने के कारण ये लोग निरणम कवि कहलाए। इन कवियो में सब से बडे माधव पणिक्कर थे। प्रान्तीय भापा मे सब से पहले गीता का अनुवाद करने का श्रेय इनको ही है। जहा-जहा मूल काव्य के आशय के स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, वहा-वहा इन्होने विपय का भली भाति विश्लेपण भी किया। इनकी भापा सरल, कोमल तथा मदर्भ के अनुसार रमानुकूल है। दूसरे कवि शकर पणिक्कर थे जिन्होने 'श्रीकृष्णविजय' और 'भारतमाला' नामक दो उत्तम ग्रथ रचे। माधव और शकर पणिक्कर भाई-भाई थे। तीसरे निरणम कवि राम पणिक्कर थे जो इन दोनो के भाजे लगते थे। निरणम कवियो मे ही नही, अपितु केरल के प्राचीन कवियो मे भी इनका उच्च स्थान है। आपने 'रामायण', 'भारत', 'ब्रह्माण्डपुराण', 'शिवरात्रि-माहात्म्य', 'भागवत का दशम स्कन्ध' आदि कई सुन्दर काव्य कहे हैं। 'भापा-भारतम्' नामक अपने ग्रथ के अन्त मे कवि ने लिखा है कि अपने पापो को दूर करने के लिए पहले श्री रामचन्द्र की कथा सुनाई अब श्री कृष्ण की कथा सुनाने को प्रस्तुत हू।[2]

चेरुश्शेरी नम्पूतिरि

इनके जन्मकाल के बारे मे पडितो मे मतभेद है। डा० चेलनाट अच्युत मेनोन, श्री पि गोविन्द पिल्लै आदि पडितो का मत है कि कवि का जन्म ई० सन् १४७५ और १५७५ के बीच मे हुआ।[3] इनके घर का नाम चेरुश्शेरी था, इसलिए कवि चेरुश्शेरी नम्पूतिरि के नाम से प्रसिद्ध हैं। युवावस्था मे ये उत्तर केरल म कोलत्तुनाट राज्य के दरबारी कवि बने। वही रहकर इन्होने कृष्णगाथा काव्य की रचना की। यह कृति मलयालम भापा के कृष्ण-भक्ति-साहित्य मे सब से अधिक सुन्दर मानी जाती है। यद्यपि यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर ही लिखी गई है तथापि यह कवि की मौलिक रचना है। केवल नाम मात्र के लिए इन्होने दशम स्कन्ध का आश्रय लिया, बस्तुत यह गाथा कवि की मौलिक प्रतिभा की ही देन है। एक ही कृति मे इन्होने महाकवि का पद प्राप्त किया। गाथा के अलावा 'भारतम्' की कथा भी गाथा की शैली म कवि ने लिखी है। उसका नाम है चेरुश्शेरी भारतम्। कवि की भापा पीयूप के समान मधुर और सरिता के समान प्रवाहमयी है। इनकी ...नियो को हम किसी भी राग म गा सकते है। इस काल मे मलायलम भापा को आधुनिक रूप प्राप्त हो चुका था। इसलिए पाच सौ वर्ष का

---

१ केरल भापा साहित्य चरित्रम्, भाग १—आर० नारायण पणिक्कर, पृ० २८१।

२ कलत्रान् पापम मुन्ने रामकथा ओट्टाय प्रकारम चोन्ने—निलायने श्रीकृष्णकथा या मिनियारपटि चोल्लन तुनिन्नेन श्री कृष्णगश भारतम्, पृ० ३, म० पन ० गमिरना।

३ भापा साहित्य चरित्रम्, पृ० १८६।

पुराना उनका काव्य आज भी नवीन-सा प्रतीत होता है। साधारण जनता इसे आसानी से समझ सकती है। कवि की वर्णनात्मक शैली बहुत ही मोहक है और सुन्दर है। श्री कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण भक्ति में सराबोर होकर कवि ने सरल-कोमल कान्त पदावली में अपने अनूठे काव्य 'कृष्ण-गाथा' की रचना की है।

कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण-गाथा के रचयिता पुन नपूतिरि हैं। किन्तु श्री पि० के० नारायण पिल्लै जैसे पंडितों ने सिद्ध किया है कि 'कृष्ण-गाथा' चेरुश्शेरी की ही रचना है।

काव्य लिखने की प्रेरणा इन्हें कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा भी मनोरंजक है। कवि के समय में शतरंज खेलना राजाओं के लिए मनोरंजन का प्रमुख साधन था। एक दिन राजा अपने आश्रित चेरुश्शेरी के साथ शतरंज खेल रहे थे। पास ही में रानी अपने नन्हे बच्चे को पालने में लिटाकर अपने कलकंठ से लोरी सुना रही थी। रानी भी शतरंज खेलना खूब जानती थी और ध्यान से खेल देख रही थी। जब उसने जान लिया कि अपने पतिदेव हारने वाले हैं तब सुरीली तान में एक गाना गाकर राजा को सुझाया कि प्यादे को आगे बढ़ाओ। राजा ने तुरन्त वैसा ही किया और बाजी मार ली। रानी का वह गाना राजा के कान में गूंजता रहा। उस तान ने उनके मन को मोह लिया था। उसी राग में एक सुन्दर काव्य रचा जाए तो कितना अच्छा हो, विचार आते ही राजा ने अपने आश्रित तथा प्रतिभासम्पन्न कवि चेरुश्शेरी से अनुरोध किया कि आज रानी ने जिस राग में गाना गाया उसी राग में भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्णचरित गान के रूप में लिखिए।[1] राजा की आज्ञा पाकर कवि ने 'कृष्णगाथा' लिखी जिसकी कीर्ति की धवलिमा अब तक चारों दिशाओं में व्याप्त है।

तुन्चत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन

जीवन-वृत्त—

मलयालम भाषा को समुन्नत तथा समृद्ध बनाने का श्रेय जिन महानुभाव को प्राप्त है उनका पावन नाम है—तुन्चत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन। मलबार ज़िले के दक्षिण में 'तृक्कण्डियूर' नामक एक गांव है। उस गांव के शिव-मन्दिर के पास 'तुन्चत्तु' नामक घर में इस सार्वभौम कवि का जन्म हुआ।[2]

एषुत्तच्छन शब्द का अर्थ है 'गुरु'। इसका व्याख्यार्थ है—एषुत्त=लेख, अच्छन=पिता, अर्थात् शिक्षा देने वाला पिता या गुरु। जहां एषुत्तच्छन का जन्म हुआ उस स्थान से लोग अब भी रेत ले जाते हैं और उसीपर अपने बच्चों को अक्षराभ्यास कराते हैं। लोगों का विश्वास है कि यहां की रेत पर अक्षराभ्यास करने वाले पंडित निकलते हैं।

१. मलयालम साहित्य-चरित्रम्—भाग १, पृ० १४६।
२. केरल साहित्य-चरित्रम्—ले० उल्लूर, पृ० ४०१।

भक्त कवि 'एजुत्तच्छन' या तुन्चत्तु आचार्य के वास्तविक नाम के सम्बन्ध में अब भी वाद-विवाद जारी है। श्री आर० नारायण पणिक्कर कहते हैं कि उनका नाम रामानुज होगा।[१] पि० के० नारायण पिल्लै का सन्देहात्मक कथन है कि कवि का नाम 'करुणाकर' है और एक स्थान पर उन्होने लिखा है कि कवि 'अज्ञातनामा' थे।[२] डाक्टर चेलनाट अच्युत मेनोन लिखते हैं—नाम के झगडे में पडकर वाद-विवाद करना अच्छा नही। जिस महात्मा ने 'भारत', 'रामायण' जैसे दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का निर्माण किया उसे लोगो ने कृतज्ञतापूर्वक ही एजुत्तच्छन की पदवी दी होगी। चाहे जो हो, केरल प्रान्त के लोग कैरली के पिता को तुन्चत्तु एजुत्तच्छन नाम से पुकारकर वडी भक्ति से उनका स्मरण करते हैं।[3]

तुन्चत्तु एजुत्तच्छन के जन्म के काल के वारे मे भी मतभेद है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि उनका जन्म ई० सन् १५२६ और १७२६ के वीच मे हुआ।[४] कवि के वैयक्तिक जीवन की घटनाओ से लोग अव भी अपरिचित हैं। भगवान् की पूजा करना, ग्रन्थो का निर्माण करना, मन्दिरो और तीर्थस्थानो के दर्शन करना आदि इनके मुख्य कार्य थे, इतना ही कहा जा सकता है।

अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाने के लिए एजुत्तच्छन ने कई साधुओ का सत्सग किया। उनकी अध्यात्मरामायण से पता चलता है कि वे किसी विशिष्टाद्वैताचार्य के शिष्य रह चुके थे।[५] तमिल, तेलुगु आदि भाषाए वे जानते थे। कहा जाता है कि उनकी अनूदित कृति अध्यात्मरामायण का मूल का ग्रन्थ तेलुगु लिपि मे है। 'हरिनामकीतन' नामक उनकी कृति में यो लिखा है—मेरे मन मे श्री नीलकण्ठ गुरु वास करे। हे भगवान्! विष्णो, मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि हमेशा मेरी रसना को प्रसगानुरूप उचित शब्दो का प्रयोग करने की शक्ति मिले।[६] इस पद से समझा जा सकता है कि उनके गुरु श्री-नीलकण्ठ नामक एक महान् व्यक्ति थे। कुछ विद्वानो की राय है कि उनके गुरु श्री नील-कण्ठ नही थे, किन्तु अधिकाश विद्वान् लोग मानते हैं कि श्री नीलकण्ठ ही थे उनके गुरुवर्य।

कवि गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे, तथापि उनकी कृतियो मे हास्य का सुन्दर पुट है। श्रोताओ के हृदय पर इसका वडा गहरा प्रभाव पडता है। 'भारत' नामक उनकी

---

१ प्रदित्तणम से पृ० ६७, लेखक डा० अच्युत मेनोन।

२ तुन्चत्तु एजुत्तच्छन—पि० के नारायण पिल्ला, पृ० ६।

३ एजुत्तच्छन और उनका समय—डा० अच्युत मेनोन, पृ० ८७।

४ केरल भाषा साहित्य चरित्रम, भाग २,—आर० नारायण पणिक्कर, पृ० ७।

५ एजुत्तच्छन—लेखक पि के नारायण पिल्ला, पृ० २४

६ अनुपेणमेमनसि, श्री नीलकठ गुरु।
गम्भीरहानमिनि वान्तु आनुपिर हरिनामकीर्तन—पृ०, ले० एजुत्तच्छन।

पुस्तक के निम्नलिखित अवतरण से इस कथन की पुष्टि होती है—संजय धृतराष्ट्र का सन्देश लेकर धर्मपुत्र के पास जाते हैं। संजय को दूर से देखते ही धर्मपुत्र ने सारी बातें ताड़ ली। उन्होंने पूछा—"क्यों संजय, दादाजी की क्या आज्ञा है ?"

संजय ने कहा, "महाराज की यही इच्छा है कि पुत्रों के बीच में किसी प्रकार का झगड़ा न हो।"

तब धर्मपुत्र ने कहा, "अपने पिताजी को सुख पहुंचाने का दायित्व मेरे ऊपर है। ऐसा न करने के कारण वे अशान्त बैठे हैं। यदि हम सन्यास ले लें तो उनको सुख होगा यह बात मैंने जान ली है। राजसूय, यज्ञ करने के कारण मैं अग्नि में कूदकर आत्म-त्याग नहीं कर सकता। सन्यास मैं ले लेता, पर मेरे अकेले के सन्यासी होने से काम नहीं चलेगा। भीम को भी तो वन जाना होगा, किन्तु पेटुओं में सर्वप्रथम पेटू भीम कैसे सन्यास ले सकेगा ?[1]"

संजय फिर भी कहते हैं "पितामह भीष्म, द्रोण जैसे गुरुजनों का वध कर आप कौन सा सुख पाना चाहते हैं ? इस तुच्छ सांसारिक सुख के लिए भयंकर संग्राम करना क्या अच्छा है ?"

इस प्रश्न का धर्मपुत्र ने जो उत्तर दिया है उससे कवि की गंभीरता का पता चलता है। उत्तर का सार यह है—तुमने जो कुछ कहा उसका मर्म मैंने समझ लिया, किन्तु याद रखो कि सबल भीष्म, द्रोण जैसे लोग रणक्षेत्र में युद्ध करके मरेंगे ही।[2]

एजुत्तच्छन का दूसरा यह गुण था कि वे कृष्ण के उदार भक्त थे। उनके लिए राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा सब बराबर थे। अतः उनकी कविताएं पढ़कर हम यह निर्णय नहीं कर सकते कि वे रामभक्त कवि थे या कृष्ण-भक्त। सचमुच पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की स्तुति वे जिन शब्दों में करते थे उन्हीं शब्दों में वे श्री कृष्ण की भी स्तुति करते थे। वे अपने को राम और कृष्ण का किंकर समझते थे। शत्रुओं द्वारा श्री राम और कृष्ण को आतंकित दिखाने में कवि को बड़ा संकोच होता है। शान्तिपनाग कृष्ण [illegible] उसने लगता है ऐसा कहने और लिखते हुए हमारे कवि को बड़ा सन्ताप होना है [illegible]

---

१. [illegible] नान तन्ने [illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

—भारतम्, उद्योगपर्व—पृ० १६८, [illegible]

२. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—वही. पृष्ठ १६६।

क्रोध आता है। वे लिखते हैं

"लक्ष्मी देवी अपने कोमल करकमलो से बडे आनन्द के साथ कृष्ण भगवान् के जिन सुन्दर पैरो को हलके-हलके दबाती हैं उन्हीको दुष्ट कालियसर्प डस रहा है।"[1] किन्तु उससे किसी प्रकार की हानि नही हुई। यह देखकर वह नीच फिर नन्दनन्दन के मर्मस्थलो पर डसने लगा। (कवि आपे से बाहर होकर कहते हैं, "नन्द के प्यारे तथा निरीह पुत्र को कौन इस प्रकार सता सकता है? बेशक वह दुष्ट ही है," और अन्त मे कहते हैं, "हे मेरे प्यारे भगवान्! आप और कही न जाए। मेरे मन रूपी सरोज मे वास करें।"[2]

भक्त-कवि तुलसीदास, सूरदास आदि के समान ही एजुत्तच्छन भी नाम या यश या धन किसीकी आकाक्षा नही रखते थे। कुछ विद्वानो का मत है कि इनका स्वर्गवास ई० सन् १५५६ मे हुआ।[3]

काव्यग्रन्थ—

यद्यपि एजुत्तच्छन ने कई कविताए रची हैं पर 'अध्यात्मरामायण और भारतम्' ये दोनो ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतिया हैं। सभी विद्वान् एक कण्ठ से घोषित करते हैं कि एजुत्तच्छन के लिखे 'रामायण' और 'भारतम्' कैरली साहित्य-नभोमण्डल मे सूर्य और चन्द्र के समान चमकने वाले ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवतम्' 'चिन्ता सतानम्', 'हरिनामकीर्तनम्', 'ब्रह्माण्डपुराणम्', 'देवीमाहात्म्यम्' आदि पुस्तकें भी एजुत्तच्छन की लिखी हुई मानी जाती हैं। 'अध्यात्म-रामायणम्' तथा 'उत्तर-रामायणम् मे राम की कथा है। उनकी कृति 'भारतम्' कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है, अत उसका परिचय हम पहले देंगे।

'भारतम्' एजुत्तच्छन के प्रतिभापूर्ण काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह सस्कृत महाभारतम् का स्वैर अनुवाद है।[4] डा० अच्युतमेनोन लिखते हैं कि जिस भक्ति का बीज एजुत्तच्छन ने बोया था, उसका सुगन्धित फूल है 'रामायणम्', और उसका सरस फल है 'भारतम्'[5] अनुवाद मे मूल ग्रन्थ का बहुत सा भाग यत्र-तत्र छोड दिया गया है। उदाहरणार्थ, गीता का भाग बहुत ही सक्षेप मे देते हुए उन्होने कहा है, "हे अर्जुन! तुम दीनता और चपलता छोडो, यदि क्षत्रिय होकर अपना कर्तव्य छोड दोगे तो अन्य राजागण तुम्हारा उपहास करेगे। इसलिए हे पार्थ, भय छोडकर युद्ध करो, मत उदासीन होओ। तुम जो देखते हो वह मैं हू। इस प्रकार के दार्शनिक विचार उपनिषदो

---

१ श्री महाभागवतम्, पृ० २७१, प्रकाशक सुब्बय्या रेड्यार

२ श्री महाभागवतम्, पृष्ठ २७१, प्रकाशक सुब्बाय्या रेड्यार।

३ एजुत्तच्छन और उनका समय—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ ६३।

४ एजुत्तच्छन और उनका काल—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ १२८।

५ एजुत्तच्छन और उनका काल—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ १२७।

६ भारतम्—ले० एजुत्तच्छन, पृष्ठ २१६।

में पाए जाते हैं इसलिए ज्ञानी लोग इसे गीता कहते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त 'सम्भव' और 'अरण्य' पर्व के बहुत अंश छोड़ दिए गए हैं। एजुत्तच्छन की 'भारतम्' कृति के मूल ग्रन्थ का आदिपर्व नहीं है, उसके स्थान पर पौलो-मम और आस्तिकम नामक दो सर्ग हैं, जिनमें पुस्तक की भूमिका-सम्बन्धी बातें लिखी ग-हैं। पहले पर्व में जनमेजय का सर्पत्याग और सभव पर्व में स्वर्गारोहण तक जो घटना-हुई उनका संक्षिप्त वर्णन, उदक की कथा और सर्पयज्ञ करने के लिए जनमेजय को उपदे-आदि प्रसंग दिए गए हैं। दूसरे पर्व 'आस्तिकम्' में राजा का आत्मत्याग, आस्तिक -आगमन और उनके आग्रह से यज्ञ की समाप्ति वर्णित है। तीसरा सभव पर्व है, जहां -भारत की कथा का आरम्भ होता है। एजुत्तच्छन की राय में यही से भारत -कथा प्रारम्भ होती है। सम्भव पर्व में कथा की पुनरावृत्ति हुई है और संस्कृत महाभार-के संग्रहकर्ता श्री व्यास की कथा भी इस पर्व में कही गई है। ययाति और शकुन्तला -आख्यान कहकर कवि ने कौरव-पाण्डवों की कथा का श्रीगणेश किया है। खाण्डव व-दाह के साथ सम्भव पर्व समाप्त हो जाता है। इसी समय यह बात भी स्पष्ट हो जाती -कि कृष्ण पाण्डवों की सहायता करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार हैं। 'भारतम्' में 'अरण्य-और ऐषिकम् दो छोटे पर्व हैं। शेष पर्व संस्कृत में महाभारत के पर्वों के समान ही -केवल अन्तर यह है कि गीता, अनुगीता और कई उपाख्यान छोड़ दिए गए हैं। अरण्य-पर्व में नल तथा रामायण की कथाओं का समावेश है। अन्य बहुत सी कथाएं भी -जिनका यहां उल्लेख करना अनावश्यक है। रामायण की सारी प्रमुख घटनाओं का वर्ण-बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। उनमें कुपित होकर लक्ष्मण का किष्किन्धा-गमन, लक्ष्म-के आने का समाचार सुनकर वानरों का थर-थर कांपना और घबराना, हनुमान् जी -उपदेश के अनुसार लक्ष्मण का स्वागत करने के लिए तारा को भेजना, सुन्दरी रमणी -रूप में तारा को चित्रित करना, लक्ष्मण को शान्त करने के लिए तारा का यत्न और उन-उसका सफल होना आदि बातें अत्यन्त सरल शैली में एजुत्तच्छन ने लिखी हैं।

कवि की दूसरी कृति 'महाभारतम्' के अधिक भाग में पाण्डवों की कथा है तथा-कथा का सूत्र कृष्ण के ही हाथ में है। समस्त घटनाओं के बीच में उनका अलौकि-व्यक्तित्व चमकता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने कृष्णचरित्र को अंकित कर-के लिए ही महाभारत का आख्यान साधन के रूप में चुना है।

द्रौपदी के विवाह के समय से पाण्डवों और श्री कृष्ण की घनिष्ठता बराबर बढ़-जाती है। यहां तक कि कृष्ण अपनी बहन सुभद्रा का हरण करने की अनुमति अर्जुन -दे देते हैं और बलराम को समझा-बुझाकर राजी कर लेते हैं। राजसूय यज्ञ में पा-कृष्ण को अपना कुलदेव मानकर उन्हीं का पूजन करते हैं। भरी सभा में जब दुःशा-सन द्रौपदी का वस्त्र हरण करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है और द्रौपदी कातर -

[1] 'भारतम्' [illegible], पृष्ठ २१८।

मे आत्मरक्षा के लिए प्रार्थना करती है, तो कृष्ण उसे बचाते हैं। इस प्रकार की घटनाओ को प्रमुखता देकर कवि का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि श्री कृष्ण अपने भक्तो की सहायता करने के लिए प्रत्येक क्षण तत्पर रहते हैं। कभी-कभी तो वे अपने भक्तो की मान-रक्षा के लिए अपनी ही प्रतिज्ञा तोड देते हैं। साम, दाम, भेद, दड हर प्रकार से वे अपने भक्तो की रक्षा शत्रुओ से करते हैं।

कवि ने सर्वत्र कृष्ण को त्राता और रक्षक के रूप में चित्रित किया है। अपने दूसरे ग्रन्थ भागवत में उसने कृष्ण की बाललीलाओ को प्रधान मानकर उनका मधुर वर्णन किया है। उसने 'भारतम्' मे ही कृष्णचरित्र का अलौकिक महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए, कृष्ण के युवाकाल के कार्यकलापो का भी वर्णन कर दिया है। ग्रन्थ मे सर्वत्र उनकी महिमा गाई गई है, इसलिए कृष्णभक्तो की रचनाओ में 'भारतम्' का प्रमुख स्थान है। केरल प्रान्त के लोग ईश्वराराधना के रूप में शाम के समय बडी भक्ति से उसका गायन करते हैं और विश्वास करते हैं कि उसके श्रवण मात्र से ही उनके पाप नष्ट हो जाएगे।

पून्तानम नंपूतिरि

जीवनवृत्त—

कैरली साहित्य के भक्त कवियो मे पून्तानम नपूतिरि का प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार तुलसीदास 'सियराममय सब जग जानि। करौ प्रणाम जोरि जुग पानि।' में विश्वास करते थे, वैसे ही पून्तानम सारे जगत् को गोपालकृष्णमय जानकर सदैव उनकी स्तुति करते थे। उन्होने भी कृष्ण के पादारविंदो में काव्य-ग्रन्थो की पुष्पमाला गूथकर अर्पित की।

जन्मकाल और स्थान—मलाबार ज़िले के वल्लुवनाद् तहसील के एक गाव मे सन् १५५५ ई० मे इनका जन्म हुआ।[१] उनके घर का नाम था 'पून्तानम'। अत उन्हे पून्तानम कहकर लोग पुकारते हैं। नपूतिरि जाति के पून्तानम थे। उनके गुरु श्री नीलकठ कवि थे जिन्होने 'तैकलनाथोदयम्' नामक एक उत्तम काव्य की रचना की है। अपने गुरु पर बडी श्रद्धाभक्ति प्रकट करते हुए, पून्तानम ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' मे लिखा है, "श्री नीलकण्ठ गुरु के चरणारविन्द की रज के प्रसाद से श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन मैं कर सका।"[२]

भक्तिभावना—कवि जन्म से ही ईश्वरभक्त थे, धार्मिक कार्यों मे बडी निष्ठा से मन लगाते थे और सच्चे गृहस्थ की भाति जीवन बिताते थे। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध गुरुवायूर[३] के श्री कृष्णमन्दिर में जाकर वे सदा श्री कृष्ण की पूजा करते थे।

---

१ केरल भाषा साहित्य-चरित्रम्—भाग २, पृष्ठ ४०।

२ श्रीकृष्णकर्णामृतम्, पृष्ठ १।

३ गुरुवायूर एक छोटे शहर का नाम है जो दक्षिण मालाबार में बसा है।

भागवत का पारायण करना उनका दैनिक कार्य था। उनकी भक्ति देखकर लोग दंग रह जाते थे।

भक्त कवि पून्तानम के सम्बन्ध में कई कथाएं केरल प्रान्त में प्रचलित हैं। एक दिन कवि अपनी एक कविता लेकर अपने पूज्य मित्र 'मेलपत्तूर नारायण भट्टतिरि' के पास गए। 'भट्टतिरि' उस समय के संस्कृत पण्डितों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। उन्होंने पून्तानम से आगमन का कारण पूछा तो पून्तानम ने प्रार्थना की, "मेरी इस तुच्छ कृति को पढ़कर अशुद्धियां सुधारने की कृपा करें।" भट्टतिरि ने कहा, "यह तो भाषा (मलयालम) में लिखी गई है, और किसीको दिखाओ।" भट्टतिरि ने सोचा होगा कि मेरे जैसे भारी पण्डितों को मलयालम भाषा की रचना पढ़कर उसे सुधारना शोभा नहीं देगा। खैर, भट्टतिरि का उत्तर सुनकर पून्तानम बहुत दुःखी हुए और अपने घर लौटे। अपने इच्छित कार्य में असफल होने के कारण उन्हें रात भर नींद नहीं आई।

उसी रात भट्टतिरि को वातज रोग से बड़ी पीड़ा हुई। कहा जाता है कि पहले एक बार श्री कृष्ण की पूजा से ही उन्हें आराम मिला था। अब की बार भी जब वे असह्य पीड़ा से तड़पने-चिल्लाने लगे तो कातर स्वर से श्री कृष्ण की उन्होंने प्रार्थना की। आधी रात बीतने पर उन्होंने एक स्वप्न देखा कि श्री कृष्ण स्वयं दर्शन देकर कह रहे हैं—'तुम मेरे भक्त-कवि की कविता पढ़कर उसका दुःख जल्द दूर करो, तब तुम्हारी बीमारी दूर हो जाएगी।' भट्टतिरि बड़े सवेरे ही पून्तानम के पास गए। उन्हें देखते ही कवि की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भट्टतिरि ने कविता पढ़ी और मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा की। उस दिन से उनकी मित्रता बहुत घनिष्ठ हो गई।

पून्तानम की निर्भयता और सच्ची भक्ति प्रकट करने वाली एक दूसरी कथा इस प्रकार है—एक दिन कालिकट के राजा ने पून्तानम को अपने दरबार में बुलाया। भक्ति के सम्बन्ध में चर्चा हुई। राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कवि को कई इनाम दिए। कुछ दिन राजधानी में रहने के बाद पून्तानम घर लौट रहे थे। शाम को रास्ते में कुछ डाकुओं ने उन्हें घेरकर सब कुछ छीन लिया और कहा कि जान बचानी हो तो तुरन्त भाग जाओ। जवाब मिला कि मैं प्राण के मोह से भागने वाला कायर नहीं हूं। डाकू कुपित होकर उनका गला घोटने लगे तो वे श्री कृष्ण की प्रार्थना करने लगे—हे भगवान, द्रौपदी की रक्षा करने, गजेन्द्र को नक्र की दाढ़ से छुड़ाने के लिए आप जिस वेग से दौड़े, मेरी रक्षा करने के समय आपको यह देर क्या हो गई ? कवि मूर्छित हो गए। होश आने पर उन्होंने देखा राज्य के सेनापति तथा मन्त्री [illegible] खड़े हैं। डाकू पकड़े गए और उन्हें सजा दी गई। कवि ने प्रसन्न होकर अपनी अंगूठी उपहार में मन्त्री को दे दी। गुरुवायूर पहुंचकर वे श्री कृष्ण के मन्दिर में दर्शन और प्रार्थना करने लगे। तब वहां के पुजारी ने उनको एक अंगूठी देकर कहा कि कल रात स्वप्न में श्री कृष्ण ने [illegible] अंगूठी मुझे दी और कहा कि [illegible] दे दो [illegible], तब कवि के आनन्द का ठिकाना न रहा। [illegible] मन्त्री [illegible] से [illegible] मन्त्री के [illegible] —

ने ही डाकुओं से उनकी रक्षा की थी। तब से श्री कृष्ण के प्रति पून्तानम की भक्ति सौ गुनी बढ गई।

केरल प्रान्त मे जितने भक्त हुए उनमे पून्तानम अद्वितीय समझे जाते हैं। उन्होंने जो भक्ति-स्नेह-पूरित ज्ञान-दीप जलाया वह अब भी जल रहा है। उनकी मृत्यु के बाद भी हजारों भक्तो ने उनके दिखाए मार्ग पर चलकर श्री कृष्ण की पूजा की है, कर रहे हैं और करेंगे। पून्तानम का निवास-स्थान, गुरुवायूर-स्थित श्री कृष्ण-मन्दिर अब कालोचित परिवर्तन के साथ केरल का ही नही, सारे भारत का आराधना-केन्द्र बन गया है। जिसके हृदय में लवमात्र भी भक्ति है वह गुरुवायूर की श्याममनोहर मूर्ति के दर्शन करके अपने को धन्य समझता है।

रचनाए—

कवि की कई पुस्तकें प्रसिद्ध हैं यथा—सन्तानगोपालम् पाना, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना, घनसघ-स्तोत्रम्, पार्थ-सारथी-स्तवम्, आनन्दनृत्तम, नट्टेट्दुहरि, आनन्दनृत्तम्, कृष्णलीला।

सन्तानगोपालम् पाना—

यह एक छोटी सी सरस रचना है। इसके चार सर्ग या पाद हैं। एक ब्राह्मण था, जिसके बच्चे जन्म लेते ही मर जाते थे। वह ब्राह्मण श्री कृष्ण को अपनी करुणा भरी कहानी सुनाता है और इस विपत्ति से बचाने की प्रार्थना करता है। श्री कृष्ण उसे सान्त्वना नही देते। उसकी प्रार्थना के समय अर्जुन वहा उपस्थित थे। वे कहते हैं—जब तुम्हारी पत्नी फिर गर्भवती होगी तब मुझे सूचना देना। प्रसव के समय बच्चे को मृत्यु के पजे से छुडाने की व्यवस्था करूगा। यदि सफलता न मिले तो मैं आग मे कूदकर आत्महत्या करूगा। यह कठोर प्रतिज्ञा सुनकर ब्राह्मण चला जाता है।

ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती होती है। प्रसवकाल समीप आने पर अर्जुन वहा आते हैं और प्रसूतिगृह के चारो ओर वे एक शरकूट का निर्माण करते हैं। अचरज की बात है कि इस बार बच्चे के जन्म के समय उसका शरीर भी गायब हो गया। फिर अर्जुन बच्चे की खोज मे निकलते हैं और अपने प्रयत्न में असफल होकर प्रतिज्ञा के अनुसार आग मे कूदने को तैयार होते हैं। उस समय श्री कृष्ण आकर उन्हे रोकते हैं और उन्हे अपने साथ लेकर वैकुठ-लोक पहुचते हैं। वैकुण्ठ-यात्रा-वर्णन, वैकुण्ठ-वर्णन, कृष्ण और अर्जुन की विष्णु भगवान् से भेंट, उनका सवाद और ब्राह्मण के सारे बच्चों को वैकुण्ठ से लाकर ब्राह्मण को सौंपना आदि प्रसग बडी सुन्दरता से लिखे गए हैं।

कहा जाता है कि विष्णुलोक के बारे मे लिखने का अवसर आया तो भक्त कवि घबराए। उन्होने विष्णुलोक देखा नही था। वे ध्यान-मग्न हुए। विष्णु ने प्रकट होकर उनको विष्णुलोक दिखाया।

सन्तानगोपालम्—

इसकी कथा कई कवियो ने लिखी है, तथापि पून्तानम की कृति के समान उत्तम, सरस, कोमल, सरल और सुन्दर रचना दूसरी नहीं है। उसकी प्रवाहमयी भाषा, ओज-

गम्य विचार और तन्मयतापूर्ण भक्ति आदि सभी को हठात् आकर्षित करते हैं।

श्रीकृष्णकर्णामृतम्—

इसमें भागवत के दशम स्कन्ध के समस्त प्रसंगों का वर्णन है परन्तु मनमोहन मुरलीधर की बाललीलाओं का वर्णन विशेष तल्लीनता से किया गया है। यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय है कि इसे अधिकांश पद्यभक्त लोग बड़े सवेरे उठकर श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते हैं। मधुर शब्दों में लिखी यह भक्तिरसमयी रचना बहुत सुन्दर है। एक पद का सारांश यों है श्री कृष्ण वृन्दावन के लिए अलंकार, रिपु-समूह के लिए भयदाता, दूध-मक्खन तथा छाछ की चोरी करने वाले, बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाले और वनिताओं के लिए अन्नदाता हैं। ऐसे आपके नूपुरों की ध्वनि मेरी मति का कलंक मिटाने की कृपा करे।[1]

श्री विल्वमंगल[2] नामक एक आचार्य ने भी 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' लिखा है जो भक्ति-रस की एक उत्तम कृति है। श्रीकृष्ण-बाललीला के वर्णन के साथ उसमें रासलीला का वर्णन अच्छी तरह किया गया है। लेकिन पून्तानम ने श्रीकृष्णावतार की सारी लीलाओं का वर्णन कर दिया है। यह उसकी और एक विशेषता है। नाम की महिमा के बारे में उन्होंने लिखा है। भाषा सरल और मजी हुई है। कहीं-कहीं व्याकरण की त्रुटियां पण्डितों को आपत्तिजनक अवश्य जान पड़ती हैं, परन्तु भक्तों के लिए तो उनकी कविताएं मुक्ताफल हैं।

ज्ञानप्पाना—

जैसे एजुत्तच्छन ने 'किलिप्पाट्टु' और श्री कुंचन नम्प्यार ने 'तुल्लल' पद्धति निकाली वैसे ही पून्तानम ने 'पाना' पद्धति निकाली है। इस पद्धति में अन्य केरलीय कवियों ने भी अपनी रचनाएं लिखी हैं। किन्तु पून्तानम को ही इसमें सब से अधिक सफलता प्राप्त हुई। मलयालम भाषा में बहुत से विद्वानों ने अनन्य ज्ञान-ग्रन्थों की रचना की है परन्तु 'ज्ञानप्पाना' के समान सरल सुन्दर गम्भीर ज्ञान-प्रदायिनी कृति दूसरी नहीं है। इसमें संसार की अनित्यता, मानव-जीवन का उद्देश्य, संसार के प्रति वैराग्य आदि विषयों का निरूपण बड़ी विद्वत्ता और काव्यात्मक ढंग से किया गया है। एक प्रकार से इसमें सारे उपनिषदों का सार संगृहीत है। एक बार पढ़ने पर ही पाठक ग्रन्थ की सरलता से प्रभावित हो उठेगा। उसकी शैली इतनी सरल और प्रसादात्मक है कि एक अपढ़ को भी उसकी भाषा और आशय को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती।

'घनसंघ'—

यह एक उत्तम कीर्तन ग्रन्थ है।

---

१ श्रीकृष्णकर्णामृतम्, पद संख्या २४।

२ आचार्य श्री बिल्वमंगल के बारे में कई कथाएं प्रचलित हैं। श्री उल्लूर परमेश्वर अय्यर ने साबित किया है कि उनका जन्म आन्ध्र या उत्कल देश में नहीं हुआ, बल्कि केरल देश में [illegible] और उन्होंने भी [illegible] के सम्बन्ध में बहुत सी सुन्दर रचनाएं की हैं।

—केरल साहित्य चरित्रम्—भाग १, पृष्ठ [illegible]।

नूट्टेट्टुहरि—

इसमे एक सौ आठ हरिकीर्तन हैं। यह कीर्तन लोगो के हृदय मे भक्ति पैदा करने का उत्तम साधन है। भक्ति-मार्ग पर चलने वालो के लिए ये कीर्तन पाथेय का काम देते हैं।

पार्थसारथीस्तवम्—

यह एक खण्डकाव्य है।

आनन्दनृत्तम्—

इस रचना के सम्बन्ध में एक किवदती प्रचलित है। एक दिन कवि ने भगवान् कृष्ण के चरणोदक से ही अपने मित्रो को प्रीतिभोज देकर सतुष्ट करने का निश्चय किया। समस्त आमन्त्रित मित्र पून्तानम की इस मूर्खता पर हसने लगे। हसी उडाने के उद्देश्य से सभी निमन्त्रित लोग उपस्थित हुए। कुछ समय के बाद वे पूछने लगे "अरे पून्तानम! कृष्ण कहां हैं? अभी तक आए नही। उनको जल्दी बुलाओ। समय बहुत हो गया है।" इतने में श्री कृष्ण के पाञ्चजन्य शख की ध्वनि सुनाई देने लगी। फिर नूपुर ध्वनि भी सुनाई पडी। मित्रगण अपने चर्म-चक्षुओ से भगवान् का दर्शन करने मे असमर्थ थे, किन्तु भक्तशिरोमणि कवि पून्तानम श्री कृष्ण को सिर से पैर तक देख सके और उन्होने जी भरकर श्री कृष्ण की स्तुति की। कहा जाता है कि श्री कृष्ण के उस स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर ही 'आनन्द-नृत्तम्' नामक कविता की रचना उन्होने की। अन्त मे ब्राह्मण लोग लज्जित होकर अपने-अपने घर चले गए।

कृष्णलीला—

अकारादि अक्षरो से प्रत्येक पक्ति को आरम्भ करते हुए यह रचना लिखी गई है।

कुचन नंप्यार

जीवनवृत्त—

श्री कुचन नप्यार का जन्म 'किल्लिक्कुरिशि' नामक एक गाव मे हुआ था। यह गाव दक्षिणी रेलवे के 'लकडी' स्टेशन के पास स्थित है। घर का नाम था 'कलक्कत्तु'। इनका जन्म सन् १७०५ ई० माना गया है।[1]

कवि ने एक मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके एक पत्थर पर खुदे हुए श्लोक से पता चला है कि उनका असली नाम राम था। उनके पिता 'किटङ्ङ्र'[2] निवासी एक ब्राह्मण थे और स्थानीय मन्दिर मे काम करते थे। मलयालम भाषा के महाकवि और प्रकाण्ड पण्डित श्री उल्लूर एस० परमेश्वरय्यर का कथन है कि कुचन नप्यार के गुरु श्री नारायण भट्टतिरि थे।[3] उनका कुटुम्ब 'तृक्कायंमन इल्लम' नामक से प्रसिद्ध था।

बचपन मे ही कवि ने सस्कृत भाषा का गम्भीर अध्ययन किया था। शिक्षा समाप्त

---

१ कुचन नप्यार नामक पुस्तक मे—ले० प्रो० बालकृष्ण वारियर, पृ० ३।

२ एक गाव का नाम है जो केरल में मीनच्चिल नामक तहसील में बसा है।

३ कुचन नप्यार—ले० प्रो० वारियर, पृ० १४।

करके वे उत्तर केरल में राजाओ और रईसो के यहा रहकर सुन्दर कविताए करते रहे। उस समय प्रतिभासपन्न कविश्रेष्ठो को भी राजा-रईसो के आश्रित बनकर रहने के अतिरिक्त अपनी जीविका के लिए कोई उपाय नही दिखाई पडता था। यह प्रसन्नता की बात है कि उस समय के बहुत से राजा और रईस पण्डितो का तन मन धन से आदर करते थे। इसके अपवाद भी थे, यह हम नम्पार के कथन से जान सकते हैं। सस्कृत भाषा भली भाति अध्ययन करने के बाद नम्पार 'कोलत्तुनाट' नामक राज्य में पहुचे, किन्तु किसीने उनका स्वागत नही किया। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं—"कोल राजा की नगरी में दिन भर घूमने से भी अन्न नही मिलता, मानो यहा प्रतिदिन हरिवासर (एकादशी का उपवास) हो, और मच्छरो तथा खटमलो की कृपा से रात भर जागरण ही करना पडता है मानो यहा हर रात शिवरात्रि होती है।[1]

इस प्रकार कष्ट उठाते घूमते हुए कवि अन्त मे वेट्टत्तुनाट नामक एक छोटी रियासत मे पहुचे और वहा कुछ दिन ठहरे। उन्हीके वर्णन से पता चलता है कि वहा राजा की आज्ञा से उन्होने चन्द्रिकावीथि नामक नाटक लिखा जिसका शिवरात्रि के समय अभिनय किया गया।

श्री वीरराय के राज दरबार में कुछ काल रहने के बाद नम्पार तलप्पल्लि तहसील में मनवक्कोट्टुच्छन नामक एक धनवान के यहा जाकर रहे। कुछ वर्ष बाद मनवक्कोट्टुच्छन स्वर्ग सिधारे। उनके कोई सन्तान नही थी। अत उस घर की सारी सपत्ति कोच्चि राज्य के 'पालियत्तच्छन' नाम के एक नायर प्रधान के अधिकार मे आ गई। कहा जाता है कि आश्रित नम्पार भी अपने नये स्वामी के यहा रहकर कविता लिखने लगे। वहीं विष्णुविलासम् काव्य की रचना हुई।

पालियत्तच्छन के यहा रहते समय नम्पार कभी-कभी अपने पिता के घर किटङ्ङूर गाव को जाया करते थे। उस गाव के ब्राह्मण की सगति में रहना कवि को बहुत प्रिय था। जब उनके पिताजी बूढे हो गए तो उन्होने अपने पुत्र नम्पार को अपने पास ही रखा। अपने गाव के निकटस्थ कुटमालूर, कुमार-नेल्लूर आदि स्थानो को, जहा ब्राह्मणो की सख्या अधिक थी, नम्पार प्राय जाया करते थे। इसी समय सयोग से अबलप्पुज़ा के राजा से उनकी भेंट हुई। कवि की विद्वत्ता विनय और नैपुण्य आदि गुणो मे राजा बहुत प्रसन्न हुए और उनको अपने राज्य में आकर रहने का निमत्रण दे दिया।

इसी समय नम्पार के पिताजी का देहान्त हुआ और वे राजा की इच्छा के अनुसार अबलप्पुज़ा में आकर रहने लगे। यहा सौभाग्य से कवि को अपनी योग्यता और विद्वत्ता प्रकट करने का एक अपूर्व अवसर मिला। राजा विद्वानो का बडा आदर करते थे। एक दिन पालक्काट से एक शास्त्री आए। उन्हें अपनी विद्वत्ता पर गर्व था। दरबार में उन्होने घोषणा की कि मैं किसी भी पडित को शास्त्रार्थ तथा काव्य-सम्बन्धी चर्चा में हरा

---

१ कोलभूपस्य नगरे वासरा हरिवासरा ।
मशकैर्मत्कुणैश्चापि रात्रय शिवरात्रय ॥

—कुन्चन नम्पार, स० प्रो० वारियर, पृ० १२ ।

सकता हू । जो कोई वाद-विवाद करने के लिए तैयार हो वह आगे बढे। ललकार सुनकर नप्यार के गुरुवर्य आगे बढे और वाद-विवाद करने लगे। कई दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा। उसका अत होने के कोई लक्षण न दिखाई दिए। राजा को किसी महत्त्वपूर्ण कार्य से दूसरी जगह जाना था। तब उनको एक उपाय सूझ पडा। उन्होने कहा—पडितो! आपका वाद-विवाद मैं कई दिनो से सुन रहा हू। आपमे से कौन महापडित है, इसका निर्णय करना टेढी खीर है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि जो महाशय एक दिन में बारह सर्ग का एक उत्कृष्ट काव्य लिख सकेंगे वे ही सब से बडे पडित समझे जाएगे।

यह सुनकर शास्त्रीजी दग रह गए! काव्य-रचना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। विजय की आशा जाती रही। कवि के गुरुवर्य भट्टतिरि ने सोचा कि काव्य न लिख सकू तो नाम पर धब्बा लग जाएगा। उस समय नप्यार की अनुपस्थिति गुरुजी को बहुत खटकी। किन्तु आधी रात के समय नप्यार अचानक आ पहुचे तो गुरु की खुशी का ठिकाना न रहा। सारा समाचार जानकर उनके प्रिय शिष्य नप्यार अपने गुरुजी का नाम बनाये रखने के लिए कविता लिखने मे जुट गए। उन्होने अपने ग्यारह अन्य शिष्यो को भी बुला लिया। नप्यार स्वय एक सर्ग लिखते जाते थे और अन्य ग्यारह शिष्यो मे से प्रत्येक को एक-एक सर्ग लिखने के लिए क्रम से श्लोक के बाद श्लोक कहते जाते थे और वे लोग लिखते जाते थे। इस प्रकार लिख-लिखवाकर सूर्योदय के पहिले सपूर्ण काव्य गुरुदेव के कर-कमलो मे अर्पण कर दिया गया। इससे यह बात स्पष्ट है कि वे आशुकवि और सर्वतोमुखी प्रतिभा रखने वाले थे।

उनकी गुरु-भक्ति और विनय का भी यह उत्कृष्ट उदाहरण है। काव्य लिखकर उन्होने गुरुदेव से प्रार्थना की कि उनके आगमन के बारे मे राजा से न कहे।

काव्य श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम् दरबार मे राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया। शास्त्रीजी का गर्व चूर-चूर हो गया। उन्होने हार मान ली। गुरुनाथ विजय-श्रीमडित हो गए। राजा को बाद मे मालूम हुआ कि विजयी काव्य के रचयिता नप्यार थे। तब से नप्यार के प्रति राजा का आदर बढ गया। नप्यार का यश चारो ओर फैल गया और सभी लोग उनका आदर करने लगे।

इतना होने पर भी नप्यार को गर्व छू भी नही गया था। उनकी गुरुभक्ति प्रशसनीय थी। गुरुदेव की वे सदैव पूजा करते थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि गुरु रूठें तो शिष्य को और कही ठौर नही है। गुरुदेव की कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिए वे सदैव प्रार्थना करते रहते थे और कहा करते थे कि गुरुकृपाहीन शिष्य की दशा कभी नही सुधरेगी। वे लिखते है, जो अपने गुरुजनो के चरण-कमलो का स्मरण करते है उन लोगो पर कभी कोई विपत्ति नही आती, यह बात सर्वसम्मत है। गुरुत्व हो तो वाणी सदैव सफल होगी।

कवि-कुल-तिलक कालिदास ने अपने को 'मद कवियश प्रार्थी' बतलाकर विनय का भाव प्रकट किया। एजुत्तच्छन ने अपने को 'अज्ञानिनामाद्य' कहा है। तुलसीदास ने भी यही भाव प्रकट किया है। नप्यार ने कई स्थानो पर अपने-आपको मूर्ख, शपट आदि

कहा है। वे लिखते हैं—मैं मूर्ख वन्दनीय लोगो की सभा में कथा सुनाने को तैयार होकर खडा हू। यह मेरे साहस के अतिरिक्त और कुछ नही।[1]

नप्यार केवल कवि ही नही थे। वे नृत्य और अभिनय-कला में भी अद्वितीय थे। उनके एक नाटक के बारे में ऊपर कहा जा चुका है। काव्य, नृत्य, अभिनय, वाद्य आदि का एकसाथ उपयोग करने की नई पद्धति कवि ने चलाई। इसे 'तुल्लल' कहते हैं। इसमें एक आदमी विशेष वेशभूषा में रगमच पर उपस्थित होकर किसी पौराणिक या वीर-रसपूर्ण कथा को काव्य-रूप में कहता जाता है। साथ ही वह ताल तथा लय के साथ हावभाव दिखाकर अभिनय करता जाता है। वह कभी-कभी उछलता है, कूदता है। उसके साथी वाद्यघोष के साथ कविता-पाठ करते हैं। अभिनय-युक्त सगीत के द्वारा लोग कथा को अच्छी तरह समझकर आनन्द उठाते हैं।

केरल मन्दिरो में कई प्रकार की कलाओ का जन्म हुआ है। उनमें एक है 'चाक्यार कूत्त'। चाक्यार एक जाति-विशेष है। समाजसुधार की इच्छा से पौराणिक कथाओ का आश्रय लेकर प्रचलित कुरीतियो का मनोरजक किन्तु तीखी भाषा में खडन करना इस जाति-विशेष का काम माना जाता है। इसीलिए वे रगमच पर किसीकी मनचाही हसी उडा सकते हैं। उसका उत्तर देना मना है। एक दिन एक चाक्यार अबलप्पुऴा के मन्दिर में कथा सुना रहा था। उस समय कवि नप्यार बाजा बजा रहे थे। बाजा ठीक न बजने के कारण चाक्यार ने भरी सभा में नप्यार की हसी उडाई। नप्यार बहुत लज्जित हुए। उन्होने चाक्यार को एक पाठ पढाने का सकल्प कर लिया। दूसरे दिन मदिर के एक स्थान पर नप्यार विचित्र वेष-विधान करके सगीत-वाद्य-विशेष के साथ नृत्य करने लगे। इससे और भी आकर्षित होकर जितने लोग चाक्यार के पास कथा सुन रहे थे सब नप्यार के सगीत तथा नृत्य से आकर्षित होकर उनके पास आए। कोई भी चाक्यार के पास न रहा। वह बहुत लज्जित हुआ। 'तुल्लल' पद्धति की लोकप्रियता प्रथम प्रयोग मे ही स्थापित हो गई। तुल्लल पद्धति के अनुसार अनेक कथाए नप्यार ने लिखी हैं। उनका अनुकरण कर कई कवियो ने बाद मे तुल्लल कविताए लिखी। किन्तु सभवत किसीको भी उनमे नप्यार के समान सफलता नही मिल सकी है। अपनी इस पद्धति की कई कथाए सरल कोमल-कात-पदावली मे लिखकर नप्यार ने मलयालम भाषा को समृद्ध करने के साथ-साथ अपनी कीर्ति को भी अमर कर दिया है।

श्री कुचन नप्यार की विद्वत्ता सर्वतोमुखी थी। उनके समय में ऐसा शायद ही कोई उपलब्ध ग्रन्थ होगा जिसे उन्होने न पढा हो। उन्हें पढने की सुविधा भी उस समय काफी थी। उस समय के शासक, धनी, ज्ञानी लोग ग्रन्थो का मूल्य और उपयोगिता समझते थे। जनता भी पढने में विशेष रुचि प्रकट करती थी। फलत कन्याकुमारी से लेकर गोकर्ण तक प्रत्येक तीर्थ-स्थान पर एक न एक बडा ग्रन्थालय अवश्य होता था। राजा के साथ तीर्थ-

१ मदनाुल्ल ञान माहात्म्यमेरुम वन्दनीयन्मारिविक सभान्तरे
वन्नोरु मतकथा चोल्लुन्नतुण्टेन्नु तोन्नि पुरप्पेट्टेन्नुटे साहसम्।
—नम्प्यार, ले० प्रो० वारियर, पृ० ७३।

स्थानो के दर्शन करने के लिए नम्प्यार जाया करते थे। इसलिए इन ग्रन्थालयो से नम्प्यार ने पूरा लाभ उठाया होगा, इसमे सन्देह नही। इस अगाध अध्ययन के साथ उनकी स्वय-सिद्ध प्रतिभा भी उत्तरोत्तर बढती गई।

ईश्वर-भक्ति और गुरु-भक्ति के साथ समाज-सुधार की उत्कट इच्छा भी नम्प्यार की कविताओ से प्रकट होती है। सूरदास जैसे कवियो के समान उन्होने अपने काव्य-कुसुम केवल देवार्चन के लिए ही नही सुरक्षित रक्खे। नम्प्यार कविता के द्वारा समाज की कुरीतियो को दूर करने के प्रशस्त ध्येय पर सदैव अटल रहे।

उनके अनेक महत्त्वपूर्ण गुणो में प्रधान है उनका अपनी भाषा के प्रति प्रेम। वे मलयालम तथा सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। फिर भी सर्वसाधारण के लिए विशेष रूप से मलयालम मे ही वे लिखना पसन्द करते थे। वे सदा सरस, सरल मधुर और प्रसादगुण-युक्त शब्दो का प्रयोग करते थे। वे लिखते हैं, "यद्यपि मैं मलयालम और सस्कृत दोनो मे ही अपने आशय अच्छी तरह प्रकट कर सकता हू, तथापि मैं मलयालम मे ही लिखता हू। सिपाही लोगो के लिए सस्कृत कठिन है। मलयालम मे लिखना एक दूषण होगा (लोग मुझे शायद पडित न कहेगे ?) तो भी उसे स्वीकार करते हुए मैं उसीमे लिखता हू।"[1]

मलयालम भाषा पर कवि का अधिकार भी सराहनीय था। अपनी इच्छा और विषय के अनुसार शब्दो का चयन करने मे इनकी बराबरी करने वाला कोई और कवि नही हुआ है। समस्त वाड्मय दास्यभाव से उनकी सेवा मे सदा उपस्थित रहता था। शब्दो की खोज उन्हे कभी नही करनी पडती थी। सरस्वती उनपर सदा प्रसन्न रहती थी। जैसे क्षीरसागर के वक्ष-स्थल पर तरगे प्रचण्ड वेग से नृत्य करती और थिरकती रहती ह, वैसे उनकी रसना पर शब्दसमूह नाचते रहते थे।

काव्य-ग्रन्थ—

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्, भगवद्दूत, भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्, पतिन्नालुवृत्तम्, शीलावति-नल-चरित्र, शिवपुराण, विष्णु-गीता आदि उनके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ हैं। इसमे से श्रीकृष्ण-सम्बन्धी प्रमुख रचनाओ का परिचय दिया जाता है।

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्—

मलयालम के प्रसिद्ध काव्यो मे इसका प्रमुख स्थान है। यह श्री नम्प्यार की प्रारभिक रचना है। इसमे बारह सर्ग हैं। श्री कृष्ण के अवतार का वर्णन पहले सर्ग म किया गया है। दूसरे सर्ग म पूतनामोक्ष की कथा हास्यरस मे लिखी गई है। नलकूबर आदि की कथा का वणन तीसरे सर्ग मे है। कृष्ण की बाललीलाओ का मनोमोहक वणन

---

१ भाषयाय परमानुमटियनु सस्कृतत्तिनुमोन्नुपोल
दोषहीन पट्टुरम मन्यमुदिप्प तुणिटविट्टुन्नतिन
शेषयित्त भटजनगल धरिच्चिटा कट्टु सस्कृतम्
भाषयाय परयामनिल निल दूषणम् नम्मेंकिटुम

—श्री कुञ्चन नम्प्यार—ले० प्रो० गार्गियर, पृ० ७२।

भी हम इसमें पाते हैं। वन-वर्णन और कालियनाग के अहकार का दमन आदि चौथे सर्ग में सुन्दर भाषा में चित्रित किया गया है। रास-क्रीडा मे इसके बारे में पचम सर्ग में लिखा गया है। छठे सर्ग मे इसका विशद वर्णन पाया जाता है। कस की कथा रुक्मणी-परिणय-जाववान के साथ युद्ध करके विजयी होना, उनकी पुत्री को पत्नी रूप में स्वीकार करना, वाणासुर का युद्ध, कौरव-पाडवो का युद्ध और सन्तानगोपाल आदि की कथा शेष सर्गों मे कवि ने अपनी मजुल शैली में लिखी हैं।

भगवद्दूत—

यह भी कवि के बाल्यकाल की कृति है, तथापि सरसता या गम्भीरता में यह किसी प्रकार भी कम नहीं है। यह काव्य चौदह भिन्न-भिन्न वृत्तो में लिखा गया है। यह खडकाव्य इतना लोकप्रिय है कि इसकी चालीस हजार प्रतिया बिक गई हैं।

विषय—कौरव-पाडवो के बीच युद्ध का होना जब निश्चित-सा प्रतीत हुआ और दोनो पक्षो के प्रतिनिधि, दुर्योधन और अर्जुन युद्ध में श्री कृष्ण की सहायता मागने की इच्छा सेजा रहे थे, तब श्री कृष्ण विचार करते हैं—अभी दुर्योधन और मेरे प्रिय मित्र अर्जुन दोनो मुझसे मिलकर युद्ध मे सहायता मागने के लिए यहा आएगे। दोनो ने ही ठान लिया है कि मैं कृष्ण को अपने पक्ष में शामिल कर लूगा।[1] जब दोनो आए तब कपट-निद्रा से कृष्ण के जागने का वर्णन इस प्रकार किया है। 'निद्रा से जागने के बहाने अगडाई ली, हाथ-पैर फैलाए और अर्जुन को देखकर बोले।'[2] इसके बाद दुर्योधन का कृष्ण की सेना को चुन लेना और अर्जुन का निरस्त्र कृष्ण से सन्तुष्ट होना आदि बातें सक्षेप में लिखी गई हैं।

कृष्ण धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास जाते हैं। यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार किया जाता है। उस समय द्रुपद राजा के पुरोहित कौरवो के यहा से आकर सारा समाचार सुना देते हैं। दुर्योधन से सन्धि होना असम्भव है, अत. क्यो अपना समय व्यर्थ बिताते हैं युद्ध करना ही अच्छा है।[3]

धृतराष्ट्र को मालूम हुआ कि युद्ध की सारी तैयारी हस्तिनापुर। में हो रही है और वे यह भी जानते थे कि धनजय से भिडने पर अपने दल की बरबादी ही होगी।[4] इसलिए सजय को बुलाकर समझाया कि वे धर्मपुत्र के पास जाकर नीति-सम्बन्धी बातें करें और उन्हें युद्ध से विरत होने का उपदेश दें। सजय धर्मराज के यहाँ आकर अपने स्वामी का सन्देश भली भाति सुना देते हैं। मेरा पुत्र दुर्योधन बडा मूर्ख है, भलाई का विचार भी उसके मन में नही आता। मेरी बातें तो वह मानता नही। यह सब मेरे दुष्कर्मों का फल है। आप तो उदार हैं। आपसे सच्ची बातें करें तो उसका फल अच्छा ही होगा। कई जन्मो मे सुकृत करने के फलस्वरूप ही अन्त में मनुष्य-जन्म मिलता है। ऐसे दुर्लभ नर

---

१ भगवद्दूत, पृ० १, पद स० ४।
२ भगवद्दूत, पृ० १, पद स० ११।
३ भगवद्दूत, दूसरा वृत्त, पृ० ४, पद स० ६।
४ भगवद्दूत, पृ० ४ पद स० ४३.।

जन्म पाकर लडाई-झगडे मे उसे खोना निरी मूर्खता है।[1] यह समझाकर राज्यपालन में अधिक क्लेश है। इसकी चर्चा करते हैं। इस प्रकार सन्यास की महिमा आदि का सुन्दर वर्णन करके पाडवो को समझाने की चेष्टा की गई है।

धर्मपुत्र उसका समुचित उत्तर देते हैं—वैर रूपी तरु मन मे अकुरित हुआ है और बढा है। वह पुष्पित भी हुआ है और उसके फूल बिखर रहे हैं। उसकी जड सब कही फैल गई है। अत शान्ति से बैठना सोहता नही। दूसरो के लिए द्वेष रूपी तरु का पोषण करना अत्यन्त भयावह है। हे राजन्, धमकी देकर आगे काम नही चलेगा। चुगली से क्या प्रयोजन है ? बाकी सब शीघ्र ही अनुभव से विदित होगा।[2]

इतने में कृष्ण आपे से बाहर होकर सजय से जो बातें करते हैं, वे कितनी नीति-पूर्ण हैं। वे कहते हैं—हे सजय, तुम जाकर धृतराष्ट्र को धर्मराज का सन्देश इन शब्दो में सुनाओ, पिताजी ने जो उपदेश दिया वह अच्छा है। धर्मपुत्र आदि वन मे वास करें आदि उपदेश देकर उन्होने अपार कृपा की है। मित्रो की भावना से उसकी भावना निराली है। घमण्डी दुर्योधन गुलछर्रे उडाता रहे और पाँचो पाण्डव भयानक वन मे मारे-मारे फिरें। मेरे रहते यह न चलेगा। तुम जाकर उस बूढे से कहो कि कपट-भाव छोडकर रहना ही अच्छा है। पहले उन्होने बेचारे पाण्डवो के साथ कैसा बर्ताव किया। उन निरीह असहाय लोगो को लाख से बने महल में जला देने की कोशिश की, भीम को विष दिया, चौपड खेलकर धोखेबाजी से उनका सर्वस्व छीन लिया। उस समय वह बूढा निश्चिन्त और चुप रहा। कौरव लोग क्या करते हैं ? अपने दोस्तो के साथ हँसी-विनोद मे समय बिताते हैं, सुख की सारी सामग्री का उपभोग करते हैं और मस्त रहते हैं, सुन्दरी, सुरा आदि का सेवन इच्छानुसार करते हैं। मद्य-पान महोत्सव मे निमग्न रहकर बडी धूमधाम से सगीत और नृत्य का आनन्द लेते हैं परन्तु समझ लो और सावधान हो जाओ। उनका अन्तिम काल समीप आ गया है। मृत्यु के आने पर कोई उनकी सहायता करने नही आएगा। निश्चय समझो कि मृत्यु देवता उनके सिर पर मडरा रहे हैं।[3]

---

१ पतिन्नालुवृत्तम्, ले० नप्यार पृ० ६, पद स० ४०—।

२ पतिन्नालुवृत्तम, पृ० ६, पद स० ४२।

३ एन्तु सजय ! चोल्लु चोल्लु पितावु तन्नुटे शासनम्
चन्तमोटु वनत्तिल वाजुक धर्मजादिकळेन्नतो
अन्न भूपति नन्नुरे कृप नन्नुनन्नितु विस्मयम्
बधुभावमितेत्रयुम तव चिन्तये हर शकर !
मानशालि सुयोधनन निज नाट्टु वाणु सुखिक्कयुम
दीन भाव मियन्नु पाडवर काट्टुवाणु नटक्कयुम
ञा निरिक्के वरुननल्लितु वृद्धनोटुरचेयूक नी
मानमे कपटम वेटिञ्ञु नटक्केटो हर शकर !
लाक्षकोन्टु चमञ्च कोट्टयिलिट्ट चुट्टु पोरिच्चतुम
रूक्षमायि वृकोदरन्न विषम कोटुत्त वलञ्चतुम
अक्ष कैतव हेतुना मकलम पिटिञ्चु परिच्चतुम
पक्षपातमिनोक्कयुम तव चिन्तये हर शकर !

चतुर्थ वृत्त में यद्यपि विदुर का उपदेश मूल महाभारत के आधार पर लिखा गया है तो भी नप्यारजी ने कही-कही कुछ परिवर्तन कर डाला है। एक स्थान पर भारत के कवि यो लिखते हैं—सवल लोगो ने जिन दुर्वलो पर दोष लगाया है वे भी हमेशा अशान्त तथा विना सोए रहते हैं ।[1] इस आशय को नप्यार ने इस प्रकार पुष्ट किया है—दूसरो के धन पर अधिकार करने की इच्छा रखने वाले, दूसरे राजाओ से डरने वाले, दूसरो की तरुणियो पर प्रेम रखने वाले, विरही लोग, अपनी स्त्रियो से विगडने वाले, दुर्वल धनवान् अभिमानी वडो से वैर रखने वाले, वडे लालची आदि लोगो को रात के समय नीद नही आती ।[2]

पाचवें वृत्त मे धर्मराज की नीति का वर्णन है। धर्मपुत्र का दृढ मत है कि युद्ध छिडने से सारे राज्य का सत्यानाश होगा। अत अपने सवन्धियो से मेल रखकर जीवन विताना ही अच्छा है। अत में कृष्ण ने एक वार सन्धि का प्रस्ताव स्वय ले जाने की इच्छा प्रकट की। सन्धि के लिए भीम को भी अनुकूल देखकर श्री कृष्ण उसकी भीरुता पर व्यग्य कसते हैं—अरे तुम केले के पेड़ के समान दृढ हट्टे-कट्टे मोटे-ताजे दिखाई पडते हो। वास्तव मे तुम अवला नारी ही हो गए हो। सदा भोजन की चिता लगी रहती है। यहा रहने की अपेक्षा जगल में जाकर कद-मूल फल खाकर जीवन विताना अच्छा है।[3] कृष्ण के ये परिहास भरे वचन भीम के मन मे पौरुष की भावना जागरित कर देते हैं। उस अवस्था मे उनके मुह से निकले हुए शब्द रौद्ररस-प्रधान हैं। अपनी वीरता प्रकट करते हुए भीम कहते हैं—युद्धक्षेत्र में एक ही वार से पापी दुर्योधन का काम तमाम करने के लिए अकेला भीम काफी है। मेरी गदा के सघट्टन से उत्पन्न होने वाला घर्घर रव शत्रुओ के लिए असह्य है। शत्रुओ के रक्त की नदियो से सागर मे हलचल उठेगी, पर्वत हिलने लगेगा। मस्त हाथी के समान भीमकाय मैं चारो ओर दौडकर सब को चकनाचूर कर दूगा।[4] यह छठे वृत्त मे है। सधि की असफलता के वारे में अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पहले से सकेत दे देते हैं। तथापि अत में एक वार और परीक्षा कर लें, कहकर कृष्ण कौरवो के पास जाते हैं।

नरपान महोत्सवड्डलुमिन्नतन्ने तुटड्डविन
वाद्यघोषवु अगनाजन नृत्तवु मृदु गानवु
गद्यपद्यविनोदवुम पल विद्यायु तुरन्निड्ढयग
सत्यनेव कुरुध्वमिन्नु कुरुरकने हर शकर '
धार्तराष्ट्र वशत्तिलुन्नोरु मर्त्यजातिकलोक्कयुम
पार्त्तलम वेटिञानद्वत्तुमोर्त्तु कोल्लुविनजना
नृत्तुवन्नु ललाट मीमनि नृत्त केनि तुटार्नतुम
चित्त तारिलरिज्ञ्नु कोल्लुविनेपोऴुम हर शकर '

—भगवद्दूत पृष्ठ ६-७, पद स० १, २, ३ से १२ तक।

१ कुचन नप्यार—ले० परिक्कर, पृ० १११।
२ भगवद्दूत, पृ० ८।
३ भगवद्दूत, पृ० १३।
४ भगवद्दूत, पृ० १४।

सातवें मे पाचाली दुखी होकर अपनी कष्ट-कथा सुनाती हुई कृष्ण से नम्रता-पूर्वक पूछती है—आप कुरुकुलाधिप के पास सधि का प्रस्ताव ले जाएगे तब मेरी इस खुली हुई वेणी का क्या होगा ? कृपा कर आप इसे न भूलें।[1] इन पदो से कवि की भक्ति प्रकट होती है।

आठवें मे श्री कृष्ण की यात्रा का वर्णन है। उनका अपूर्व सौन्दर्य देखकर लोग दग रह जाते हैं। वे सिर के बालो पर मोरपख खोसे हुए हैं, मालती, मल्लिका आदि पुष्पो से बनी माला वक्षस्थल पर शोभित है। लोल नयन हैं। कुण्डलो की शोभा गालो पर पडती है। लाल ओष्ठ हैं। मुख सूर्य के समान जाज्वल्यमान है और मनोज्ञ भी। गला शख के समान है। छाती पर वनमाला और कौस्तुभ मणि शोभित हैं। सुन्दर हाथो में चमकीले ककण पहने हुए हैं। एक हाथ मे वशी है। शरीर कुकुम-रसादि से अतिरमणीय हो गया है। श्री कृष्ण का पीताम्बर सकुल मणि-काचन-काचि-गुणाचित है। सरोज के समान हैं पद युगल[2], ऐसे श्री कृष्ण को देखकर देवतागण पुष्पवृष्टि करने लगे और सब लोगो ने उनको नमस्कार किया।

नवम वृत्त में कौरवो के महल में श्री कृष्ण का प्रवेश धृतराष्ट्र का अभिवादन और प्रार्थना आदि का वर्णन है। दुर्योधन के सत्कार का तिरस्कार कर श्री कृष्ण भक्तशिरोमणि विदुर के अतिथि बनते हैं और कुन्ती को सात्वना देते हैं।

दशम वृत्त में भगवान् श्री कृष्ण का कौरवो की राजसभा मे प्रवेश, उनका अनादर, सुयोधन के गर्व भरे वचन, कृष्ण का वादविवाद आदि चित्रित किए गए हैं। श्री कृष्ण की हसी उडाता हुआ दुर्योधन अपने आसन पर ऐंठ कर बैठा था। कृष्ण के आगमन की सूचना पाकर भी वह उठा नही, जमकर बैठा ही रहा। कवि ने श्री कृष्ण का सभा-प्रवेश सुन्दर शैली मे चित्रित किया है, गोपाल-रूप रमाकान्त ने धीरे-धीरे अपना पाचजन्य बजाया और सभा-भवन में प्रविष्ट हुए। ऐसा मालूम हुआ मानो बाल-सूर्य का उदय हो रहा हो। उनकी प्रभा चारो ओर बिखरने लगी। मुस्कराते हुए सभा-भवन मे प्रवेश किया तो ऐसा लगा मानो पीयूष-वर्षा हो रही हो। पीताम्बरधारी, किरीटी सुवर्णभूषणालकृत उस रूप की शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? वक्षस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभरत्न शोभित हैं। दयामयी दृष्टि से मानो अनुग्रहो की वर्षा कर रहे थे। उनकी उस उपस्थिति से दर्शक आनन्द-सागर मे डुबकिया लगाने लगे।[3] दुर्योधन की आज्ञा थी कि जब कृष्ण सभा मे आए तब कोई भी अपने आसन से उठकर उनका अभिवादन न करे। किंतु अचरज की बात है कि दूर से श्री कृष्ण को आते देखकर सारे राजा-महाराजा निस्तेज हो गए, कापने लगे, आसन से उठकर हाथ जोड प्रार्थना करने लगे, यहा तक कि श्री कृष्ण के अन्दर आते-आते स्वय दुर्योधन अपने आसन पर स्थिर न

---

१ भगवद्दूत, पृ० १५, पद स० १।

२ भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० ८, ६ तथा १०।

३ भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० ८, ६, १०।

रह सका, लुढककर नीचे आ गया। कर्ण जैसे महारथी भी जमीन पर लुढक गए। यह दृश्य देखकर भला कौन हसी रोक सकता था। कवि भी दुर्योधन की मूर्खता पर हस पडते हैं।[1]

एकादश वृत्त में धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि गुरुजन दुर्योधन को उपदेश देते हैं, किन्तु उसे ठुकराकर वह अपने दुराग्रह पर दृढ रहता है और कर्ण प्रभृति का कहना मानता है।

द्वादश वृत्त में कर्ण-दु शासन आदि दुर्योधन को सुझाते हैं कि कृष्ण को कैद किया जाए और वह उसके लिए प्रयत्न करने लगता है। कवि ने इसका सरस वर्णन किया है। सिपाही, हाथी, घोडे आदि सजाकर गोपाल को पकडने व बाधने की तैयारी करते हैं। उन के मन में भय समाया रहता है, उसी समय कृष्ण के भक्त सात्यकी दुर्योधन की बुरी भर्त्सना करते हैं। त्रयोदश वृत्त में श्री कृष्ण अपना विश्वरूप दिखाते हैं। लोकाधिनाथ ने अपना भयानक रूप दिखाया। उसका तेज समस्त जगत् में व्याप्त हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्री कृष्ण शत सहस्र मुख वाले हो गए हो। उनका शरीर काले बादलो के समान दिखाई पडा। सारे विश्व को कम्पायमान करने वाला अट्टहास उनके मुह से निकला।[2]

भगवान् श्री कृष्ण के विश्वरूप को देखकर दु शासन प्रभृति मूर्च्छित होकर गिर पडे। उसका वर्णन कवि यो करते हैं—"विश्वनाथ का विश्वव्यापी रूप देखकर दु शासन आदि दुष्टबुद्धिजन मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। कुछ लोग जमीन पर लोट-पोट होने लगे। कुछ स्तभित होकर खडे रह गए। काटो तो खून नही। कुछ लोगो के प्राण-पखेरू उड गए। कुछ भयभीत होकर निर्लज्जता से हाय-हाय करने लगे। कुछ अपने धनुप-बाण आदि छोडकर दात दिखाते रह गए। कुछ आखें फाडकर देखते ही रह गए। कवि कहते हैं कि उस दृश्य का समुचित चित्र खीचना मेरी शक्ति के बाहर की बात है।[3]

अतिम वृत्त में भीष्म आदि की प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण अपना वह भयानक रूप समेट लेते हैं। मोरपख से शोभित पीताम्बरधारी भगवान् अपनी सुपरिचित मुस्कराहट के साथ फिर लोगो से मिले। ऐसे अद्भुत भगवान् को मैं बार-बार प्रणाम करता हू। इस प्रकार स्तुति करते हुए कवि अपनी कृति समाप्त करते हैं।

भट्टतिरि के दूतवाक्य तथा महाभारत के आधार पर यद्यपि इस काव्य की रचना की गई है तो भी इसमें नप्यार का व्यक्तित्व तथा उनकी स्वतत्र विचारधारा हम स्पष्ट देख सकते हैं। श्री कृष्ण के प्रति उनकी अपार भक्ति है और विदुर के द्वारा उनका उपदेश आदि सराहनीय है।

भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्—

कवि नप्यारजी ने इस ग्रन्थ मे श्रीमद्भागवत की कथावस्तु चौबीस सर्गों में

1 भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० ३१, ३२, ३३।
2 भगवद्दूत, पृ० ३०, ३१।
3 भगवद्दूत, पृ० ३२।

और विभिन्न वृत्तो मे लिखी है। कुलदेव की प्रार्थना के साथ वे इस ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं। अम्बुज-विलोचन, श्रीहरि, कृष्ण, शिव, गणपति देवता आदि वृन्द और मेरे गुरुदेव मेरी सहायता करें।[१]

तुलसी ने जिस प्रकार 'स्वात सुखाय' लिखा उसी प्रकार नप्यार ने भी 'विष्णु पद पाने के लिए' श्री कृष्ण का चरित्र लिखा है।[२]

दूसरे सर्ग मे श्री कृष्णावतार के समय का सुन्दर वर्णन किया है। जब चक्रपाणि का जन्म हुआ तो ससार के सभी जीव सन्तुष्ट और सुखी हो गए। पक्षी कलरव करने लगे। सब कही प्रकाश फैल गया। भूमि देवी को बडी सान्त्वना मिली, देविया नाचने और गाने लगी। कृष्ण-जन्म का समाचार सर्वत्र ढोल पीटकर गोपो द्वारा घोपित किया गया।[3]

तीसरे सर्ग में पूतना-वध, चौथे मे तृणावर्त का आगमन, पाचवे मे वृकासुर का वध, छठे में सर्पासुर का निधन, सातवें मे कालिय नाग का दर्पहरण, आठवे मे गोपियो को श्री कृष्ण के उपदेश, नवें मे रासलीला-वर्णन, दशम वृत्त मे कस का अपशकुनो को देखना, एकादश मे गुरु-दक्षिणा आदि का वर्णन है। द्वादश वृत्त में रुक्मिणी का प्रेम-निवेदन है। उनका सन्देश पहुचाने वाला उनकी दशा के सम्बन्ध मे भगवान् से कहता है—हे भगवान् ! आपका नाम सुनकर रुक्मिणी को आपसे प्रेम हो गया है और वे सदैव कामाग्नि से सतप्त रहती हैं। चन्दनादि शीतोपचार से भी उनको सताप होता है। मन्द वायु के स्पर्श मे भी उनको मूर्च्छा आ जाती है। चन्द्र और अग्नि दोनो ही उनके लिए एक से हैं। कोयल की मजुल वाणी सुनते ही मानो उसके प्राण-पखेरू शरीर को छोडकर उडने के लिए छटपटाते हैं। फुलवारी मे भी उनको मूर्च्छा आ जाती है।[४]

त्रयोदश वृत्त मे रुक्मिणी का परिणय है। स्वयवर के लिए विभिन्न देशो के राजा लोग आते हैं। राजकुमारी का अपूर्व सौन्दर्य देखकर उपस्थित राजाओ की विचित्र स्थिति का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं—सोने की सी राजकुमारी स्वयवर मण्डप मे आई तो वहा के भूप उन्मादवश तरह-तरह की बातें करने लगे। एक राजा ने पान लेने के लिए नौकर की ओर हाथ बढाया ही था कि राजकुमारी मण्डप में आई। देखते ही राजा का हाथ ज्यो का त्यो रह गया। दूसरे एक भूप ने पान खाते समय राजकुमारी को देखा। उसने भ्रम में पडकर चूना ही खा लिया और उसकी जीभ जल गई। तीसरे एक राजा को तो उस अपूर्व सौन्दर्य को देखते ही मूर्च्छा आ गई और वह गिर पडा। तात्पर्य यह है कि सभी राजा लोग रुक्मिणी को देखकर मन्त्र-विमुग्ध होकर बैठे रहे। इतने मे श्री कृष्ण ने उसे अपने रथ मे बिठाया और सब के देखते-देखते उसे लेकर चल दिए।[५]

---

१ भागवतम् इरपत्तिनालुवृत्तम्, प्रथम सर्ग—सपादक पणिक्कर, पृ० १२७।

२ भागवतम इरपत्तिनालुवृत्तम, प्रथम सर्ग, पद स० १२७।

३ भागवतम् इरपत्तिनालुवृत्तम, दूसरा सर्ग, पद स० २३।

४ भागवतम् इरपत्तिनालुवृत्तम, बारहवा सर्ग, पद स० ४६ से ५६।

५ इरपत्तिनालुवृत्तम, तेरहवा सर्ग, पद स० २३, २४, २५ और २६।

चौदहवें वृत्त में सत्राजित की बेटी का पाणिग्रहण, और पन्द्रहवें में पारिजात की कथा आदि हैं। सोलहवें वृत्त में कवि ने बडी भक्ति से शिवजी के द्वारा विष्णु भगवान् की स्तुति कराई है। हे शरणागतो के शरण, करुणाकर, सूर्यकोटिप्रभ, धरणी-भार-हरण, रमणीरमण, सुन्दरमूर्ति, मृत्यु के समय मेरा दु ख दूर करो।[1]

सत्रहवें अध्याय में बाणासुर की नगरी पर श्री कृष्ण तथा उनकी सेना का आक्रमण अठराहवें में असुर विविद की धमकी, उन्नीसवें में सुदर्शन चक्र का वर्णन, बीसवें में जरासन्ध-वध और इक्कीसवें मे दुर्योधन की स्थल-जल-भ्राति का वर्णन है। बाईसवें में सुदामा-चरित्र है। तेइसवें मे श्री कृष्ण का अपनी माता देवकी से मिलना और चौबीसवे में अर्जुन का अग्नि-प्रवेश और श्री कृष्ण का वहा आकर उसे परावृत्त करना आदि कथाए हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य सरस प्रसगो का वर्णन कवि ने बडी सुन्दरता से किया है।

अम्बलप्पुजा मे नम्प्यार कई साल तक रहे। जब उसे तिरुविताकूर राज्य के राजा मार्तण्ड वर्मा ने जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया तब नम्प्यार भी मार्तण्ड वर्मा के आश्रित होकर तिरुवनतपुरम् नगरी में रहने लगे। राजा ने उनका बडा आदर-सत्कार किया। जब कवि बूढे हो गए तब वे अम्बलप्पुजा चले गए। एक पागल कुत्ते के काटने से उनकी जीवन-लीला लगभग ई० सन्० १७४८ में समाप्त हुई।[2]

राम पुरत्तु वारियर

मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियो में वारियर हिन्दी के नरोत्तमदास के समान कुचेलवृत्तम् (सुदामाचरित्र) नामक एक सरस खण्डकाव्य रचकर अमर हो गए हैं। अन्य प्रसिद्ध कवियो के समान उनके जन्म, जीवन अध्ययन आदि के बारे में निश्चित जानकारी का अभाव है। सर्वश्री ए० आर० कृष्ण पिल्ला नारायण पणिक्कर के लेखो के आधार पर वारियर के जीवन की घटनाओ का वर्णन दिया जाता है।

इतना तो निश्चित है कि जब मार्तण्ड वर्मा तिरुविताकूर राज्य की गद्दी पर थे तब वे उनके दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि उनका जन्म-स्थान मीनच्चील तहसील का रामपुरम् गाव है। उस गाव के श्रीकृष्ण-मन्दिर के वारियर निवास में लगभग ई० सन् १७२४ मे कवि पैदा हुए।[3] जन्म-स्थल के नाम से पुकारे जाने के कारण वे रामपुरत्तु वारियर कहलाए। यह भी कहा जाता है कि वारियर के पिताजी कोई नपूतिरि (केरल ब्राह्मण) थे।

---

१ शरणागत शरणानन्त करुणामय हरणा
नम्णाकर किरणाव वदरुणानल चरणा
धरणीभर हरणा शुभ रमणीमणिरमणा
करुणाम् कुरु मरणे मम यदुनायक शरणम्
—दग्पत्तिनालुवृत्तम्, सर्ग सोलह, पद स० १६।

२ कुंचन नम्प्यार—ले० प्रो० बालकृष्ण वारियर, पृ० ६२।

तीसरा परिच्छेद

दार्शनिक विचार

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो की रचनाओ का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन या विश्लेषण करना उनका उद्देश्य न था। वे लोग प्राय कृष्ण-लीला-सम्बन्धी पद गाते समय आनन्द-सागर मे निमग्न हो-हो जाते थे और अपने को भगवान् का तुच्छ भक्त समझने मे ही परम सतुष्ट रहते थे। तात्त्विक वाद-विवादो से तटस्थ रहने पर भी उनपर तत्कालीन वातावरण का प्रभाव पडना अवश्यभावी था। अत उन्होने दार्शनिक विचारधाराओ के विषय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपना अभिमत प्रकट किया है। उदाहरण के लिए उद्धव-गोपी-सवाद मे दार्शनिक तत्त्वो का समावेश हो गया है। सभी कवियो की शैली तथा सिद्धान्त-स्थापन मे बहुत कुछ समानता है। हमे अन्ततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुचना पडता है कि एक प्रकार के ही आध्यात्मिक वातावरण मे विचरण करने वाले इन भक्तकवियो के आदर्श, भाव एव स्थिति आदि एक समान ही रहे होगे। केवल अतर है तो उनके आत्मप्रकटन के माध्यम मे, कुछ ने हिन्दी मे लिखा है और कुछ ने मलयालम मे।

समस्त कवियो ने एक स्वर से उद्घोषित किया है कि उनके इष्टदेव श्री कृष्ण के निर्गुण और सगुण दोनो ही रूप है। यह समस्त विश्व उन्हीके अश से उत्पन्न है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव वे ही है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है, वे धर्मरक्षार्थ परिस्थिति के अनुसार ही अवतीर्ण होते है। मलयालम और हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो मे अन्तर केवल यह है कि मलयालम के कवियो ने कृष्ण के धर्मरक्षक ऐश्वर्य रूप पर अधिक बल दिया है और हिन्दी-भक्त-कवियो ने कृष्ण के रस अथवा आनन्द रस पर। सूर ने एक स्थल पर लिखा है कि ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष सब कृष्ण के अश से उत्पन्न है। कृष्ण वह रस-रूप अखड, अनादि और अनुपम है।[1]

---

१ सदा एक रस एक अखडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहि जानत विहरत युगल स्वरूप॥
सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृतिपुरुष श्रीपति नारायन सब है अश गुपाल॥

—सूरसारावली, सूरसागर, न प्रे, पृ० ३।

परब्रह्म कृष्णभक्तो का कष्ट दूर करने के लिए समय-समय पर अवतार लेते है। भक्त प्रह्लाद, द्रौपदी, विदुर आदि सच्चे भक्तो की सेवा में कृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। ऐसे कई उदाहरण दोनो भाषा के कवियो ने अपने पदो में दिये है।

सूरदास ने लिखा है कि हे भगवन्! आप जब भक्तो की विपत्ति की कथा सुन लेते थे तो तुरन्त उनकी सहायता करने के लिए दौडे हुए जाते थे। गज की आर्त वाणी सुनकर आप दौड पडे। प्रह्लाद, द्रौपदी विदुर और सुदामा आदि भक्तो के पास पहुच उनका सकट तुरन्त ही दूर कर दिया।[1]

एक स्थान पर श्री कृष्ण की सर्वव्यापकता और उनके विराट् ब्रह्म-रूप के बारे में सूरदास लिखते है कि हम अपने नयनो मे कृष्ण की छवि देखें। वे घटघटवासी है। वे अनुपम ज्योतिस्वरूप है। पाताल उनके चरण है, आकाश उनका मस्तक है तथा सूर्य-चन्द्र आदि उनका प्रकाश है। यह कृष्ण-रूप है।[2]

हरि अनन्त, अविनासी और सर्वव्यापी हैं। जिसे पुराण ब्रह्म कहते है, चतुरानन, शिव आदि जिसका अन्त नही पा सकते है, वही कृष्ण है। जो अगम, वेदो के लिए अप्राप्य है, वही कृष्ण है।[3] इस प्रकार कई पद कृष्ण की व्यापकता के सबध में सूरदास ने लिखे है।

परमानन्ददास कहते है कि श्री कृष्ण ही परब्रह्म है, अपनी इच्छा के अनुसार वे कई रूप धारण कर लेते है। निगम उन्हे 'नेति' 'नेति' कहकर पुकारते है। परब्रह्म गुण-रहित और सगुण दोनो है। अपने भक्तो की रक्षा करने के लिए वे अवतार लेते है।[4]

राग कान्हरौ

1 जैसें तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ।
अपने जन कौ दुखित जानि कै पाउ पियादे धायौ।
जहँ जहँ गाढ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ।
भक्ति हेत प्रह्लाद उबार्यौ, द्रौपदि चीर बढ़ायौ।
प्रीति जानि हरि गये बिदुर कैं नामदेव घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ।

—सूरसागर, विनयपद, स० २०, सभा सस्करण।

2 नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सो इ, ज्योति रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर चद्र नक्षत्र पावक, सर्व तासु प्रकास ॥३७०॥

—सूरसागर, स० सूर-समिति।

3 आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरतर घट-घट बासी।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन, शिव, अत न जानैं।
गुन गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै।

—सूरसागर, सभा सस्करण, पद स० ६२१।

4 मोहन नन्द राय कुमार।
प्रकट ब्रह्म निकुज नायक भक्त हेत अवतार।

दूसरे एक स्थान पर परमानन्ददास ने लिखा है कि नन्दकुमार आनन्द के निकेत हैं, वे मनुष्य-जन्म लेकर भक्तो के लिए अनेक प्रकार की लीलाए करते हैं। कृष्ण आनन्द-रूप हैं। वे सर्वदा अपने भक्तो को आनदित करने के लिए ही प्रत्येक काम करते रहते हैं। उनके आनन्दविलास से सुर, मुनि, सत आदि को बडा आनन्द मिलता है। ऐसे भगवान् श्री कृष्ण के चरण-सरोज का भ्रमर परमानन्ददास बनना चाहता है।[1] फिर भी वे कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनके भिन्न गुण-रूप हैं और वरदायक हैं। शख-चक्र-गदा-धारी मेरे उपास्यदेव राधिकारमण कृष्ण ही हैं।[2]

सूरदास, परमानन्ददास आदि भक्तकवियो के समान नन्ददास ने भी लिखा है कि नाम, रूप, गुण भेद से जो सब ठौर व्याप्त हैं और जिनके बिना यह समस्त विश्व सारहीन बन जाता है, उसी ब्रह्म का अवतार श्री कृष्ण है।[3] आनन्दमूर्ति श्री कृष्ण सारे जगत् के आधार हैं।[4] वे सर्वव्यापी हैं, अखण्डस्वरूप है, उदार हैं। प्रेम से ही भक्त उन्हे प्राप्त कर

× × ×

दास परमानन्द स्वामी वेद बोलत नेति।

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४१०।

१ आनँन्द की निधि नन्दकुमार।
परब्रह्म मेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार।
स्रवनन आनँद मन मह आनँद लोचन आनँद आनँद पूरिन।
गोकुल आनँद गोपी आनँद, नन्द जसोदा आनँद कद।
नृतत हँसत कुलाहल आनँद राधापति वृन्दावन चन्द।
सुर मुनि आनँद सन्तनि आनँद निज जन आनँद रास विलास।
चरण कमल मकरदपान कों अलि आनँन्द परमानँददास॥

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४११।

२ मोहि भावै देवाधि देवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुल नाथ एक मेवा।
तीन देवता मुख्य देवता ब्रह्मा, विष्णु अरु महादेवा।
जे जनियै सकल वरदायक जुन विचित्र कीजिये सेवा।
सख चक्र सारग गदाधर रूप चतुर्भुज आनँद कन्दा।
गोपीनाथ राधिकावल्लभ ताहि उपासत परमानन्दा॥

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४१३।

३ नाम रूप गुन भेद जे, सोइ प्रकट सब ठौर।
ता बिन तत्त्व जु आन कछु कहै सो अति बड़बौर।

—मानमंजरी, पंचमंजरी, [illegible], पृ० [illegible]।

४ नमो नमो आनन्दघन सुन्दर नन्दकुमार। रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार।

—मानमंजरी, पंचमंजरी, [illegible], नं० १।

सकते है, अन्य किसी उपाय से नही।[1] वे अनंत और अद्वैत है।[2] भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए वे एक स्थान पर कहते है—हे भगवन्! सब के मूल में आप ही है और सृष्टि, स्थिति तथा लय करने का काम आप करते रहते है, आप विश्व-रूप है और अव्यक्त भी। इस प्रपच के सारे प्राणियो के रूप आप ही के रूप का विस्तार है। आप अव्यय और अखिलेश्वर है। सत्त्व, रजस् और तमोगुणधारी प्रकृति, शक्ति सब आप ही है। आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा नही है। सब कही आप ही है। मै आपसे प्रार्थना करता हू कि हे करुणाकर! आप मुझे भाव-भक्ति प्रदान कीजिए।[3]

मीराबाई ने श्री कृष्ण को 'अविनासी' की सज्ञा दी है। मीरा ने एक स्थल पर लिखा है कि भगवान् श्री कृष्ण मेरे हृदयेश है, चाहे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, जल, आकाश का नाश हो जाय, परन्तु कृष्ण स्थिर ही रहेंगे।[4] ऐसे श्री कृष्ण के साथ स्थायी प्रेम हो सकता है। वे ही मेरे पतिदेव है।[5] उन्हीको आसानी से कोई प्राप्त कर सकता है।[6] उस

---

१ सब घट अन्तरजामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आतमानन्द अखड स्वरूप उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अपर परकारा॥
—सिद्धान्त-पचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १३१।

२ हरि अनन्त और एक।
—अनेकार्थमजरी, पचमजरी, वलदेवदास करमनदास, छद ६, पृ० १८३।

३ परम पुरुष सबहिन के कारन, प्रतिपालन तारन सघारन।
व्यक्त अव्यक्त जु विश्व रूप अनूप, वेद वदन प्रभु तुम्हारो रूप।
तुम सब भूतनि को विस्तार, ठेर प्रान इन्द्री अहकार।
काल तुम्हारो लीला श्रीधर, तुम व्यापी तुम अव्यय ईस्वर।
तुम ही प्रकृति सकति सब तुमही, सत रज तम जे ले लै उमही।
तुम ही जीवन तुम ही जीव, सब ठा तुम कोउ अवर न पीव।
× × ×
हे करुनानिधि करुना कीजै, अपनी भाव भगति रति दीजै।
—दशम स्कन्ध, दशम अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० २८८।

४ मेरा पिया मेरे हिय बसत है, ना कहु आती जाती।
चदा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायेंगे, अटल रहै अविनासी॥
—मीराबाई की पदावली, सपादक परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ८।

५ अविनासी से बाल्या है, जिन से साची प्रीत।
मीरा के प्रभु मिल्या है, एही भगति की रीति॥
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ११।

६ मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, म्हाने मिले अविनासी रे।
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १६।

'अविनासी' से एक बार मिल जाने पर विछुडना असह्य है।[1] वे अगम और अतीत हैं, 'आदि अनादि' साहब हैं। उनकी सेज गगन-मडल पर बिछी रहा करती है। मीरा उन्हीं कृष्ण के प्रेम में मतवाली बनकर अपनी सुध-बुध भूल गई। उस अविनासी से साक्षात्कार न होने पर उनके रोम-रोम और प्रत्येक अग में चेतनता आ गई और उन्होने 'अमर रस' का प्याला पी लिया[2] जिससे जन्म मृत्यु के बधन से वे सदा के लिए मुक्त हो गई।[3] मीरा इसी कारण अपने साहब को 'त्रिकुटी' महल मे बने हुए झरोखे से झाकी लगाकर देखने, 'सुन्न महल' मे सुरत जमाने वा 'सुख की सेज' बिछाने के लिए आतुर जान पडती हैं।[4] उनका मन 'सुरत' की 'असमानी सैल' मे रम गया है।[5] वे गुरु ज्ञान द्वारा अपने तन का कपडा रगकर तथा मन की मुद्रा पहनकर 'निरजन' कहे जाने वाले के ही ध्यान में मग्न रहना चाहती हैं।[6] वे कभी-कभी 'सुरत या निरत' का 'दिवला' सजोने के लिए 'मनसा' की 'वाती' बनाती हैं और 'प्रेम हटी' से तेल मगवाकर उसके 'दिनराती' जलने की व्यवस्था कर लेती हैं।[7] दूसरी बार 'तन' को ही 'दिवला' बना उसमे 'मनसा' की बाती डाल देती हैं और प्रेम का तेल उसमें भरकर 'दिनराती' जलाया करती हैं तथा 'ज्ञान की पाटी' 'रचकर' वा 'मति' की 'माग' सवारकर बहुरगी सेज पर अपने 'सावरो' का स्वागत करने के लिए 'पथ जोहती' वा प्रतीक्षा किया करती हैं।[8] उन्हे 'सील वरत' (शीलव्रत) के सामने दूसरा

---

१ मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइ री।
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २०।

२ गगन मडल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिलया नहि कोइ।
मीरा का प्रभु पीर मिटेगी, जब वैद सावलिया होइ॥
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २७।

३ परम गुरा के सरण में रहस्या परणाम करा लुटका।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण स छुटका॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० १०।

४ सुन्न महल में सुरत जमाऊ, सुख की सेज बिछाऊणा।
—मीराबाई की पदावली, पृ० ५।

५ मारा मन मानी सुरत सैल असमाना॥ टेक॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० २२।

६ जा को नाम निरजण कहिये, तो को ध्यान धरूगा।
—मीराबाई की पदावली, पृ० २३।

७ सुरत निरत का दिवला सजोले, मनसा की कर ले वाती।
प्रेम हटी का तेल मगा ले, जगे रह्या दिन त राती॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० ६।

८ श्याम तेरा आरती लागा हो।
गुर परतापे पाया, तन दुरमति भागा हो॥ टेक॥
या तन को दियला करो, मनसा करो वाती हो।

कोई भी शृगार पसन्द नही है।[1] अतएव वह ससार की आशा त्यागकर 'हरि हितु' से 'हेत' करने और इस प्रकार 'वैराग-साधन' का उपदेश देती है।[2]

स्वामी हरिदास का कथन है कि हम सब पिंजडे में बद्ध पशु के समान है। भगवान् की कृपा न हो तो कोई भी काम न चलेगा। उनकी इच्छा के अनुसार सब कुछ होगा।[3]

रसखान उपदेश देते हैं कि ब्रज में स्त्रिया सिर के घडे के ऊपर दो-दो, तीन-तीन घडे रख लेती है और बिना हाथ से पकडे वैसे ही बातचीत करती हुई चली जाती है। यद्यपि देखने में तो बातचीत करती मालूम पडती है, किन्तु उनका चित्त एक क्षण में इस बात को नही भूलता कि हमारे सिर पर मटकिया रखी है, नही तो उनके सिर पर की मटकिया गिर जाय, उसी प्रकार गोविन्द का स्मरण करो।[4] निस्सग-भाव से सारा कर्म करने का आशय कवि ने यहा प्रस्तुत किया है।

आनन्दघन प्रार्थना करते है—मनोरथ पूरा करने वाले भगवन्! आप मेरे मन रूपी रथ का भी अबाध गति से सचालन कीजिए।[5]

तेल भरावौं प्रेम का, बारौं, दिन राती हो।
पाटी पारौं ग्यान की, मति माग सवारो हो।
तेरे कारन सावरे, धन जोबन वारौं हो।
या सेजिया बहुरग की, बहु फूल बिछाये हो।
पथ में जोहौं स्याम का आजहु नहिं आये हो।

—मीराबाई की पदावली, पृ० ४६।

1 मीरा लागो रग हरी औरन रग अटक परी॥ टेक॥
चूडो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो।

—मीराबाई की पदावली, पृ० २३।

2 हरि हितु से हेतकर, ससार आसा त्याग।
दास मीरा लाल गिरधर सहज कर वैराग।

—मीराबाई की पदावली, पृ० २६।

3 ज्योंही ज्योंही तुम राखत हौ, त्योंही त्योंही रहियतु है हो हरि।
और अचरचे पाइ धरौं, सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि।
जदपि हौं, अपनो भायो कियो चाहौं, कैसे करि सकौं जो तुम राखो पकरि।
कहि हरिदास पिंजरा के जनावर लौं,
तरफराइ रह्यौ उडिबे को कितोउ करि॥ १॥

—कवि स्वामी हरिदास ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० ७५।

4 सुनिये सब की कहिये न कछू रहिये इमि या भवबागर में।
करिये व्रत नेम सचाई लिये जिनतें तरिये भवसागर में॥
मिलिये सब सों दुरभाव बिना रहिये सतसग उजागर में।
रसखान गुबिन्दहिं यों भजिये जिमि नागरि को चित गागर में॥

—रसखान-पद, स० १२७, पृ० ८०।

5 जा हित मात को नाम जसोदा सुबस को चन्द कला कुलधारी।
सोभा समूह भई घनआनन्द मूरति रग अनग निवारी॥

मलयालम भाषा के कवियो ने भी ब्रह्म के सम्बन्ध मे लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किये है। भक्तप्रवर ज्ञानी एजुत्तच्छन लिखते हैं—हे भगवन्, आप नारायण है, नारद आदि महर्षियो के लिए भी अविज्ञेय है, नारियो के लिए मनोमोहन है, निश्चल, निरुपम, निरामय, निराकुल, भक्तप्रिय, भुक्तिमुक्तिप्रदायक, पद्मनाभ, परापर, शक्तियुक्त, सकलानन्द-विग्रह, अद्वय, अव्यय, अद्भुत, अध्ययनप्रिय, सारे तत्त्वो का मूलाधार, परब्रह्म, सनातन, अच्युत, एक, आनदपूर्ण अनत, जन्म-जरा-मृत्यु-विहीन, जनार्दन, दयानिधि, विष्णु, निरजन, सदाशिव, न्यूनातिरेकविहीन, गोविन्द, मुकुन्द, हरिदेव, दिनाधिप, चन्द्र, त्रिलोचन, पचभूतात्मक, जीवो के आधार, पूतना के घातक, मेरे प्राण, पन्नगनाथ, भक्तो का दुःख हरने वाले तथा मेरे हृदयेश हैं।[1] सर्वगुणसम्पन्न भगवान् मेरे हृदय में स्थित हैं। भक्त में और भगवान् में कोई भिन्नता नही। इसी आशय से युक्त कई कविताए श्री एजुत्तच्छन ने लिखी हैं।

भक्ताग्रेसर श्री पून्तानम नपूतिरि ने अपनी 'ज्ञानप्पाना' मे कहा है कि ईश्वर ने सारे प्रपच की सृष्टि की। वे ज्योतिस्वरूप हैं, विषय-रहित हैं, निस्पृह हे, ज्ञान से वे जाने जा सकते हे, मूर्खों के लिए अज्ञेय है।[2] कवि ने ईश्वर को प्रेम और भक्ति का विषय भी माना है और ज्ञान का भी। जो ब्रह्मज्ञान से जाना जाता है वह ज्योतिरूप है, ज्ञानस्वरूप है।

जान महा सहजै रिझवार उदार विलास में रासविहारी।
मेरो मनोरथ हू वहि ए, अरु है मो मनोरथ पूरनकारो॥
—धनानन्द, स० शभुप्रसाद बहुगुना, पृ० ९०।

१ नारायणन परन दामोदरनीशन नारदनादिकल्क्कुम तिरियातवन।
नाराजन मनो मोहनन केशवन नारक नाशनन नाथन नरकारि।
निष्कलन निर्गुणन निश्चलन निर्ममन निष्कलकन निरातकन निरुपमन।
नित्यन निरामयरूपन निराकुलन भक्तप्रियन पुमान भुक्तिमुक्तिप्रदन।
भक्ति साध्यन पद्मनाभन परापरन शक्तियुक्तन सकलानन्द विग्रहन।
अद्वयनव्ययन अव्यक्तनद्भुतन अध्ययनप्रियनामना गोचरन।
तत्वङ्ङलेगनिम मूलमायवन सत्यस्वरूपन सकल जगन्मयन।
सच्चित्त पर ब्रह्ममाय सनातनन अच्युतन एकनात्मा परमेश्वरन।
आनन्द पूर्णननन्तन जनिमृति हीनन दयानिधि विष्णु निरजनन।
नाना जगत्परिपूर्णन सदाशिवन न्यूनातिरेक विहीनन जनार्दनन।
गोनन्दन इन्द्रानुजन मुकुन्दन हरि देवन दिनाधिप चन्द्र विलोचनन।
भूत पचात्मकन भूति भूपार्च्चितन भूतङ्ङलुल्लिले जीवनायुन्नवन।
पूतना तन्नुट जीवनमुण्टवन पूनन् पुराण पुमान पुरुषोत्तमन।
पन्नगनाशनध्वजन मगलन पन्नगनाथ शयनन परमात्मा।
एन्नुटे युल्लिल विलट्टुन्न तपुरान तन्नुटे भक्तर्क्कु सकट नाशकन।
—श्री महाभारतम, सभा पर्व, कवि श्री एजुत्तच्छन, पृ० १५३।

२ मुन्नमिरकण्टविश्वमशेषवु। ओन्नायुल्लोरु ज्योति स्वरूपमाय।
ओन्न चेन्नङ्ङु तन्नोटु पट्टने। ओन्निन चेन्नु तानु वलयाते।

महाकवि कुचन नप्यार ने लिखा है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र जातियों की सृष्टि की। इसके बाद चाण्डाल आदि उपजातियो को पैदा किया। यदि सूक्ष्म रूप से विचार किया जाए तो मालूम होगा कि इन सब का मूलाधार केवल ब्रह्म ही है। सूत्र में मोती, प्रवाल आदि पिरोकर धनी लोग अपने गले में मालाए पहनते हैं, निर्धन गुंज फल की माला उसी सूत्र में पिरोकर धारण करते हैं। इन दोनों प्रकार की मालाओ का आधार तो डोरी ही है। उसी प्रकार ईश्वर विविध जातियो के विविध प्रकार के लोगो की सृष्टि करते हैं। चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, उसकी आत्मा एक ही है। ज्ञान की स्थिति में ही भेद होता है। जिसको ब्रह्म का ज्ञान नही, वह चाहे ब्राह्मण-कुल में ही क्यो न पैदा हुआ हो, वह चाण्डाल के समान है।[1]

श्री चेरुश्शेरी नपूतिरि इस प्रकार अपने आराध्यदेव परब्रह्म-स्वरूपी कृष्ण की स्तुति करते हैं—हे भगवन्, आपकी महिमा का वर्णन कर सकना मेरी शक्ति के बाहर है, आप मोक्ष-स्वरूप हैं, तिल में व्याप्त तेल के समान आप इस प्रपच में स्थित हैं। आप जैसे सर्वव्यापी को मूर्ख लोग नही देख सकते। सारे प्रपच का कारण आप ही हैं। चराचर की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण आप ही हैं। इन्द्र, चन्द्र, मन्त्र, तन्त्र, वेद आदि में आपका ही निवास है।[2]

एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि हे भगवन्, अग्नि, वरुण, पृथ्वी, आकाश, अरुण

ओन्नोन्नादि निनटक्क् जनङ्ङुलक्कु। ओन्नुकोन्टरिवाकुन्न वस्तुवाय।
ओन्नु पोले योन्निल्लाते युल्लनि लोन्नायुल्लोरु जीव स्वरूपमाय।
निन्नवन वन तन्ने चमञ्चु पोल मुन्नु मोन्निलटङ्डुन्नु पिन्नेयु।
—युन्नानम की कृतियों से पृ० ६१, ६२, स० पटिन के, वासुदेवन मूस्सन।

१ विप्रनेन्नु क्षत्रियनेन्नु वैश्यनेन्नु शूद्रनेन्नु।
इप्रपञ्चे नालु वर्णं नालुवक्कनुलवाक्कि।
तन्नुपुरत्तु चौक्ननेन्नु पाणनेन्नु परयनेन्नु।
कल्पित जातिभेद चिन्नतमिल्ल निरूपिच्चाल।
× × ×
एन्नतु मूलमात्माविन्नार्क्कुमाक्कुम भेदमिल्ला।
ओन्नु तन्ने चरटल्लिल मूलुन्नु परयन्नुम।
ज्ञानमेन्नुल्लतु तन्ने सार मेन्नु धरिक्केणम।
ज्ञानमिल्लात्त विप्रन्नु चौक्कन्नु भेद मिल्लेतुम।
—श्री कुचन नप्यार, स० प्रो० वारियर, पृ० ६७।

२. केवलनायोर निन्नुटे वैभवमाकनन्नेतुमे वाकुच्चुवानो।
एल्लिल निरन्नोरु एण्णयेप्पोले पोयुल्लिल निरञ्ञु ज्वलिक्कुन्नेडत्तुम।
× × ×
मन्त्रनाय निन्नतु तन्त्रनाय निन्नतुम।
निन्निच्चु काणुविन नमस्कन्ने।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २२६।

यह सब आपके रूप है। पुष्प की सुगन्धि के समान सब कही आप व्याप्त है। यह सोचकर मुझे बडा भय लगता है कि मृत्यु मुझे ग्रस लेगी। आप अपने चरणारविन्दो की धूलि मे हमे ससार-सागर से छुटकारा दीजिए।[1]

ऊपर कही हुई बातो से यह बात स्पष्ट है कि दोनो भाषाओ के भक्त-कवियो के दार्शनिक सिद्धान्त समान है। इस सारे ससार का कर्ता-धर्ता परब्रह्म ही है। उसीमे सब की सृष्टि हुई है। भिन्न-भिन्न नामो से उसे पुकारा जाता है। उसकी कृपा से भक्त अपना जन्म सफल कर सकता है। उस शक्ति की सतत आराधना से मोक्ष प्राप्त होता है। वह निर्गुण भी है और सगुण भी। भक्त की भावना के अनुसार वह प्रत्यक्ष होता है। वह आनन्द की मूर्ति है, नित्य है, एक है और करुणामूर्ति है। सक्षेप मे दोनो भाषाओ के कवियो ने ब्रह्म के सम्बन्ध में एक-से विचार व्यक्त किये है। भिन्नता केवल भाषा की है।

जीव-सम्बन्धी विचार

श्री शकराचार्य ने जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे लिखा है—जीव वास्तव मे सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है। केवल भ्रमवश वह अपने को सच्चिदानन्द से पृथक् समझता है। अपूर्ण प्रकाश रहने पर रस्सी मे जिस प्रकार साप का भ्रम होता है, शुक्ति मे चादी का भ्रम होता है, आख मे अगुली लगाने पर जिस प्रकार दो चन्द्रमाओ का भ्रम होता है, नौकारूढ होकर चलने पर वृक्षो के दौडने का भ्रम होता है, उसी प्रकार मोहग्रस्त हो जाने पर चैतन्य को अपने जीवत्व का भ्रम होता है। वास्तव मे जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नही है। यदि मायावश कोई भेद माना भी गया है तो वह उसी प्रकार का है जैसा समुद्र और लहरो में हुआ करता है।[2]

सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव मिथ्या है और जीव ब्रह्म से अलग नही।[3] श्री शकर के मायावाद के जीव मे और श्री वल्लभाचार्य के ब्रह्मवाद के जीव मे अन्तर यह है कि मायावाद मे जीव की अनेकता तथा-सत्त भ्रम और अविद्या के कारण प्रतिभासित होती है, वस्तुत न जीव है और न जगत्,

---

१ दहननायतु तपननायतु। पवननायतु परने ना।
अवनियायतु गगनमायतु अङ्किल वाणेडुम परने ना।
अरुणनायतु वरुणनायतु करुणनकातले परन नीये।
कुसुम तन्नुटे मण पोले निनु भुवनङ्ङलेट्टुम निरञ्ञुना।
मरणमुन्टिनि वरुवानेन्नोत्तु परने माटकुन्नु मनमग्यो।
परने नि नुट चरण प्पूम्पोटि पलप्पोटुमेङ्ङल तल तन्निल।
मरुवाटणमे पिरवि युटाक्कि मलरमानिन मारनु पुणरवोने।

—कृष्णगाथा, म० गनराज वमा, पृ० २८७, २८८।

२ श्री शकराचार्य—ले० राजराज वमा, पृ० २६, २७।

३ ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जावो ब्रह्मैव नापर।

सब जीव, भ्रम हरने पर, एक ब्रह्म ही हैं। वल्लभ के ब्रह्मवाद में जीवो की अनेकता तथा उनकी पृथक् सत्ता सत्य है। अवस्था-विशेष में पृथकता है और दूसरी अवस्था-विशेष मे जीव और ब्रह्म की एकता भी है। परन्तु दोनो अवस्थाए सत्य हे। शकरमत में जीव विभु है और वल्लभमत में जीव अणु है। शकरमत में जीवबुद्धि के सम्बन्ध से अनुरूप भासित होता है परन्तु वह विभु (व्यापक) ही है।[1] हिन्दी के अष्टछाप कृष्णभक्त कवियो ने वल्लभ के जीव-सम्बन्धी सिद्धान्तो को स्वीकार किया है।

[हिन्दी कवियो के विचार]

सूरदास—जीव और ईश्वर एक है। यही सूर ने स्वीकार किया है।[2] दूसरे एक स्थान पर सूर ने लिखा है कि देव, माया, प्रकृतिपुरुष वह सब 'गुपाल' के यानी ब्रह्म के अंश हैं।[3] फिर भी उन्होने लिखा है कि पहले एक ही ब्रह्म था, फिर अनेक रूप उससे पैदा हुए और यह सब अन्त में उसीमे लीन हो जाते हैं।[4]

जीव माया से आक्रान्त होने पर उसी माया में अपने ही अनेक प्रतिविम्ब देखता है। वस्तुत वह अपने में निहित सत्यस्वरूप 'अहं ब्रह्मास्मि' को नही पहचानता। यह भ्रम काच के बने मन्दिर मे खडे कुत्ते अथवा स्वप्न मे सोये मनुष्य के भ्रम के समान है। इस अनेकरूपता तथा सम्पूर्ण जगत् के प्रसार को वह केवल मिथ्या कल्पना मे देखता है। माया के आवरण को हटाकर यदि वह अपने सच्चे रूप को जान लेता है तो वह ब्रह्म ही हो जाता है। सूर के एक विशिष्ट पद[5] मे उक्त अर्थ हम निकाल सकते हैं। इस पद का सूक्ष्म रूप

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग दो।—ले० डा० गुप्त।

२ सहस्ररूप बहु रूप-रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।

—सूरसारावली, सूरसागर, वें प्रे., पृ० ३४।

३ सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृतिपुरुष श्री पतिनारायण, सब हैं अंश गुपाल।

—सूरसारावली, सूरसागर, वें प्रे, पृ० ३८।

४ पहले हौं ही हौं तब एक।
अमल अकल अज भेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक।
सो हौं एक अनेक भांति करि सोभित नाना भेष।
ता पाछे इन गुननि गाये ते हौं रहिहौं अवशेष।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें प्रे, पृ० ३६।

५ अपुनपौ आपुन ही विसर्यो।
जैसे स्वान काच मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूमि मर्यो।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो तस्कर अरि पकर्यो।
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै आपुन कूप पर्यो।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दसननि जाइ अर्यो।
मर्कट मूठ छाडि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्यो।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकर्यो।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें प्रे, पृ० ३८।

से अध्ययन करने पर ऐसा जान पडता है कि सूरदास शकर के सिद्धान्तो से प्रभावित हुए होगे किन्तु उनमे दूसरे पदो से इसकी तुलना करने पर हमें मालूम होगा कि शकर के सिद्धातो का प्रभाव उनपर नही पडा है।

वल्लभ-सपदाय के अनुसार जगत् और ससार दो भिन्न सत्ताए है। जगत् ब्रह्म का अश रूप है और जगत् सत्य भी है। ससार तो अज्ञान से उत्पन्न हुआ है और केवल भ्रम-मात्र है। जीव तो माया के वश मे पडकर अपना असली रूप भूल जाता है। इस अवस्था मे ही वह अनुभव करता है कि मै दुखी हू या सुखी हू। उसके कारण मुझे ऐसा कष्ट झेलना पडा इत्यादि। यही ससार काच का मदिर है और भ्रम का कारण है। इस भावना से प्रेरित होकर एक स्थान पर सूरदास लिखते है कि परमात्मा तो एक है। उसका अश है जीव, और वह सत्य है। शरीर तो अवस्था-भेद के अनुसार कभी स्थूल होता है और कभी दुर्बल होता है। माया मे पडकर शरीर दुख और सुख का अनुभव करता है। वास्तव मे जीव सग-रहित है। वह पानी मे कमल जैसा है। कर्म के प्रभाव से विविध योनियो मे जीव जन्म लेता है और फल भोगता है आत्मा जन्म-जरा-विहीन है। वह सब से अलिप्त रहता है।[1]

परमानन्ददास—आप भी सूर के समान जीव को ईश्वर का अश मानते है। वे गाते है कि अपने असि कमललोचन को भूलकर लोग ससार मे लगे रहते है और सासारिक सुख का अनुभव करने मे अपना सारा समय विताते है। योगी योग का अभ्यास करे, ज्ञानी ज्ञान की चिन्ता मे डूब जावे, कर्म निष्ठा मे लगे, लोग कर्म करते रहे किन्तु मै गोपाल का गुणगान करके सुख पाता रहूगा।[2]

---

१ राग बिलावल

तन स्थूल और दूबर होइ, परम आतमा को एक नहि होइ।
तनु मिथ्या छन भगुर जानो चेतन जीव सदा स्थिर मानो।
जीव को सुख दुख तनु सग होइ, होइ बिछोह तन के सग सोइ।
देह अभिमानी जीवहि जाने, ज्ञानी जीव अलिप्त करि माने॥

× × ×

कबहू सुर कबहू नर होइ, कबहू राव रक जिय सोइ।
जीव कर्म करि बहु तन पावै, अज्ञानी तिहि देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै, तन के भेद भेद नहि मानै।
आतम सदा अजन्म अविनासी, ताको देह मोह बड फासी॥

× × ×

ताते ज्ञानी मोह न करै, तनु कुटुम्ब मा हित परिहरै।
जब लग भजै न चरन मुरारी, तब लग होइ न भव जल पारी।

—सूरसागर, षष्ठ स्कध, वे० प्रे० पृ० ५०।

२ राग सारग

माई हौ अपने गोपालहि गाउ।
माई हो अपने गोपालहि गाउ।

नन्ददास—नन्ददास ने लिखा है कि जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है। इस पच मे जो कुछ है वह सब परमात्मा ही है। वह व्यक्त और अव्यक्त भी है। जड और तन्य सब परमात्मा का अश ही है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् तीनो गुणो से युक्त है वह। किंबहुना, सारा जगत् और सब कुछ ब्रह्ममय है।[1] एक स्थान पर उन्होने लिखा है श्वर काल, देश, कर्म आदि के परे है और जीव मायाजनित प्रलोभनो में पडकर पाप और ण्य के काम करता है और उसका फल-भोग करने के लिए ही सुख-दुःख आदि विकारो का नुभव उसे करना पडता है। इसीलिए वह विविध जन्म भी लेता है।[2] यहा ईश्वर और जीव का अन्तर नन्ददास ने दिखाया है।

ध्रुवदास—ध्रुवदास गाते है हरि को भूलकर जीव तुच्छ वस्तुओ मे मन लगाकर अपने जन्म को नष्ट करता है।[3] अपने मूल स्थान को प्राप्त करने का उपदेश वे व्यग्य रूप में देते है।

[मलयालम कवियो के विचार]

मलयालम के सारे भक्तकवि एक स्वर से उद्घोषित करते है कि जीवात्मा और परमात्मा में जरा भी भिन्नता नही है। परन्तु इस एकता को मलयालम के कुछ भक्तो ने अन्य प्रकार से स्थापित किया है जिसमें शकर के मायावाद की झलक है। प्रतिनिधि कवि

सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो, जोगी ते जोग।
कर्मठ होय ते कर्म वितारो जो भोगी ते भोग।

× × ×

अपने असि की सुरति तजी है, मागि लियो ममार।
परमानँद गोकुल मथुरा में उपज्यो यहै विचार।

—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, ले० दा० गुप्त, पृ० ४३२।

१ निपट निकट घट में जो अन्तरजामी आही।
विषै विदूषित इन्द्री पकरि सकै नहि ताही॥ ७२॥

—रासपचाध्यायी, पचम अध्याय, उदयनारायण तिवारी, पृ० ८८ तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० १८२, पाठ भेद से।

२ काल करम माया आधीन ते जीव बखाने, विधि निषेध अरु पाप-पुण्य तिनमें सब माने।
परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी, ते क्यों कहिये जीव सकल श्रुति शिवा निवासी।

—सिद्धपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १८४।

३ चौपाई

जीव दसा कछु इक सुनु भाई, हरिजस अमरस तजि विष खाई।
छिन भगुर यह देह न जानी, उलटी समुझि अमर ह्वै मानी।
घर घरनी के रँग यों राच्यौ, छिन छिन में नट कपि ज्यों नाच्यौ।
वय गई बीति जानि नहि जानी, जिमि सावन सरिता को पानी।

—कवि ध्रुवदास, पु० ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० २५०।

श्री एजुत्तच्छन ने लिखा है[1] कि परमात्मा सच्चिन्मय, जन्मरहित, जगत् का आधार और उसकी उत्पत्ति का कारण, सनातन और निर्विकारी है। वही माया से प्रेरित होकर जीवात्मा होता है। उसके अलावा उन दोनों में कोई अन्तर नहीं। जीव का अहंभाव जब दूर हो जाता है तो वही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा तो सुख-दुःख आदि-रहित है। जीव जब दुखी हो तो उसे सोचना चाहिए कि मैं सर्वव्यापी परब्रह्म हूँ। किसी प्रकार के दुःख का प्रभाव मुझ-पर नहीं पड़ सकता। विवेक के साथ यदि जीव विचार करे तो उसे परमात्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा।

सूरदास आदि ने लिखा है कि जीव और ईश्वर स्थिर हैं। मलयालम भाषा के कवियों ने जीव की स्थिरता पर विश्वास नहीं किया है। वे शंकर-मत से प्रभावित हैं और हिन्दी के कवि बहुधा वल्लभ-मत तथा निम्बार्क-मत से प्रभावित हैं।

एजुत्तच्छन एक स्थान पर ईश्वर की स्तुति करते हुए लिखते हैं—हे भगवन्, आप तो एक हैं किन्तु माया में पड़कर मुझ (जीवात्मा) को यही प्रतीति होती है कि आप मुझसे अलग हो गए हैं। मैं गहरे दुःख में पड़ गया हूँ। आप दया करके मुझे अपने मूल तत्त्व से मिलाइए।[2]

यहाँ कवि ने स्पष्ट लिखा है कि जीव की उत्पत्ति परब्रह्म से हुई है। माया में पड़ने के कारण कवि को बड़ा दुःख होता है। इसीलिए वे प्रार्थना करते हैं कि मुझे परब्रह्म से मिलाने की कृपा कीजिए। कवि प्रार्थना करते हैं कि हे चिन्मय ! अहंकार की भावना मेरे मन में न उत्पन्न होवे, यदि होवे तो 'सारा विश्व मैं हूँ' यह भावना होवे। इसलिए आप कृपा कीजिए।[3]

---

१ निस्नीदुमात्मा सच्चिन्मयनव्ययन सदा जन्मादि हीनन जगत्कारण परब्रह्मम्।
सव साक्षियाय सनातननाय मवात्मावाय निर्विकारियायुल्ल परमात्मावु नन्नेवु।

× × ×

जीवात्मावेन्नु परमात्मावेन्नु चोल्वतु केवलमल्लो माया कार्य हेतुवकलल्लो।
मायोपाधिकलिल मेवीट्टपोल चोल्लु जीवनाय श्रोन्ना आत्मावन्य परमात्मावोन्नेव।

—चिन्ता सन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २८।

तथा आत्माविनु संसार मय दुःख मेत्तुकयिल्ल येटडुमेन्नु बोधमुन्डाम।

२ ओन्नाय निन्नेयिह रन्टन्नु कण्टलविल।
उटायोरिन्टल वत मिटावल्ल मम।
पन्ट कयक्कुवन्वान निन कृपावलिक—
तुटाक एकल इह नारायणाय नमः।

—हरिनामकीर्तनम, पद सं० २, ले० एजुत्तच्छन।

३ आनन्द चिन्मय हर गोपिकारमण।

× × ×

तोन्नुन्नताकिन्नरिल आनिनेन वन्नि।
तोन्नेणमेवरद नारायणाय नमः।

—हरिनामकीर्तना, ले० एजुत्तच्छन।

दूसरे एक पद मे एजुत्तच्छन्न ने लिखा है—जब जीवात्मा को यह अनुभव होगा कि सारे चराचर का अवलम्ब अगोचर तथा बुद्धि से परे परमात्मा मे ही हू तो उस समय उसके आनन्दातिरेक का ठिकाना न रहेगा।[1]

कवि ने सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जीव पुन' जब परमात्मा में लीन होता है, तभी उसे यथार्थ मोक्ष प्राप्त होता है।

श्री एजुत्तच्छन ने चिन्तासन्तानम् नामक एक पुस्तक में लिखा है कि आत्मा, जीवात्मा, परमात्मा ये तीनो पर्यायवाची शब्द है। मान लीजिए कि देवदत्त नामक एक मनुष्य है। उसके पुत्र-पौत्र होते है। यद्यपि उसके पुत्र और पौत्र विविध नामो से पुकारे जाते है तो भी देवदत्त एक ही है। उसी प्रकार है आत्मा। आत्मा कभी मायावश में पडकर जीवात्मा होता है और स्वय दु ख झेलता है। परमात्मा पर दु ख का प्रभाव नही पड सकता। वह सब से परे है। जीव गुण-विशेषो को अपनाकर समझता है कि देह मे हू, यह धन मेरा है, यह मेरा शत्रु है, वह मेरा मित्र है। ऐसी मनोवृत्ति मे जब वह फस जाता है और यद्यपि जीव निर्मल है तो भी कर्म के वश में पडकर वह सब प्रकार के जन्म-क्लेशो को सहन करता है।[2]

जीवात्मा, परमात्मा और आत्मा एक ही है, इसे हिन्दी के अधिकाश कृष्णभक्त कवि स्वीकार करते है। मलयालम के सारे कृष्णभक्त कवि एजुत्तच्छन के उपर्युक्त विचारो से पूर्णरूप से सहमत है।

माया-सम्बन्धी विचार

वल्लभाचार्य ने लिखा है कि माया दो प्रकार की होती है। उसके नाम है—विद्या-

---

१ अर्क्कानिलादि वेलिवोन्के अहिय्कुमोरु।
कण्णिन्नु कण्णु मनमाकुन्न कण्णतिनु।
कण्णायिरुन्न पोरुल तानेन्नुरय्कुमल—
वानन्द मेन्नु हरि नारायणाय नम।

—हरिनामकीर्त्तनम्, पद स० ४, ले० एजुत्तच्छन।

२ आत्मा-जीवात्मा परमात्मावेन्नेव पलनाय् पर्कुन्ननेल्ला पर्यायनाममल्लो।
ओम्वन देवदत्तनवनु पुत्रनायिट्टोरुवनवनुटे पुत्रनायोरुवनुम।
रण्टु मन्नि देवदत्तन्कन्न निन्नुएटाक कोण्टु देवदत्तनु रण्टु नामटुल्ल चोल्ला।
पुत्रनु जनकनु पौत्रनु पितामहन पुत्र पौत्रन्माण्टामेन्नालिट्टुन्ने चोल्ला।
अच्छनु मुत्तच्छनु मिट्टने चोल्लाट्टुन्नु निश्चय मेंकिनोत्ता लोन्नल्लो देवदत्तन।
एन्नतु पोले परमात्मा वु आत्मावेन्नु पिन्ने जीवात्मावेन्नु मून्नायि च्चोल्लीट्टुन्न।
देवदत्तने प्पोल्लेयात्मावोन्नल्लिन्नालु जीवनेन्नाक्कि टु खमुण्टामक्का टुन्नु चेन्चिन।
हेयमायिरिप्पोरु देहनखड्ङलेल्लाम देहियाम आत्माविने स्पर्शिक्कुन्निल्लाकिन्।
निर्गुणनायिरुन्नाल मरिच्चारिकयाल अगुणङ्ङ्ने जीवन तनिक्कुल्लोन्नायिक।
देह मानेन्नु निनिच्चचोरो, कर्म्मङ्ङ्ने मोहियाय चोरो पोरुट्टविनानाकुन्नु जीवन।
निर्मलनेन्नालिन्नु कर्मबन्धन कोन्टु जन्मादि दु खङ्ङ्न्नु मन्ननुभविक्कुन्नु।

—चिन्तासन्तानम, पृ० ६, ७, कवि श्री एजुत्तच्छन।

माया और दूसरी अविद्या-माया।[1] इसी माया ने ही सारे प्रपच का निर्माण किया है। जीव इस माया की अधीनता में पडकर दुखी होता है। अविद्या-माया से जीव ससार मे लिप्त रहता है और विद्या-माया से ससार-सागर में जीव मुक्त हो जाता है। अविद्या-माया को आचार्यों ने अज्ञान, भ्रम, स्वप्न आदि कई नाम दिये हे।

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो ने माया को विविध रूप से चित्रित किया है। उन्होने लिखा है, माया जीव को अनेक प्रकार से नचाती है और जीव से भ्रम-पूर्ण ससार की सृष्टि कराकर उसीको दु खजाल में फसाती रहती है। माया से ग्रस्त जीवो की स्थिति के उन लोगो ने मार्मिक चित्र खीचे हे। माया अपने मोहक एव मायिक रूप द्वारा जीवात्मा को ममत्व-पाश में जकड देती है। यह वह ग्रन्थि है जो जीव को गृह, धन, पुत्र, कलत्र आदि के प्रेम में वाधे रहती है।

[हिन्दी के कवि]

सूरदास—सूर ने माया को अनेक वार मोहिनी, भुजगिनी, नटनी आदि के रूप मे चित्रित किया है। लोभ, मोह, काम, क्रोध, छल, कपट, दभ और पाखड आदि इसीके रूप हे। वे कहते हे—हे प्रभु, यह नटिनी माया मुझे अनेक नाच नचाती है। मुझे लोभ में डाल-कर नाना प्रकार का वेष रचाकर घर-घर घुमाती रहती है। हे प्रभु! तुमको भुलवाकर कई प्रकार के घृणित कार्य करने के लिए प्रेरणा देती है। मन को झूठी आशा दिखाकर मुझे भ्रम में डाल रही है और मुझे कुमार्ग पर उसी प्रकार ले जाती है जैसे कोई दूती सती-साध्वी वधू को वहकाकर पर-पुरुष से मिला देती है। हे भगवन्! आपके सिवा इस वचकी माया से मुझे वचाने वाला कोई दूसरा नही।[2]

सूर एक स्थान पर माया की भयकरता के सम्बन्ध मे आलकारिक भाषा में लिखते

---

१ विद्याविद्ये हरे शक्ती मायदैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दु खित्व चाप्यनीशता ॥ ३४ ॥
—ना० दा० नि० शास्त्रार्थ-प्रकरण, ज्ञानसागर बम्बई, पृ० ९९, १००।

२ राग केदार
विनती सुनौ दीन की चित दै कैसे तुव गुन गावै।
माया नटिनि लकुटि कर लीने कोटिक नाच नचावै।
दर दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वाग बनावै।
तुम से कपट करावति प्रभुजू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष तरगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपन में ज्यो सपति, त्यों दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै।
ज्यों दूती पर वधू भोरि कै, लै पर पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति, तुमही गति, तुम समान को पावै?
—सूरसागर, भाग १, पद स० ४२, सभा सस्करण।

हैं—अरे मन, तू सावधान क्यो नही होता ! माया रूपी भुजगिनी ने तुझे काट लिया है और विष नही उतरा है। जब गुरु कृष्ण, नाम रूपी गारुडी मत्र मेरे श्रवणो में फूकेंगे और कृष्ण के गान सुनाएगे उसी समय ही उसका विष उतरेगा। यह अज्ञान रूपी मूर्च्छा, ज्ञान-रूपी औषध से ही दूर हो सकेगी।[1]

ऐसा कोई भी इस दुनिया में नही पैदा हुआ जो माया के प्रवल प्रहार से घायल न हुआ हो। कई उदाहरण देकर सूर कहते हैं कि हे भगवन् ! तेरी माया ने किसको पथ-भ्रष्ट नही किया। इसीके कारण वरुण, नारद, सगर-पुत्र, शिव, दुर्योधन आदि को कई प्रकार की विपत्तिया झेलनी पडी हैं।[2]

अविद्या माया के प्रभाव मे यह जीव क्या-क्या करता है, यह सूर के शब्दो मे सुनिए। आशा की मृगमरीचिका में पडा हुआ मनुष्य वैकुण्ठनाथ की सेवा छोडकर नीच लोगो के सग सदा घूमता-फिरता है, जिन लोगो से अनिष्ट की सभावना होती है उनकी ही प्रशसा करता रहता है, धन के मद मे चूर होकर अभिमान तथा लोभ में पडकर श्याममनोहर की स्तुति किए विना सज्जनो की निन्दा करता है और सुखदायक प्रभु के चरणो की सेवा करने का विचार नही रखता।[3]

---

१ राग गूजरी

अजहू सावधान क्यों न होई।
माया विषम भुजगिनि को विष उतर्यौ नाहि न तोई।
कृष्ण सुमन्त्र जियावन मूरी जिन जन मरत जिवायो।
बारम्बार निकट स्रवननि ह्वै गुरु गारुडी सुनायो।
भौतिक देह जीव अभिमानी देखत ही दुख लायो।
कोउ कोउ उबर्यो साधु सगति जिन राम सजीवनि पायो।
जाग्यो मोह मयूर अति छूटै सुजस गीत के गाए।
सूर मिटै अज्ञान मूर्छा ज्ञान मूल के खाए।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३८।

२ राग केदारी

हरि तुव माया को न बिगोयौ।
सौ जोजन मरजाद सिंधु की, पल में राम बिलोयौ।
नारद मगन भये माया मे, ज्ञान बुद्धि बल खोयौ।

× × ×

सौ भैया दुरजोधन राजा, पल में गरद समोयौ।
सूरदास कचन अरु काचहि एकहि धगा पिरोयौ॥

—सूरसागर, पहला खड, पद न० ४३, सभा सस्करण।

३ राग बिलावल

यह आसा पापिनी दहै।
तजि सेवा बैकुण्ठनाथ की, नीच नरनि कै सग रहै।
जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा राय कहै।

परमानन्ददास—सूर के समान परमानन्ददास ने माया कितने प्रकार की होती है, उसके प्रभाव से क्या-क्या परिवर्तन होता है, आदि विषयो के बारे मे विशद रूप से नही लिखा है। उन्होने मन को समझाते हुए कहा है कि हे मन, बिना भक्ति किए पुराण-ग्रथो के अध्ययन से क्या प्रयोजन ! तूने काम, क्रोध आदि विकारो को नही छोडा और दूसरो की निन्दा मे लगा रहा। उदर-पूरण के लिए परधन छीना और सदा लौकिक सुख लूटने मे समय लगाया, तू साधुओ तथा कमललोचन की सेवा अभी तक न कर सका।[1]

नन्ददास—नन्ददास ने लिखा है कि माया सारे लोको की सृष्टि करती है।[2] परमहस लोगो का कहना है कि माया से ही इन्द्रिया, अहकार त्रिगुण आदि की सृष्टि हुई है।[3] भगवान् की माया असभावित बातो को सभावित करने वाली है तथा चतुर है।[4]

धन मद मूढनि, अभिमानिनि, मिलि लोभ लिये दुर्वचन सहै।
भई न कृपा स्यामसुन्दर की, अब कहा स्वारथ फिरत बहै।
सूरदास सब सुखदाता प्रभु गुन विचारि नहि चरन गहै॥

—सूरसागर, पहला खड, पद स० ५३, सभा सस्करण।

१ राग धनाश्री

रे मन सुन पुरान कहा कानों।
अनपावनी भक्ति न उपजी भूखे दान न दानों।
काम न बिसरयो क्रोध न बिसरयो लोभ न बिसरयो देवा।
परनिन्दा मुख ते नहि बिसरी निष्फल भई सब सेवा।
बाट परी घर मूसि परायो, पेट भरयो अपराधी।
परलोक जायगो ज्याते मूरख सोई अविद्या साधी।
चरन कमल अनुराग न उपज्यो भूत दया नहि पाली।
परमानन्द साधु सगति बिनु कथा पुनीत न चाली।

—अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, ले० और स० डा० गुप्त, पृ० ८०२।

२ लोक सृष्टि सिरजत यह माया, तुम तें दूरि सलमई काया।
हे सरवग्य अग्य जन मेरे जानै नहिन धर्म प्रभु केरे।

—दशम स्कध, भाषा, २८वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० [illegible]।

३ दश इन्द्रिय अरु अहकार महतत्त्व त्रिगुण मन।
यह सब माया कर विकार कहै परमहस गन।
सो माया जिन के अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व प्रभव, प्रतिपाल प्रलयकारक आयुस बस।

—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० [illegible]।

४ तब लीला कर कमल जोग माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर चातुरि अधरन रस जुरली।
जाकी धुनि ते अगम निगम प्रगटे बडनागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी, सब सुखसागर।

—रासपचाध्यायी प्रथम अध्याय, उदयनारायण तिवारी, पृ० [illegible] तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० [illegible], पाठ भेद से।

उद्धव की युक्तियो का खडन करती हुई गोपिया कहती है कि हे उद्धव ! तुमने कहा कि ईश्वर निर्गुण है, तो हम पूछती है कि जो गुण इस ससार में दिखाई पडते है वे कहा से आए ? बीज के बिना पेड कैसे निकल सकता है ? वास्तव मे ईश्वर सगुण है और उनके गुणो की छाया उनकी माया के दर्पण मे पड रही है। ईश्वरीय गुण और प्राकृत गुण क्यो भिन्न दीखते है ?—अविद्या माया के ससर्ग से। निर्मल जल के समान शुद्ध ईश्वरीय गुणो को, जो प्रकृति माया के माध्यम द्वारा व्यक्त होते है, अविद्या-माया की कीच ने गदा और मैला बना दिया है और इन्ही कलुषित गुणो को ससारी जन अपनाते है।[1]

हरिदास—स्वामी हरिदास उपदेश देते है—हे मन ! हरि का भजन करो। सब झूठ है। जीवन क्षणभगुर है। विविध प्रकार के माया जाल मे पडकर लोग भगवान् को भूल जाते है।[2]

[मलयालम के कवि]

एजुत्तच्छन—माया के सम्बन्ध मे मलयालम भाषा के कवि एजुत्तच्छन कहते है—जिस प्रकार पुष्प से सुगधि उत्पन्न होती है वैसे ही आत्मा से माया की उत्पत्ति होती है और उसमे लय भी होती है। जल से फेन होता है और उसीमे लीन होता है। जब जीव को परमात्मा का ज्ञान होगा तब माया की बातें समझ मे आ जाएगी, और यह अनुभव हो जाएगा कि ब्रह्म के सिवा और कोई वस्तु सत्य नही। वे आगे कहते है—माया दो प्रकार की है। एक शुद्ध माया, दूसरी मलिन माया। शुद्ध माया मोक्ष-प्राप्ति में सहायक रहती है। मलिन माया के प्रभाव मे जीव को भ्रम होता है, जैसे रज्जु को देखकर सर्प की प्रतीति होती है। जीव विचारता है कि मुझे आनद चाहिए और मेरा नाश न हो। मेरे पुत्र, मित्र, कलत्र पर किसी प्रकार की विपत्ति न आए। इस प्रकार की सकुचित मनोवृत्ति से पीडित वह जीव मरता है, फिर जन्म लेता है और फिर मरता है। इस तरह जन्म-मरण के भवर में वह पड जाता है। जीवात्मा और परमात्मा में जब एकता होती है तब माया का नाश होता है और

---

१ जो उनके गुन नाहि और गुन भये कहा ते।
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहो कहा ते।
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन बीच।
गुन ते गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच।
—भ्रमरगीत, नन्ददास शुक्ल, पृ० १०८, पाठ भेद से।

२ जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि।
दिवस चारि को हला भला तू कहा लेइगो लादि।
माया मद गुन मद जोबन मद, भूल्यो नगर बिवादि।
कहि हरिदास, लोभ चरपट भयो, काहे की लागै फिरादि ॥ ६ ॥
—कवि स्वामी हरिदास : व्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगी हरि, पृ० १०६।

परमानन्द की प्राप्ति होती है।[1]

पून्तानम—श्री पून्तानम ने अपनी 'ज्ञानप्पाना' नामक पुस्तक मे लिखा है कि माया के वश में पडकर लोग सारे काम करते है और उसमे लिप्त रहते हैं। ब्रह्मा से लेकर चीटी तक सब माया मे फसे रहते है। जीव माया के प्रभाव से कई जन्म लेने के बाद यदि वह शुभ कर्म करता रहे तो देवता बनता है और बुरे काम करने के कारण चाण्डाल के कुल मे पैदा होता है। सुर का असुर जन्म लेना और असुर का सुर जन्म लेना या वृक्ष का जन्म लेना आदि घटनाए सब माया-प्रेरित कर्म करने के कारण होती है। भगवान् की माया के लीला-विलास के सम्बन्ध मे भली भांति स्पष्ट कर सकना असम्भव है।[2]

हिन्दी के कवि सूरदास और परमानन्ददास आदि कवियो ने बताया है कि माया के भिन्न भिन्न रूप, अविद्या-माया और विद्या-माया ब्रह्म की प्रेरणा से सब कुछ करती है। अविद्या-माया जीव को बन्धन मे डालती है और ईश्वरकृपा से ही जीव को मोक्ष मिलता है। किन्तु एजुत्तच्छन आदि मलयालम भाषा के कवियो ने माया का वर्णन करते हुए लिखा है कि विद्या-माया से जीव शुद्ध होकर परमात्मा मे मिल जाता है। उस समय जीव तथा ब्रह्म मे कोई भिन्नता नही होगी। वल्लभ-मत से प्रभावित होकर सूर और नन्ददास ने लिखा है कि अविद्या का नाश होने पर भी जीवत्व और जगत् का नाश नही होता, जीव अलग होकर सत्य-रूप में स्थित रहता है। अत हम यह कह सकते है कि हिन्दी के कवि

---

१ पेरक्कु परिमल पुष्पत्तिलुण्टावण्णम परमात्माविन्कल निन्नुण्टामेन्नरि केटो।
आद्यन्तम ब्रह्मत्तिनु मायटक्कुमिल्ल नून आद्यन तान तन्ने माया रूपियायिरिक्कयाल।
तन्कल निन्नुण्टावुन्नु लयिक्कुन्नतु तन्कल पन्क मेघ्ङ्गिने जल तकलेन्नतुपोले।
तोयत्तिल निन्नु फेन मुण्टाकुन्नतु पिन्ने तोयत्तिल तन्ने लयिच्चाटुन्नतुपोले।
परमेश्वरन तन्कल निन्नुण्टाम महामाया त परमात्मनि तन्ने लयिक्कुमरिञ्जल।
परमात्मावे जीवात्माविनालरियुम्पोल परयाकुन्न माया कायवु अरिञ्जटाम।
परजावयोरैक्य उण्टाय्वन्नाटुन्नेर परमेश्वरनो तिञ्ञन्य मिल्लोन्नु मेन्नु।
वरुन्ननेर मटा मायय तत्वकार्यवु परमात्मनि लयिच्चानन्द चेपिच्चाटु।
—चिन्तामन्नानम्, ले० श्रा एजुत्तच्छन, पृ० ५, ६।

२ सुर लोकत्तिल निन्नोर जीवन पोय।
नर लोके मर्त्यसुरनावुन्नु।
चण्ट कर्मङ्ङु ल चैय्तवन चात्तुपोन।
चण्डाल कलत्तिन्कल पिरक्कुन्नु।
असुरन्मार सुरन्मारायीडुन्नु।
अमरन्मार मरङ्ङु लायीडुन्नु।
अज नत्तु गनमाय पिरक्कुन्नु।
गज नत्तुनुमायीटुन्नु।
—पून्तानम की कृतियां, स० प० के [illegible]।

वल्लभ-मत, निम्वार्क-मत तथा माध्व-मत से और मलयालम के कवि शकर-मत से प्रभावित है।

मोक्ष-सम्बन्धी विचार

मोक्ष की भावना सभी आस्तिक सम्प्रदायो में पाई जाती है। कभी न कभी मनुष्य एक ऐसी स्थिति की अवश्य इच्छा करने लगता है जिसे प्राप्त करके राग-द्वेष, स्पर्श, सघर्ष तथा उलझन-झझटो से उसे छुटकारा मिल सके। वेद ने इसे परम पद, अमृत तथा तृतीय धाम कहा है। यह स्थिति गीता के शब्दो में परागति तथा परम धाम है। इस अवस्था को प्राप्त करने के विषय में दोनो भाषाओ के कवियो ने कई पद लिखे है। सूर, एजुत्तच्छन, पून्तानम जैसे कवियो ने मानसिक प्रबोधन, ससार की अनित्यता प्रबल माया में पडकर सुख पाने के लिए आतुर होकर मनुष्य का प्रयत्न करना आदि बातो का वर्णन करके मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश दिया है। दोनो भाषाओ के कवियो के विचार समान है।

[हिन्दी के कवि]

सूरदास—सूरदास का कथन है कि गोपाल-गुणगान मे जो आनन्द मिलता है वह जप-तप करने या अनेक तीर्थों में जाकर स्नान करने मे नहीं मिलेगा। श्री कृष्ण के चरणारविन्दो की पूजा के समान तीन लोको का सुख क्या चीज है? अन्त में वे कहते है कि हरि का नाम लेने से भव-सागर से मुक्ति मिलेगी।[1]

जिस समय आत्मज्ञान या मोक्ष प्राप्त हो जाता है उस समय के अनुभव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द नही मिलते। सूर जैसे भक्तो ने कहा है कि आत्मसुख केवल अनुभव किया जा सकता है। जैसे गूगा मिठाई का स्वाद नही बता सकता, वैसे ही है मोक्ष-सुख की बात।[2] मन को 'चकई' बनाकर सूर कहते है—री चकई, तू उस सरोवर के निकट

---

१ राग सारंग

जो सुख होत गुपालहि गाए।
सो सुख नहिं जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाए।
दिये लेत नहि चारि पदारथ चरण कमल चित लाए।
तीनि लोक तृण सम करि लेखत नन्द नँदन उर आए।
वंशीवट वृन्दावन जमुना तजि बैकुण्ठ को जाए।
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव चलि आए।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३५।

तथा

सत्य भजे नँदलाल कौं सो सब मुक्ति पावैं।
सूरदास हरिनाम लिये दुख निकट न आवै।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३५।

२. आपुन पौ आपुन ही मैं पायौ।

× × ×

जाकर रह, जहा प्रेम में वियोग नही, जहा भ्रम रूपी निशा होती नही और वेद भ्रमर वनकर गुजार नही करते फिरते, जहा किसी प्रकार का भय नही और जहा सदैव अमृत रस का पान किया जा सकता है। वहा भगवान् राधा के साथ विहार करते रहते हैं। उस सरोवर के सामने विषय रूपी पोखर का क्या स्थान है?[1] यह पद तो सालोक्य भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। उसके बारे में वे फिर कहते हैं—वह स्थान ऐसा है जहा जाने के बाद इस दु ख-मय ससार में आने की आवश्यकता नही। वहा सदा आनन्द ही आनन्द होता रहता है।[2]

इस प्रकार श्री कृष्ण के लीलाधाम में पहुचने की बात कहकर सूर ने सालोक्य-मुक्ति की अवस्था का चित्रण किया है। श्री कृष्ण के निकट रहने से जो अनिर्वचनीय आनन्द की स्थिति होती है उसे समझाकर सूर ने सामीप्य-मुक्ति का परिचय दिया है। फिर ग्वाल के समान कान्ह के पास रहकर उनकी आज्ञा के अनुसार जीवन-यापन करने की बात का वर्णन सूर ने कई पदो में किया है। सारूप्य-मुक्ति के सबध मे लिखकर सूर ने सायुज्य-मुक्ति का रूप भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है।[3]

इसके अतिरिक्त कृष्ण के शरीर का अग और उनके रस, रूप, अक्षय धाम वृन्दावन

सूरदास समुझे की यह गति मन ही मन मुसिकायौ।
कहि न जाय या सुख की महिमा ज्यौं गूगो गुर खायौ।
—सूरसागर, चतुर्थ स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ५१।

१ चकई री, चलि चरन सरोवर, जहा न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नहि कबहू, सोइ सायर सुख जोग।
जहा सनक सिव हम, मीन मुनि, नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहि ससि डर गुजत निगम सुवास।
जिहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाडि कुबुद्धि विहगम, इहा कहा रहि कीजै।
लछमी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।
—सूरसागर, सभा सस्करण, पृ० ११२।

२ चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहि।
× × ×
सूर क्यौं नहिं चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहिं।
—सूरसागर, सभा सस्करण, पृ० ११२।

३ धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ।
धन्य स्याम वृन्दावन कौ सुख, सत मया ते जान्यौ।
जो रस रास रग हरि कान्यौ, वेद नहीं ठहरान्यौ।
सुर नर मुनि मोहित भए सबही, सिवहु समाधि भुलान्यौ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहूँ पत्यान्यौ।
—सूरसागर पहला खंड, पद स० १७०१, सभा सस्करण।

का अग बन जाने से जीवन सरल हो जाएगा, इस विचार से प्रार्थना करते है कि हे भगवन्, आप मुझे वृन्दावन की धूल बना दीजिए। मै आपसे यह वरदान मागता हू कि वृन्दावन की वृक्ष, लता, गाय, ग्वाल आदि में से कोई एक बना देने की कृपा कीजिए।[1] भगवान् मे तादात्म्य प्राप्त करने की भी प्रार्थना वे अनेक बार करते है और उनको यह अनुभव होता है कि उनके उपास्यदेव उनके रोम-रोम में व्याप्त है और समस्त जगत् उन्हे ईश्वरमय ही दिखाई पडता है। पानी की लहरो के समान भक्त और भगवान् में एकीकरण होता है।[2]

एक स्थान पर सूर लिखते है कि गोपिका लोक-लाज, पिता, माता, पति, मानापमान सब कुछ छोड श्री कृष्ण मे तल्लीन रहती है। वे सर्वथा कृष्ण की चिन्ता में डूबी रहती है। जैसे नदी सागर में मिल जाती है, उसी प्रकार मन से वे श्री कृष्ण में लीन रहती है।[3] एक गोपिका गोरस बेचने के लिए निकलती है और श्री कृष्ण की चिन्ता में इतनी तल्लीन रहती है कि 'दही लेहुरी' कहने के बदले में 'गोपाल लेहुरी' कहने लगती है।[4] गोपिका की अटूट भक्ति का इससे अधिक सुन्दर चित्रण कहा मिल सकता है ? विरह की दशा में श्री कृष्ण के साथ गोपियो की तल्लीनता का वर्णन सूरदास ने किया है। वे कहती है—"हे आलि, श्री कृष्ण के विरह में हमें कही अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

गीता में लिखा है, 'हे अर्जुन, जो मुझे जिस प्रकार से प्राप्त होते है, भजते है, मै

---

१ करहु मोहि ब्रज रेणु देहु वृन्दावन वासा।
मागौं यहै प्रसाद और नहि मेरे आसा।
जोई भावै सो करहु लता सलिल द्रुम गेहु।
ग्वाल गाइ को भृत्य करौ मनो सत्य व्रत एहु।

—सूरसागर दशम स्कन्ध, पूर्वार्द्ध, वे प्रे, पृ० १५८।

२ अखिन में बसे जियरे में बसै हियरे में बसत निसि दिन प्यारो।
मन में बसै तन में बसै रसना में बसै अग-अग में बसत नन्दवारो।
सुधि में बसै बुधि हू में बसै उरजन में बसत पिय प्रेम दुलारो।
सूर स्याम बनहू में बसत घरहू में बसत सग ज्यों जल तरगन होत न्यारो।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० २६६।

३ लोक सकुच कुल कानि तजी।
जैसे नदी सिधु कौं धावै, वैसेहि स्याम भजी।
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकु न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहि लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नहीं लोक मरजादा, हरि कै रग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि, चूनौ हरदी ज्यों रग रंजी॥

—सूरसागर, पहला खड, पद स० २२४६, सभा सस्करण।

४ गोरस को निज नाम भुलायो।
लेहु लेहु कोउ गोपालहि गलिन गलिन यह सोर लगायो॥

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० २५७।

भी उन्हे उसी प्रकार से भजता हू।[1] सूरदास के अनेक पदो में यही आशय मिलता है। वे कहते है कि *श्री कृष्ण ब्रजवनिताओ की इच्छा के अनुसार विविध लीलाए करते है* और जिस भाव से वे कृष्ण को भजती है उसी प्रकार का फल भगवान् उनको देते है।[2] सालोक्य और सामीप्य मुक्ति का महत्त्व दिखाकर सूर ने निर्गुण भक्तो की हसी उडाई है। ऐसे प्रसग उद्धव-गोपी-सवाद में मिलते है। गोपिया पूछती है--"तुम्हारे निर्गुण भगवान् कहा के रहने वाले है ? श्याममनोहर की सेवा से हमे सालोक्य सामीप्य आदि मुक्तिया मिल गई है। तुम्हारे ज्ञानोपदेशो का कोई भी प्रभाव हमपर नही पड सकता। हमारा मन सदा कान्ह के ध्यान में स्थिर रहता है और हमें प्रत्येक वस्तु कृष्णमय ही दीख पडती है।

परमानन्ददास--परमानन्ददास की कविताओ से ज्ञात होता है कि उनको सालोक्य आदि मुक्तियो की अवस्थाओ का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। वे कहते है--हे भाई, मुझे हरि से अनन्य प्रेम है। जब से भगवान् के दर्शन मुझे मिले तब से घरबार की चिन्ताओ मे मैं मुक्त हो गया हू, लोक-लाज, मानापमान आदि से मेरा मन ज़रा भी प्रभावित न होगा। सारा भ्रम मिट गया है। जिस प्रकार नदी सागर से मिल जाती है उसी प्रकार मेरा मन भगवान् कृष्ण में रम गया है।[3] मोक्ष की चरमावस्था का वर्णन कवि ने यहा किया है। दूसरे एक

---

१ ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।

—गीता, अध्याय ४, श्लोक ११।

२ *ऊधौ सूधै नैंकु निहारौ।*

हम अबलनि कौ सिखवन आए, सुन्यौ सयान तिहारौ।
निरगुन कह्यौ कहा कहियत है, तुम निरगुन अति भारी।
सेवत सुलभ स्याम सुन्दर कौं, मुक्ति लही हम चारी।
हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ, रहति समीप सदाई।
सो तजि कहत और को औरै, तुम अलि बड़े अदाई।
हम मूरख तुम बडे चतुर हौ, बहुत कहा अब कहिए।
वे ही काज फिरत भटकन कत, अब मारग निज गहिए।
तुम अज्ञान कतहि उपदेसत, ज्ञान रूप हमहीं।
निसि दिन ध्यान सूर प्रभु कौ अलि, देखत जित तितहीं।

—*सूरसागर, दूसरा खंड, पद सं० ४५[illegible], सभा संस्करण।*

३ मेरे भाई हरि नागर सों नेह।

× × ×

अग अग बरयो निपुन यदुनन्दन स्याम बरन तन देह।
जब ते दृष्टि परे नँद नन्दन तब ते बिसर्यो गेह।
कोउ बन्दो कोउ निन्दो मन को गयो सन्देह।
सरिता सिन्धु मिल परमानन्द भयो एक रस गेह।

—डा० गुप्त जी के परमानन्ददास-पदसग्रह, पद न० [illegible], अष्टछाप
ले० डा० गुप्त, पृ० [illegible]।

स्थान पर परमानन्ददास गोपी बनकर गाते हैं। "मैं नन्दलाल के बिना नही रह सकती। मन, वाणी, काया से मैं सब कुछ उनपर निछावर करती हू। मदनमोहन की सेवा से जो आनन्द मिलता है वह आनन्द और कहा मिलेगा।"[1]

नन्ददास—नन्ददास का विश्वास है कि यह शरीर पाप-पुण्य के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। अत कर्म, फल अथवा प्रारब्ध का भोग हमें करना ही पडेगा। कमलनैन की भक्ति मे प्रारब्ध का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। उसके लिए भगवान् की कृपा चाहिए। अत पर-ब्रह्म मूर्ति श्रीकृष्ण के गुण-गान तथा उनकी चिन्ता में डूबकर मुक्ति पाना ही श्रेयस्कर है। तुरन्त कृष्ण का ध्यान मन में लगाकर मस्त हो जाओ।[2]

मीराबाई—मीराबाई भी सूर और परमानन्ददास के समान सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्तिया पाना चाहती है। वे कहती हैं कि हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन बिना किए एक घडी भी मैं नही रह सकती। तुम मेरे जीवन हो। तुम्हारे विरह में तडप-तडपकर मैं छटपटाती हू। तुम्हारे बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।[3] सद्गुरु की कृपा से मीरा को अक्षय सम्पत्ति मिली। यह अक्षय सम्पत्ति मोक्ष है। उसके सम्बन्ध में मीरा इस प्रकार कहती हैं—सद्गुरु की कृपा से सब कुछ खोकर मैंने जनम-जनम पूजी पाई और वह ऐसी पूजी है

---

१ हौं नन्दलाल बिना न रहौं।
मनसा वाचा और कर्मना हित की तोसौं कहौं।
जो कोऊ कछु करो सिर ऊपर सो हौं सबै सहौं।
सदा समीप रहौं गिरधर के सुन्दर बदन चहौं।
यह तन अर्पन हरि को कीनों वह सुख कहा लहौं।
परमानन्द मदन मोहन के चरन सरोज गहौं।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह, ले० डा० गुप्त, पृ० ४८०।

२ बहुरि कहत यह गुन मय देह, पाप पुण्य प्रारब्ध के गेह।
× × ×
कोटि तुरग सुख छिन में लिये, मगन मकान विदा कर दिये॥
—दशम स्कन्ध, २६वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पाठ भेद से, पृ० ३२२।
तजि तजि निशि धन गुन मय देह जाइ मिली करि परम सनेह।
× × ×
नन्द के श्रेय करना छिन तेही, दिक्षित आत्मा परम सनेही॥
—दशम स्कन्ध, भाषा, २६वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० ३२२।

३ घडी एक नहि आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासू जीवण होय।
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं, मेरो दरद न जाणै कोय।
× × ×
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होय।
—मीराबाई की पदावली • स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३३।

जो खच करने पर भी कम नही होती, चोर भी उसे नही ले सकता।[1] जब से मीरा ने गिर-धरनागर के दर्शन किए तब से उनकी आखो मे कृष्ण बस गए। उस स्थिति मे भक्त और भगवान् मे एकीकरण हो जाता है। वे कहती है—जब से नदलाल की दृष्टि पडी, लोक-परलोक मुझे कुछ भी नही जचता। कृष्ण का मोरमुकुट, केसर का तिलक, कपोलो पर कुडल और अलक की झलक, जादू भरी चितवन यह सब मुझे आकर्षित करते है। चाहे कोई किसी प्रकार की निन्दा करे मै श्री कृष्ण के बिना एक पल भी नही रह सकती।[2] सालोक्य और सामीप्य का यह सुन्दर उदाहरण है। श्री कृष्ण की भक्ति मे वे इतनी तल्लीन हुई कि जगत् के प्रत्येक पदार्थ मे वे श्री कृष्ण का दर्शन करती है। सारा प्रपच भी उन्हे श्रीकृष्णमय ही दिखाई पडता है। उन्होने कहा है 'साप का पिटारा' राणा ने भेजा मुझे वह 'सालिगराम' दिखाई पडा। ज़हर का प्याला पीयूष, शूलो की शय्या फूलो की सेज प्रतीत हुई। मै अपने 'नागर' के प्रेम मे मस्त फिरती हू।[3] यही भक्त और भगवान की अभि-न्नता है।

रसखान—रसिक रसखान भक्ति मे तत्कालीन होकर कहते है—'चाहे मनुष्य, जानवर, पत्थर और या वृक्ष का जन्म मिले यदि उसको कृष्ण का सत्सग हो जाए तो ससार-सागर से मुक्ति मिलेगी।[4] कृष्ण भगवान् की सगति के सामने उनको अष्ट सिद्धिया, नव

१ मीराबाई की पदावली।

२ जब से मोहि नन्द नन्दन, दृष्टि पड्यो माई।
तब से परलोक लोक, कछु न सोहाई।
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै।
× × ×
भला कहो कोई बुरा कहो मैं सब लई सीस चढ़ाई।
मीरा कहै प्रभु गिरधर के बिनि पल भरि रह्यो न जाई।
—मीराबाई की पदावली। सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० [illegible]।

३ मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥ टेक ॥
साप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुवाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।
—मीराबाई की पदावली। सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० [illegible]।

४ मानुष हौं, तो वही रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

निधिया सब निस्सार हैं। कोटिक कलधौत के धाम भी करील के कुजो पर निछावर करना वे पसन्द करते हैं।[1]

[मलयालम के कवि]

हम पहले कह चुके हैं कि हिन्दी के कवि वल्लभमत से प्रभावित रहे हैं, सूर, परमानन्द, नददास आदि तो वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी ही थे और मीरा निम्बार्क की थी। मलयालम के कवियो ने शकर के विचारो का अनुगमन किया है। मोक्ष-सम्बन्धी विचारो में भी मलयालम के कवि शकरमत के अनुयायी जान पडते हैं। सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि मुक्तियो की अवस्था के सम्बन्ध में सारे कवियो का मत एक-सा है।

एजुत्तच्छन—मलयालम के प्रतिनिधि कवि एजुत्तच्छन के विचार भी शंकराचार्य के विचारो से मिलते-जुलते हैं। उनके मत में ससार-जनित अज्ञान के दूर होने पर ही मोक्ष-प्राप्ति होती है। अत वे उपदेश देते हैं—परमात्मा और जीवात्मा एक ही हैं। सागर और घडे का जल जैसे एक ही होता है। सत्य असत्य दो अलग-अलग अवस्थाएं नहीं हैं। केवल सत्य ही सब जगह दिखाई देता है। जब चिन्तनशक्ति उत्पन्न हो जाती है तब यह अनुभव होने लगता है कि 'जीव नित्य है और 'मैं' परमात्मा ही हूं। उस समय सायुज्य मुक्ति मिलेगी।[2] वे आगे चलकर मुक्ति प्राप्त करने का उपाय भी बताते हैं। काम, क्रोध,

---

जो पसु हौं, तौ कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ,
जो धर्यौ कर छत्र पुरदर कारन।
जो खग हौं, तो बसेरो करौं,
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥
—कवि रसखान ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २१०।

१ या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहू पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
इन आंखिन सों रसखानि कबौं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील की कुजन ऊपर वारौं।
—कवि रसखान : ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २१०, २११।

२ परमात्मावु तन्ने जीवात्मा वा कुन्नतु।
वारिधि घटोदरवारियु पोले तन्ने।
सत्यवु असत्यवु रण्डल्ल।
[illegible]
× × ×
[illegible]
[illegible]
—चिन्तारत्नम्, ले० एडुत्तच्छन्, पृ० १६।

लोभ आदि मायाजनित विकारो में पडकर जब जीव दुखी हो जाता है तो उससे छुटकारा पाने के लिए हरि-कथा श्रवण करनी चाहिए। उससे मन निर्मल हो जाएगा और अपने-आप ज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। उसी समय जीव मुक्ति की अवस्था का अनुभव करने लगेगा अर्थात् उसे यह अनुभव होगा कि परब्रह्म मैं ही हू।[1] वे फिर कहते हैं—मुक्ति पाने के लिए ईश्वर-सम्बन्धी कथाओ के श्रवण के साथ-साथ सज्जनो की सगति भी आवश्यक है। मनुष्य जो काम करे वह ईश्वर पर अर्पण करके करे। चौथा उपाय है, सर्वदा ईश्वर के नाम का जप करना और उसका ध्यान करना। इस प्रकार आचरण करते रहने से मन अपने-आप शुद्ध हो जाएगा। मन शुद्धि से विवेक उत्पन्न होगा और दु ख सदैव के लिए मिट जाएगा।[2]

श्री एजुत्तच्छन के मत मे सालोक्य, सामीप्य और सारूप मुक्तिया नित्य नही है, केवल सायुज्य-मुक्ति ही नित्य है। जब तक शरीर रहता है तभी तक प्रथम तीन मुक्तियो का अनुभव होता है। वे कहते है कि इन तीनो मुक्तियो का अनुभव जिनको मिला है वे सुरो के समान है। सुरगण अपने पुण्य के प्रभाव से बहुत दिनो तक बडे आनद से जीवन व्यतीत करते है और पुण्य के क्षीण होने पर उनको फिर जन्म लेना पडता है। वैसे ही सालोक्य, सामीप्य और सारूप मुक्तियो का अनुभव करने वाले एजुत्तच्छन की भाषा मे कहा जाए तो 'जीव-मुक्तो' को दुबारा जन्म लेना पडेगा। अत सायुज्य-मुक्ति पाने वाले ही वास्तव मे मुक्त कहे जा सकते है।[3]

---

१ भगवल कथकले आवोल केट्टु विचारिच्चु।

× × ×

विज्ञान मुण्टायवन्नालज्ञान मकन्नोटु।
अज्ञान नशिक्कु पोल ज्ञानवु प्रकाशिक्कु।

—चिन्ता-सन्तानम्, पृ० २२।

२ मुन्पिनालुण्टयवेण्ट नालु साधन—
मतिल साधुक्कलोटुल्ल सगम मोन्नु।

× × ×

ब्रह्मार्पणं मेन्नु चिन्निच्चु चेय्कोटेणमेन्नुतु मोन्नु।
नामङ्डल पल विध मादर जपिक्कयु।
राम देवने हृदियानिच्चु रमिक्कयु।
निम्मल मायवन्नाटु मनम्म मतिनाले।

—चिन्तासन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० ३२।

३ सालोक्यादिकल मून्नु मुक्तियु जीवन मुक्ति।
नालामिताण विदेहानन्द नित्यायन्द।
जीवन मुक्तिकल मून्नु नित्यमाय्वरुन्नील।
देह कैनकोण्टिट्टुल्ल मुक्तिकलनाकयाल।

× × ×

मर्त्यर अमर्त्यर ोन्नु पोल जीवन मुक्तर।

—चिन्ता-सन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० ३३।

उस सायुज्य-मुक्ति की व्यवस्था के बारे में कवि ने इस प्रकार लिखा है—जिसकी प्राप्ति से दूसरी किसी वस्तु को पाने की इच्छा नहीं होती है, जिसके दर्शन करने में दूसरा कोई दर्शनीय नही प्रतप्त होता, जिसको पाने से जन्म और जरादि दु ख हमेशा के लिए मिट जाते है, वही है सायुज्य मुक्ति या ब्रह्मानद।

पून्तानम नंपुतिरि—आपने अपने पदो द्वारा भगवान् कृष्ण का दर्शन करने तथा उनके समीप रहने की इच्छा प्रकट की है। वे कहते हैं—हे कृष्ण! वैजयन्तीमाला से सुशोभित आपकी छाती, रक्त के समान लाल आपके अधर, सुन्दर हाथ-पैर और मनोहर क्रीडाए, यह सब मैं देख सकू।[1] मोरमुकुट सिर पर धारण किए हुए ग्वालो के बीच में श्री कृष्ण खेलते है और कभी-कभी नटखट क्रीडाए करते है। कभी व्रजवनिताओ के वस्त्रो को लेकर दूर जाकर खेलते है। ऐसे श्री कृष्ण को देखने के लिए मैं बहुत दिनो से प्रार्थना करता आ रहा हू।[2] ऐसे कई पदो में श्री कृष्ण को देखने की उत्कट इच्छा कवि ने प्रकट की है। कवि अपने मन को समझाकर कहता है—जो कुछ तुझे मिलेगा उससे तू तृप्त हो जा। परिवर्तनो को देखकर चचल मत हो। समझ ले कि सब ईश्वरमय है और कभी उदासीन न हो।[3]

पून्तानम, हिन्दी के परमानददास जैसे भक्त कवियो के समान ही सासारिक जनो की मानसिक अवस्था का विश्लेषण करके अन्त में अपने उपास्यदेव कृष्ण से प्रार्थना करते है—

लोग भूमि, धन और स्त्री आदि पाने की इच्छा से व्याकुल होकर तरह-तरह के कामो में लगे रहते है परन्तु किसीको तेरी आशा नही। हे मेरे प्यारे कान्ह! आप मेरे मन

---

१ मन्वाटिक्कुरु कुन्निमानक्न मुरुकिकन पून्कनित्याडियु।
चेन्नोरिक्कु विरोधिया अधरवु तृक्कैकल् तृक्कालकल्।
चान्चाटि मकलियु चमञ्ञ वडिवु पून्तायायलिल पूवियु।
चेन्नोटे तिग्गेनि रण्टमणयचाम्माक कण्टावु ञान।

—पून्तानन की कृतिया, स० वासुदेवन मूस्सत पृ० ==।

२ पीलिवसमणुमणिञ्ञु पिन्नर नटुवे कण्णन कलिक्कुन्नतु।
गोनक्केटुमकल मेलक्कु मेलनुदिन चेन्नेगे काट्टुन्नतु।
वालभरामिनिमार विजुत्तुकिन वारि क्कोण्टोण्टिक्कुन्नतु।
नालेवरयिलसि पोएटु काण्मानिनु ञानेन्ने कोनिम्कुल्कुवान।

—पून्तानन की कृतिया, स० मूस्सत, पृ० ६२।

३ नन्निन्नु पोल्क नन्न वन्नतु कोण्टु निर।
निन्निरस नेरट गम्भिर मोरोन्नु दरटान।
गन्निन्नु पोपगनन्मनरकुम्ने।

पून्तानन की कृतिया, स० मूस्सत पृ०, १४२।

को शान्ति प्रदान कर दीजिए।[1] सोते-जागते और काम-वासना मे लिप्त रहते वे अपना जीवन बिताते हैं। हे मन, तू नन्दकिशोर के चरणारविन्दो में आश्रय ले।[2]

चेरुश्शेरी नपूतिरि—आपने भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है—हे भगवन्, आप सर्वव्यापी हैं। किन्तु अचरज की बात है कि लोग आपकी महिमा बिना जाने अन्धे होकर आपकी खोज में इधर-उधर घूमते-फिरते हैं।[3] यह शरीर तो नौ द्वार वाले मदिर के समान है। जब यह मदिर जीर्ण हो जाता है तो आत्मा दूसरे नये मदिर मे प्रवेश करती है। इस आवागमन से बचने के लिए हे भगवन्! आप अपने चरणो मे आश्रय दें।[4]

एक अन्य स्थल पर चेरुश्शेरी नपूतिरि ससार-सागर की भयकरता का सुन्दर वर्णन करते हुए ईश्वर के चरणारविन्दो मे आश्रय प्राप्त करने के लिए आतुर होकर प्रार्थना करते हैं—"हे भगवन्! लोग ससार रूपी महासागर में पुत्र-मित्र रूपी नक्रो के पजे में पडे व्याकुल होते हैं और कभी स्त्री रूपी भवर में पडे कराहते हैं। वे उस भवसागर में डूबते उतराते और रोते हैं। आपके चरण-सरोरुह के अलावा दूसरा कोई आलव नही।[5] सालोक्य,

---

१ मून्नाशयालु मदनाशयालुं।
पोन्नाशयालु मरुकुन्नु लोक।
निन्नाश कण्टीलोरुक्कं मय्यो।
कण्णा ग्मे नलकुक मानस में।
—पून्तानम की कृतिया, स० मूम्मन, पृ० /३५।

२ स्वापत्तिनालुमयि कामवशालुमोरो।
न्नयायत्तमाय अनुकरिप्पतु कम्म मेतल।
तापिन्छमजरि योटोत्त कलेबर नी।
भाविच्चु कोल्कजकिल नन्द कुमारकरय।
—पून्तानम का कृतिया, स० मूम्मन, पृ० /३५।

३ युल्लिलनिरन्नु जगत्तिलेङ्ङु।
सन्तत निन्नोर निन्नेथु काणाते।
यन्धराय्प्पोकातोरा रिप्पारिल ?
× × ×
—कृष्णगाथा, स० राजराज वमा, पृ० २/६।

४ ओनपतु वातिलुल्लन्पल तनिल पु—
वकपु पोजिञ्ञु वमिन्चु चेम्मे।
× × ×
कृपिट्टुन्नेन् चेम्मे नपुराने।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वमा, पृ० [illegible]।

५ जनन महाबुधि तन नटुवे वा—
णानिशमुजनकुम जन निवहङ्ङल।
सुतु जन म[illegible]न निगमारा।
मुनलव[illegible]न वायिल पा[illegible]नु चा[illegible]नु।

सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य मुक्ति पाने के लिए कवि ने कई पदो मे बडे सरस ढग से प्रार्थनाए की है।

साराश यह है कि मलयालम के सारे भक्तकवियो ने हिन्दी के कवियो के समान मुक्ति पाने के लिए समान रूप से ईश्वर से प्रार्थना की है। यद्यपि विभिन्न शब्दो में तथा रीतियो मे उन्होने यही भाव प्रकट किया है तो भी प्राप्य स्थान एक ही है। इन सबो ने कृष्ण के चरणो मे श्रद्धा और भक्ति पैदा करने के लिए दास्य, सख्य, कान्ता और वात्सल्य भाव से ओतप्रोत होकर कविताए रची हैं। सभी ने ससार की भयकरता और सत्सग का महत्त्व आदि के बारे में तन्मयतापूर्वक लिखा है। श्री एजुत्तच्छन को छोडकर शेष सारे कवियो ने सालोक्य आदि मुक्तियो को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। श्री एजुत्तच्छन ने सालोक्य आदि मुक्तियो के साथ विदेह-मुक्ति की अवस्था का भी सजीव वर्णन दिया है। वे भक्त, ज्ञानी और कवि भी हैं। भक्ति के साथ-साथ ज्ञान-सम्बन्धी बातें भी उन्होने लिखी है।

रास-सम्बन्धी विचार

'रास' शब्द एकान्त आनद को सूचित करता है। श्रीधरस्वामी की राय है कि जब कई नर्तकिया एकसाथ नृत्य करती है, उस नृत्य-विशेष को 'रास' नाम दिया जाता है।[1] श्री जीवगोस्वामी ने लिखा है कि नट के गले में हाथ डालकर मडलाकार होकर नृत्य करना रास कहलाता है।[2] इसी प्रकार बहुत से विद्वानो ने रास की ऐसी ही परिभाषा दी है। सक्षेप में कह सकते है कि श्याम मनोहर, दिव्य देहधारी कृष्ण के साथ भक्त गोपियो ने जो नृत्यलीलाए की हैं उसीका नाम रास है।

कृष्णभक्त कवियों ने इस रासक्रीडा पर अनेक सरस रचनाए रची है। हिन्दी में सूरदास, नन्ददास और मलयालम मे चेरुश्शेरी नपूतिरि प्रमुख माने जाते हैं। सारे भक्त-कवियो ने एक स्वर से उद्घोषित किया है कि कृष्ण ने गोपियो के साथ जो रासक्रीडा की वह गोपियो की भक्ति का कलात्मक रूप है।

जायकलायुल्लावर्तत्तिल ।
पोयिच्चेन्न टनाणु फेणु ।
× × ×
चरण सरोज मोचिच्चु हरे ते।
शरण नैव नमुक्कु पुराने।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१६।

[1] बहुनर्तकियुक्तो नृत्यविशेषो रास ।

—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय से, पृ० ४६७।

[2] नटैर्गृहीतकण्ठेन अन्योन्यात्तकरश्रियाम्।
नर्तकीना भवेद् रासो मण्डलीभूय नर्तन ।

—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय से, पृ० ४६७।

[हिन्दी के कवि]

[illegible]— [illegible]—रास, कृष्ण और उन दोनो मे रमण करने वाला [illegible] नित्य हैं। वेदोक्ति है कि रस नित्य और अद्भुत है। उसका वर्णन [illegible]।

[illegible]—[illegible] लिखा है—हरि का रस अद्भुत है। रास के लिए उन्होंने वंशी बजाई [illegible] सारा विश्व दंग रह गया।[2] रास के आनन्द का वर्णन करने में [illegible] असमर्थ दिखाई पड़ते हैं। रासक्रीडा की महिमा के बारे मे सूर लिखते हैं—[illegible] ऐसे लोग समझ सकते हैं जिनकी बुद्धि चंचल न हो, और जो सच्चे भक्त हो और ईश्वर जिनपर प्रसन्न हो।[3] इस रस का प्रभाव इतना अद्भुत है कि इसके प्रभाव से नारद जैसे मुनीश्वर विद्यारूपिणी सरस्वतीदेवी और योगेश्वर शिवजी तक आत्मविस्मृत हो गए। विष्णु भगवान् इस रस को पाने के लिए तरसते रहते हैं और अपनी स्त्री लक्ष्मीदेवी से कहते हैं, "सुनो मेरी प्यारी, आज कृष्ण गोपियो के साथ रास कर रहे हैं। उसके आनन्द मे सारी व्रजवनिताए मग्न हैं। वैसा सुख हमारे भाग्य में कहा ?[4]

---

१ नित्य रास रस नित्य-नित्य गोपी जन वल्लभ।
नित्य निगम जो कहत नित्य नवतन अति दुल्लभ।
यह अद्भुत रस रास कहत कछु कहि नहि आवै।
सेस सहस मुख गावै अजहू पार न पावै।

—रासपचाध्यायी पाचवा अध्याय तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० १८२ पाठ भेद से, पृ० ८८।

२ आजु हरि अद्भुत रास उपायौ।
एकहि सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायौ।
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।

— सूरसागर, पहला खंड, पद सं० १७५८, सभा संस्करण।

३ रास रस रीति नहिं बरनि आवै।
कहा वैसी बुद्धि कहा वह मन लहौं कहा इह चित्त जिय भ्रम भुलावै।
जो कहौं कौन मानै अगम निगम जो कृपा बिन नहीं या रसहि पावै।
भाव सों भजै, बिन भाव मेंए नहीं, भावही मोह भाव यह बसावै।
यहै निज मन्त्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दम्पति भजन सार गाऊ।
यहै मागौं बार-बार सूर के नैन दुवौं रहैं नर देह पाऊ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, [illegible], पृ० [illegible]।

४ रास रस मुरली ही ते जान्यो।
× × ×
यह अपार रस रास उपायो सुन्यो न देख्यो नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने स्याम अधर रस बैन।
कहत रमा सौ सुनि-सुनि प्यारी विहरत है बन स्याम।
सूर कहा हम कौं वैसो सुख जो बिलसति ब्रज बाम।

—सूरसागर, पहला खंड, पद सं० [illegible], सभा संस्करण।

रास-रस के संबंध में नन्ददास का मत है कि यह सब रसों का निचोड़ है, सकल शास्त्रों के सिद्धान्तों का साराश है। यह महारस है। इसकी महिमा का वर्णन जो भी सुन लेते हैं वे कृष्ण के परम भक्त बन जाते हैं।[1]

हितहरिवंश—रासक्रीडा के अवसर पर हितहरिवंश लिखते हैं—मोहन ने वंशी बजाई तो व्रज की युवतियां दौड़ी हुई आईं और उनके साथ रास-क्रीडा की। सबको मुरलीधर ने रस-सिंधु में डुबा दिया। आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। इन्द्र ने दुन्दुभि बजाई।[2]

[मलयालम के कवि]

मलयालम भाषा के एक अज्ञात कवि ने रासक्रीडा के अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है—रास देखकर चन्द्रमा और नक्षत्र आदि ग्रह स्तब्ध होकर स्थिर हो गए। सिद्ध, गंधर्व, देव और मुनि सभी उस अद्भुत आनंदसागर में गोते खाने लगे। वे सब श्याम मनोहर की लीला देखकर मुग्ध हो गए। कृष्ण और गोपियां इस प्रकार रासक्रीडा करने लगी जैसे बादल और बिजली आकाश में परस्पर विहार करते हैं। ऐसे मनोहर गोपीरमण कृष्ण मेरी रक्षा करें।[3]

---

१ अवधि भूत गुन रूप नाद तरजन जहँ होई।
सब रस को नियमि (नितसि) रास रस कहिये सोई।
—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १८४। पाठ भेद से।

हो मज्जन गन रसिक, मरम मनके यह सुनिए।
सुनि सुनि पुनि आनन्द हुदै हैं नीके गुनिए।
सकल शास्त्र सिद्धान्त परम एकान्त महारस।
जाके रचक सुनत गुनत श्री कृष्ण होत बस।
—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १९५।

२ आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन वेनु बजायो।
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिनु मंडल मध्य स्यामघन सारँग राग जमायो।
ताल मृदग उपग मुरज डफ मिलि रससिंधु बढ़ायो।
विविध विसद वृषभान नंदिनी अंग सुगन्ध दिखायो।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनग नचायो।
तातायेइ तायेई धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो।
सकल उदार नृपति चूड़ामणि सुख वारिद बरसायो।
परिरंभन चुम्बन आलिंगन उचित जुवति जन पायो।
बरसत कुसुम मुदित नभनायक इन्द्र निसान बजायो।
'हितहरिवंश' रसिक राधापति जस वितान जग छायो।
—कविताकौमुदी, पहला भाग, स० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० २२२–२२३।

३ लोक नायके मनि मोहन कण्णु मेने मोहन्नु मग्नुन्न चन्द्रनु नरवसुदेन
शिगा पुराहु नगल तरलिमियार

इस रास-क्रीडा में भाग लेने वाली गोपियो में से कुछ तो कृष्ण को अपना पतिदेव मानकर उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर उनके साथ चली। कुछ 'परकीया' या जार-भाव से उनके निकट चली। रात के समय दूसरे पुरुष के पास जाना मर्यादा के विरुद्ध कार्य है। यह बात सर्वविदित है। कृष्ण ने भी उन्हे अपने साथ चलने से मना किया। इस प्रसग पर सूर, नन्ददास, चेरुश्शेरी, नपूतिरि, एजुत्तच्छन आदि कवियो ने विस्तार से लिखा है। सूर लिखते है—कृष्ण का प्रश्न सुनकर उत्तर मे गोपिकाओ ने जो कहा उससे हम समझ सकते है कि वे जीवन्मुक्त योगियो के समान है। कर्मो का प्रभाव उनपर नही पडेगा। ईश्वर की महिमा के अतिरिक्त वे कुछ नही जानती और उनके कृपा-कटाक्ष के लिए तरसती रहती है। घर, पुत्र, मित्र, माता-पिता और पतिदेव आदि से उनको कोई सरोकार नही।[1]

श्री चेरुश्शेरी नम्पूतिरि ने लिखा है कि कृष्ण से ऐसा अप्रत्याशित प्रश्न सुनते ही गोपियो के चेहरो पर उदासीनता छा गई। मुह फुलाकर वे ज्यो त्यो खडी रही। पृथ्वी पर पैर के नख से रेखा खीचते हुए उन्होने कृष्ण से कहा—'आपके मुरली गान से जो प्रभाव हमने देखा वह इसके पहिले नही देखा। आम्रवृक्षो पर नीम का फल देखते समय सचमुच सीमातीत आश्चर्य होता है। वैसे ही इस समय हमे बडा अचरज मालूम पडता है। लौटने के नाम से हम व्याकुल होती है। आपने हमे आकृष्ट कर लिया।' इस प्रकार कहकर आखो मे आसू भरकर वे कराहने लगी। तब कृष्ण ने उनको अपने मधुर वार्तालाप द्वारा शान्त किया।[2] फिर गोपियो के साथ उन्होने रासक्रीडा की, जिसका चित्र कई पदो में कवि ने

विश्व मोहन कन्टु कुटिवच्चिरिक्कुन्नु
सिद्धन्मार गन्धर्वन्मार देवकल मुनि कनु
मत्सुतमितु कण्टिट्टानन्द तन्निल मुडिड

× ×

कारमुकिल वण्णरमाकामिनमार कन्नि
च्चोटिनाज रवरेन्टे नल्लतु वन्नेण

—कृष्णलीला—म० शकर मेनोन, पृ० [illegible]।

१ तुमहि विमुख धृग धृग नर नारि।
हम तो यह जानति तुव महिमा, को सुनिये गिरधारि।
साची प्रीति करी हम तुम सौं अन्तर्यामी जाने।
गृह जन की नहि पीर हमारे वृथा धर्म हम टाने।
पाप पुण्य दोउ परित्यागे अब जो होइ सु होइ।
आस निरास सूर के स्वामी, ऐसी करै न कोई।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० [illegible]।

२ कण्णन तानिटिटने चोनोम नेरत्तु
पेण्णुटडनेल्लावर्कुं वण्णु नागन
वोड्डुन्न रण्टु निटड यिरुन्नोम
कतुरा [illegible] पोतन [illegible]

खीचा है। अत में कवि ने लिखा है कि रात के समय तीन प्रहर तक कृष्ण ने गोपियो के साथ रासक्रीडा करके उन्हे अमर सुख दे दिया। रात के समय यद्यपि गोपिया अपने घरो से सवधियो की अनुमति के बिना चली गई थी तो भी लौटते समय गोपों ने एक शब्द भी नही कहा। कवि कहते है कि भगवान् की माया ने सबको मोहित कर दिया और गोपो को यह प्रतीत हुआ कि उनकी स्त्रिया वहा से कही नही गई थी।[1]

सारे कृष्णभक्त कवियो ने रासक्रीडा को दिव्य रूप दे दिया है। कुछ विद्वानो का मत है कि रासक्रीडा-सवधी रचनाए शृगार काव्य के सुन्दर उदाहरण है। उन लोगो की राय है कि सूर, नन्ददास और चेरुश्शेरी नम्पूतिरि आदि कवियो की कविताए पढने पर पाठक के मन में कामवासना जागरित हो उठती है। गोपियो का आधी रात के समय श्री कृष्ण के निकट गमन करने का वर्णन अश्लील है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो के आचार्य श्री वल्लभ ने इन तर्को का खण्डन यो किया—'यद्यपि श्रीकृष्ण के रास में काम की क्रियाए है तो भी उनमें कामवासना जरा भी नही। वे तो निष्काम हैं। उनके द्वारा गोपियो की कामपूर्ति का शमन हुआ। यदि उनमें लौकिक काम होता तो सासारिक भावना उत्पन्न होती। उन दोनो में कामवासना का अभाव है। इस रासक्रीडा से गोपियो को मुक्ति की सिद्धि हुई है। उसके अलावा मर्यादा-भग की समस्या भी यहा नही आती है। जो रासक्रीडा के बारे में पढता है, सुनता है और मनन करता है वह निष्काम हो जाता है।[2]

दीनन पूण्डुल्लोरानन तन्नेयु
दीर्घमाय वार्त्तड्टु ताज्ञि पिन्ने
× ×
पेवल पाटि निरादिच्चु पोम्न
पावकलाविकनान वाक्कु कोण्टे
—कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० ६८, ६९।

[1] कान्मार तन्निले पाम्न्वर पोयनकान्न्मार्क्कोक्कोमे तोन्नीनिन्ले
वल्लविमारेल्ला। वल्लभन्मारेत्तनमल्लत्तरवकोन्क तन्निलाक्कि
मेल्लवे पूण्ड निन्नुल्लिलेसुखोरु अल्ले नोक्कित्तेलिन्नु निन्नार।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०३।

[2] क्रिया सर्वापि सैवात्र पर कामो न विद्यते।
तासा कामस्य सम्पूर्ति निष्कामा इति तास्तथा॥
यागेन पूर्ति काम निष्काम स्यात् न सशय।
भगो न कापि मर्यादा भगा मोक्षफलापि च॥
अत स्मरन् त्रैलोको निष्काम सर्वदा भवेत्।
भगवच्चरित सर्व यतो निष्कामकं यतेे॥
[illegible] गामस्य नोत्पत्ति [illegible] सुखन [illegible]॥
—भागवत की सुबोधिनी टीका [illegible] की कारिका।

रास के नैतिक औचित्य को सिद्ध करने के लिए सूरदास ने बडी चतुरता से काम लिया है। उन्होने रासक्रीडा के अवसर पर राधा और कृष्ण का विवाह वडे धूमधाम से करा दिया है। इस प्रकार राधा को स्वकीया नायिका पत्नी के रूप में चित्रित करके सूर ने अपने काव्य को व्यभिचार-भाव से मुक्त कर दिया है।

मलयालम के कवियो ने भी इन्ही विचारो से मिलते-जुलते तर्क अपने गीतो में दिए है। उनके गीतो का सार यह है—गोपस्त्रिया कई जन्मो से भगवान् के रूप मे कृष्ण की सेवा करती आ रही थी। पूर्वजन्म में वे वडे महर्षियो का जन्म लेती थी। द्वापर युग में श्री कृष्ण का कोमल रूप देखकर 'स्वरूपानन्द' मुक्ति पाने की इच्छा से वृन्दावन में उन्होने जन्म लिया है। राधा जैसी गोपिया गत जन्म मे उत्कृष्ट सिद्धिया प्राप्त कर चुकी थी। पद्मपुराण मे लिखा गया है कि गोपस्त्रिया पूर्वजन्म में देवता, महर्षि और श्रुतिया आदि का जन्म-धारण कर चुकी थी और उनकी चरम भक्ति के फलस्वरूप भगवान् ने उनके साथ रास-क्रीडा की।[1]

एजुत्तच्छन कृष्ण-मुख से कहलाते है—मेरी प्यारी गोपियो! आप लोगो की भक्ति की परीक्षा करने के लिए ही मै अप्रत्यक्ष हो गया। कुछ लोग सोचेगे, मै वडा स्त्री-लपट हू और तुम भी शायद सोचती होगी कि मै स्त्रियो का सेवक हू। लेकिन याद रखो, मुझे भक्त के समान प्रिय और कोई नही। जो मेरी सच्ची भक्ति करता है मै उसका दास हू।[2]

१ पुरा महर्षयस्सर्वे दण्डकारण्यवासिन।
द्रष्ट्वा राम हरि तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले।
हरि सप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्।

देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्य कथञ्चन।
—पद्मपुराण मे उद्धरणकर्ता शकर मेनोन, पुस्तक [illegible], पृ० [illegible]।

२ निराव भक्तियोटेन्ने मनिक्कुन
मत्यवान्मारकु दासन् आनरिञ्ञालुम।
× ×
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
— [illegible], प्रकाशन [illegible], पृ [illegible]

चौथा परिच्छेद

भक्ति

भक्ति का लक्षण—

तुलनात्मक भक्ति सर्वव्यापी ईश्वर के प्रति जो अगाध प्रेम होता है उसे भक्ति-सूत्रकार शांडिल्य 'भक्ति' कहते हैं।[1] भक्ति से मन का अन्धकार दूर होता है। मानव-हृदय ईश्वरीय ध्यान में प्रवृत्त होकर उतने समय के लिए सांसारिक यातनाओ को भूल जाता है। भक्ति से मन शुद्ध होता है, और असत् प्रवृत्तियो का दमन होता है। भक्त के मन में एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। ईश्वर के स्मरण से ही भक्त की हृत्तन्त्री का तार आनन्द से झंकृत हो उठता है। भजन-भाव मे आत्मविभोर होकर वह अपने ऐहिक अस्तित्व को भूल जाता है। ऐसी आनन्ददायिनी भक्ति को आलम्बन मानकर अनेक कृष्ण-भक्त कवियो ने काव्य-रचना की है।

हिन्दी मे कृष्णभक्त कवियो ने अपने उपास्यदेव कृष्ण की लीलाओ का वात्सल्य, सख्य, दास्य और कान्ताभाव से वर्णन किया है। उन्होंने सर्वत्र कृष्ण के ईश्वरत्व की महत्ता को ध्यान मे रखा। कृष्ण की बालचेष्टाओ और अन्य भावो का स्वाभाविक चित्रण करते समय उनके ईश्वरत्व को प्रकट करना नही भूलते। विनय के पदो में तो ईश्वर की महत्ता का प्रत्यक्ष वर्णन है। अन्य प्रसगो में भी ईश्वर के लौकिक चरित्रो के पाठ मे भक्त भ्रम में न पड़ जाए, इसीलिए वे बार-बार स्मरण कराते हैं कि बालवत् तथा किशोरवत् लीला करने वाले कृष्ण भगवान् ही हैं, मनुष्य नही।

मलयालम के कवियो ने अपने आराध्यदेव श्री कृष्ण को देवकी-वसुदेव तथा यशोदा-नन्द के नन्दन के रूप में चित्रित किया है। उनके कृष्ण गोपियो के प्रेमी, साधु-जनरक्षक, कंसादि आततायियो के संहारक, राजनीतिक क्षेत्र में कुशल कार्यकर्ता, समाजोद्धारक, योगेश्वर, और सर्वशास्त्र-पारगत हैं। उनका कृष्ण-चरितचित्रण सर्वांगीण कहा जा सकता है।

भक्ति की महिमा—

दोनो भाषाओ के कवियो ने भगवान् कृष्ण की महिमा के वर्णन के साथ-साथ भक्ति

---

[1] सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥२॥

—शांडिल्य-भक्ति-सूत्र, भक्ति-चन्द्रिका, स० श्री गोपीनाथ कविराज, पृ० २।

कोई नही करेगा।[1] ध्रुवदास मन को संबोधित करके कहते है—रे मन, अन्य विचार छोडकर राधाकृष्ण मे प्रेम कर।[2] राधावल्लभ के भक्तो की चरणसेवा कर।[3] इस संसार की असारता का सुन्दर वर्णन करते हुए मीराबाई ने लिखा है—अरे मन, जो कुछ तू देखता है वह सब नष्ट हो जाएगा। काशी जैसे तीर्थस्थानो में जाने से क्या लाभ ? अपने सुन्दर शरीर पर गर्व करने की आवश्यकता नही। ये सब मिट्टी में मिल जाएगे। अत 'अविनाशी' भगवान् के चरणारविन्दो की सेवा कर ले।"[4]

मलयालम के कवि श्री चेरुश्शेरी नंपूतिरि ने लिखा है—हे भगवन् ! आपकी चरण-सेवा इस विस्तृत भवसागर की नाव है।[5] भक्ताग्रेसर एजुत्तच्छन का भक्ति की महिमा के संबध में कथन है—यदि मानव का जन्म मिला तो गर्व करके बैठे रहना नही चाहिए। ज्ञानी होने के लिए भगवान् का भजन करो। तब प्रारब्ध-कर्म की जड उखड जाएगी,

---

१ आसावरी

हरि के नाम को आलस, क्यों करत है रे, काल फिरत साँधे।
हीरा बहुत जवाहर संचे, कहा भयो हस्ती पर बाँधे॥
दर कुबेर कछू नहि जानत, चढ्यो फिरत है काँधे।
कहि हरिदास, कछू न चलत जब आवत अन्त की आँधे॥

—कवि स्वामी हरिदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगी हरि, पृ० १२७।

२ सोरठा

रसिकन के रहु संग, रे मन, आन विचार तजि।
नैननि को लै रंग, मिथुन रूप रस रंग करि॥

—ले० ध्रुवदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगी हरि, पृ० २०४।

३ जिनके हिय में बसत है राधा वल्लभ लाल।
तिनकी पद रज लेहु ध्रुव, पिवत रहौ सब काल॥

—ले० ध्रुवदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगी हरि, पृ० २०५।

४ राग छायानट

भज मन चरण कमल अविनासी॥ टेक॥
जेताइ दीसै धरण गगन बिच, ते ताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी।
इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्या उठ जासी॥

—मीराबाई की पदावली, प० स० १९५, स० परशुराम चतुर्वेदी।

५ पेरगाकुन्नोरु दुरित वारिधि
तरण मेटुन्नतिनु करुतेन्नु।
भवतिनु निन्नुटे चरण सेवया,
नरियोर तोणि वरुन्नेरु॥

—[illegible]गाथा स० [illegible] शर्मा, पृ० २१८।

नन्ददास का कथन है कि ईश्वर के निर्गुण रूप के सम्बन्ध मे समझना और उन्हे प्राप्त करना सरल नही। परन्तु भक्तो के कष्टो को दूर करने के लिए अवतार लेने वाले सगुणेश्वर हमें बहुत प्रिय लगते हैं। यदि हम उनकी भक्ति करें तो वे अवश्य ही प्रसन्न हो जाएगे।[1]

दोनो भाषाओ के सभी भक्त-कवियो के मत में भगवान् समान रूप से पतितपावन और करुणा-निधान हैं, फिर भी अपनी भावना और रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न भक्तो ने उनमें कुछ विशेष गुणो का आरोप किया है। किसीने उनकी दीन-बन्धुता और भक्त-वत्सलता देखी तो किसीने उनकी लीला-प्रियता, किसीने उनके शील और शक्ति की प्रशसा की तो किसीने उनके सौन्दर्य की।

सुदामा-चरित के रचयिता नरोत्तमदास ने अपने भगवान् को करुणा-सागर कहा है। कृष्ण ने सुदामा के पैर धोने के लिए परात भर पानी लाकर रखा। धोने के लिए जब उन्होने सुदामा का पैर उठाया तो देखा कि बिवाइयो मे सारा पैर फट रहा है और एक-दो नही, सैकडो काटे इसमें चुभ गए हैं। पैरो की इस दुर्दशा से कृष्ण ने सुदामा के कष्टो का अनुमान कर लिया और बहुत रोकर उन्होने कहा—हे मित्र, तुमने इतने कष्ट और दुख से अपने दिन काटे, परन्तु यहा नही आए, न जाने कहा कष्ट भोगते रहे। इतना कहकर और सुदामा की दीन दशा देखकर कृष्ण इतना रोए कि परात का पानी छूने की उन्हे आवश्यकता ही नही पडी। आखो से बही हुई जलधारा से ही उन्होने सुदामा के पैर धो डाले।[2]

मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥ ६ ॥

—मीरा की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३।

१ अस विधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहि समान दुर्धर नहि आन।

× × ×

जामे रूप न रेख न क्रिया, तिहि लालच अवलबे हिया।
सहजहि सून्य समाधि लगाइ, लेत है तामें तुम सों पाइ।
पै यह सगुण सरूप तुम्हारो, यो मन खोयो जात हमारो।
ये अद्भुत अवतार जु लेत, विश्वहि प्रतिपालन के हेत।
नाम रूप गुन कर्म अनन्त, गनत गनत कोऊ लहै न अन्त।

× × ×

ताते तब भगतिहि अनुसरै, तुम्हरी कृपा मनाया करै।
कब मो पर नँद नन्दन ढरिहै मधुर कटाच्छ चितै रस भरिहै।

— दशम स्कन्ध, अध्याय २४, नन्ददास शुक्ल पृ० २८२।

२ ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दसा, करुणा करि के करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहि नैनन के जल सों पग धोये ॥ ४३॥

—सुदामाचरित स० ललिताप्रसाद शुक्ल।

इस छन्द मे कवि ने श्री कृष्ण की भक्तवत्सलता के साथ-साथ उनकी मित्रता के अपूर्व आदर्श का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

मलयालम के कवि श्री कुचन नम्पार, मीरा के समान कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का वर्णन करके उनकी प्रार्थना करते हैं—घने बादलो के समान जिनके बाल है, जिन्होने अपने बालो पर मोरपख लगाए है, मालती पुष्पों से गुथी हुई माला जिनके ललाट पर शोभित है, जिनकी मनोहर आखें है, जिनके ओष्ठ लाल है, कमलरिपु के समान जिनका चेहरा है, जिनका गला शख सदृश है, जिनकी छाती पर तुलसीदलो से युक्त वनमाला है, जिनके सुन्दर हाथ हैं, ऐसे कृष्ण की मै वन्दना करता हू।[1]

पून्तानम नपूतिरि अपनी भावना के अनुसार कृष्ण की सगुण मूर्ति की प्रशसा करते है—हे भगवान्, आपके पैर वृन्दावन के लिए भूषण, रिपुसमूह को भयदाता, दूध-मक्खन आदि की चोरी करने में सहायक, क्रूर आत्माओ के लिए घातक, वडे पापो का नाश करने वाले, वनिताओ के आनन्ददाता तथा मजुल ध्वनि से युक्त है। आपके ऐसे चरण मेरी मति का दोष दूर कर दें।[2]

भक्ति के नौ साधन

प्राचीन आचार्यों ने भक्ति के नौ साधन बताए हैं। उनका क्रम इस प्रकार है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[3] ईश्वर-सबधी कथाओ का श्रवण करके उनका कीर्तन करना चाहिए। फिर उनका स्मरण करके

---

१ पोलिकलिटचेन्नोर निम्मुदिनील घनालि समानम्।
मालनि वननल्लिक मालकल फाल विशेषक जालम्॥
लोल नयन लोलकल गण्ड फल्ल मण्ल शोभा-
नालव् अरुणाधर बिम्बमुमकोट्ट शरण शम्भो॥
अम्बुज रिपु बिम्ब समान मुखाम्बुजमधिक मनोभम।
कम्बु सदृश कण्ठमकुठ भुजान्तर वानि वल्लापम्॥
तदिर तुलसी वनमालयवनि मन्नि पॉन्नुन रत्नम्।
कमल करम्म्ल करङ्ङु मनरोट्टु शमो शमो॥
२ वृन्दावनिकोर भूषण रिपुकुलानामिन्नारो भीषणम्।
पंपाल वेण्णु तस्कित्कुमोमय मति क्रूरमना पेषणम्॥
वन् पापतिनु शोषण वनितमारानन्द सम्पोषणम्।
नियादन मनि दूषणं हरत मे मरोर मनोभरम॥२४॥
—पून्तानम् की कृति, न० मूल्य पृ० १४।
३. श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥
—भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय ५ श्लोक २३-२४।

ईश्वर के प्रति मन मे श्रद्धा पैदा करनी चाहिए। पादसेवन, अर्चन और वन्दना द्वारा विश्वास को दृढ करना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन द्वारा रागात्मिका भक्ति का सच्चा आनन्द भक्त पा सकेगा। भागवत तथा अन्य शास्त्रो मे वर्णित नवधा भक्ति का क्रम यही है।

श्रवण—

भगवान् के नाम, चरित, गुण आदि के सबध मे सुनना और सुनाना 'श्रवण' भक्ति है।[1] गुरु तथा महात्माओ के वचनो को श्रद्धापूर्वक सुनने से 'श्रवण' भक्ति बढती है।

दोनो भाषाओ के कृष्ण-भक्त कवियो ने अपनी वाणी का सदुपयोग अपने आराध्य-देव के नाम और लीला के सुनने और सुनाने मे किया है। उन्होने अपनी रचनाओ के अन्त मे कृष्ण की कथाओ के श्रवण से क्या लाभ होगा?—उसके सम्बन्ध मे भी लिखा है। श्रवण-भक्ति का प्रभाव सूर के शब्दो मे सुनिए—

१ जो यह लीला सुनै सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।[2]
२ जो पदस्तुति सुनै सुनावै, सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।[3]
३ शुक जैसे वेद अस्तुति गाई, तैसे ही मै कहि समुझाई।
४ सूर कह्यो श्री मुख उच्चार, कहै सुनै सो तरै भवपार।[4]

परमानन्ददास कहते है—जो कृष्ण-चरित को नही सुनते और उनका गुणगान नही करते, उनका जीवन व्यर्थ है। इहलोक और परलोक मे जो सुख मे रहना चाहते है उन्हे दीनानाथ का चरित्र अवश्य सुनना चाहिए। हरि-कथा-श्रवण मात्र से ही मनुष्य का जन्म सफल होता है।[5]

नन्ददास का मत है कि कृष्णकथा का श्रवण-रस परमानन्द मे डुबाने वाला पीयूष-रस है।[6]

१ श्रवण नामचरितगुणादीना श्रुतिर्भवेत्।
—श्री हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, पूर्वविभाग, लहरी २, श्लोक ३२।

२ सूरसागर, नवम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ६६।

३ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ५६२।

४ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ५६२।

५ राग सारग

कृष्ण कथा बिनु कृष्ण नाम बिनु कृष्ण भगति बिनु दिवस जात।
ते प्रानी कहै को जीवन नहीं मुख वदत कृष्ण की बात।
श्रवनन कथा स्याम सुन्दर की रामकृष्ण रामकृष्ण रसना नहि स्फुरत।
मानुष जन्म कहा पावैगो यान धरहि धन स्याम चतुर मन।
जो इहि लोक परम सुख चाहत अरु परलोक करत प्रतिपाल।
परमानन्ददास को ठाकुर अति गम्भीर दीनानाथ दयाल।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास पदसग्रह मे, पद स० २६८, अष्टछाप, पृ० २६०।

६ अमृत नाम अमी जहा कान्हर कथा मत रहत मन लोग।
—मानसमजरी, नन्दराम शुक्ल, पृ० ६५।

मीरा ने स्पष्ट लिखा है कि गोविन्द के गुणगान और श्रवण का प्रभाव इतना है कि चाहे सारा ससार शत्रु हो जाए, कोई भी भक्त का बाल बाका नही कर सकता। अपने स्वजनो द्वारा दी गई यातनाओ का मर्मस्पर्शी वर्णन करने के बाद वे कहती हैं कि मैं श्यामसुन्दर के प्रेम मे पागल हो गई हू।[1] एजुत्तच्छन आदि मलयालम के कवियो ने अपनी पुस्तको के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ या अन्त में ईश्वर की कथाए सुनने तथा सुनाने का बार-बार उपदेश दिया है।

एजुत्तच्छन लिखते हैं—हे शुक, मैं तेरे मुख मे भगवान् की कथा सुनना चाहता हू। यदि मै कथा सुनू तो मेरा सासारिक मोह दूर हो जाएगा, मेरे मन में भक्ति जम जाएगी। जो भगवान् की कथा सुनते हैं और सुनाते हैं उनको परम गति अर्थात् मोक्ष मिलेगा, इस प्रकार मुनि बोले।[2]

चेरुश्शेरी का दृढ विश्वास है—ईश्वर के गुणगान से और श्रवण से दु ख का नाश होता है, इसके लिए वे प्रार्थना करते हैं।[3]

पून्तानम नम्पूतिरि लिखते हैं—भगवान् के नामो के कीर्तन और श्रवण मात्र ही से जन्म सफल होगा। शास्त्रग्रन्थो का दृढ मत है यह।[4]

कुचन नम्पार अपनी पुस्तक श्रीकृष्णचरित-मणिप्रवालम् में कहा है कि भगवान् की कथाओं और उनके गुणो का कीर्तन करने और सुनने से ही उनकी कृपा हमें प्राप्त होती

---

१ राग जौनपुरी

मैं गोविन्द गुण गाणा ॥ टेक ॥
राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठ्या कहँ जाणा।
राणै भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा।
टविया में भेज्या जु भुजगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, सावलिया वर पाणा ॥४३॥

—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८।

२ भवकथयोक्के केल्पान इन्न पार्त्तुत्तमाना।
दुरहङ्कलतु केळ्ल पिन्ने पुडाकयिल्ला ॥
तक्तियु नरिाञ्चु पों भक्तियु उरच्चीटु।
भक्तियु विरक्तियु मुक्तियु ताने वरु ॥

—महाभारत, पौलोमन्, पृ० १, कवि एजुत्तच्छन।

३ कार्तिये वाडतुवान ओर्तु निन्नाट्टमे-
न्नार्तिये चार्त्तु तुणप्पतेपने।

—कृष्णगाथा, ले० चेरुश्शेरी।

४ भार्त्तंकिनु पोरुमि नाम मात्र।
कीर्तिक्क जन्मत्तिनोरिक्कमोन्नु ॥
शास्त्रङ्ङळ चोल्लु दृढ निश्चय केल्न।
ओर्त्तेन्नु वन्नाटोना नन्न मनो ॥१४८॥

—पून्तानम की कृतिया, स० [illegible], पृ० १३०।

है। तभी हमारा अज्ञान दूर होगा और हमें मोक्ष मिलेगा।[1] इन सब उदाहरणो के आधार पर हम कह सकते हैं कि सभी कवियो ने ईश्वर के गुण और श्रवण के गान का एकमत से समर्थन किया है।

कीर्तन--

उच्च स्वरो में भगवान् के नाम, लीला और गुण आदि का गान करना 'कीर्तन' कहलाता है।[2] दोनो भाषाओ के कवि भागवतकार के कथन से पूर्णरूपेण सहमत हैं। उनका कथन है कि कलियुग मे एक केवल श्री कृष्ण के कीर्तन मात्र से ही मनुष्य आसानी से मुक्ति पा सकता है।

कीर्तन की महिमा और प्रभाव का वर्णन सूरदास इस प्रकार करते हैं—गोपाल के गुणगान से जो आनन्द मिलता है उसके आगे जप, तप तथा तीर्थाटन क्या चीज़ है? हरि-कीर्तन से पुरुषार्थ मिलेगा और तीन लोक का सुख तुच्छ प्रतीत होगा।[3] मीरा ने कहा है—भगवान् के नाम लेने और गुणगान से पाप कट जाएगे और जन्म सफल होगा।[4] परमानन्ददास के मत मे श्री भगवान् कृष्ण की कथा का श्रवण करना, गुणो का कीर्तन

---

१ इक्काव्य कृष्णलीलामृत कथन महा पावन भावनीय
नल्वकारुण्य लभिप्पानोरु पेरुवजि येन्नोर्त्तु मर्त्यन अहिच्चाल
उल्वकापिल वोधमुदामखिल दुरितवु नष्टमामिष्टमावक्कु
सल्वकार्ति स्फूर्त्तियुदामवनविकलमा मोदवुं सभविक्कु ॥८०॥

—श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम् ले० कुंचन नप्यार, पृ० ११।

२ नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्त्तनम्।

—श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक २६।

३ राग सारंग

जो सुख होत गुपालहि गाये।
सो नहि होत जप तप के काने कोटिक तीरथ न्हाये।
दिये लेत नहि चारि पदारथ चरण कमल चित लाये।
तीन लोक तृण सम करि लेखत नन्द नन्दन उर आये।
वंशी वट वृन्दावन यमुना तजि वैकुंठ को जाये।
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव जल आये।

—सूरसागर, स० सूर समिति, पद स० ३४१।

४ राग धनाश्री

मेरो मन रामहि राम रटैरे॥ टेक॥
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटैरे।
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटैरे।
कनक कटोरे इम्रत, भरियो, पावत कौन न टैरे।
मीरा कहे प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटैरे॥२००॥

—मीरा की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी।

करना और स्मरण करना आदि जितने भक्त के साधन हैं वे सब मगलकारी हैं।[1] नन्ददास का मत है कि भगवान् का लीला-कीर्तन और श्रवण करना ही ज्ञान और दृष्टि से ध्यान का सार है।[2]

एजुत्तच्छन लिखते हैं कि भगवान् की लीलाए सुनते तथा सुनाते रहे तो इस ससार के प्रति हमारा जो ममत्व है वह टूट जाएगा। फिर धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी।[3] कीर्तन का प्रयोजन समझाते हुए पून्तानम कहते हैं—नाम के सकीर्तन से पुरुषार्थ मिलेगा और नरक का भय सदा के लिए दूर हो जाएगा। अत कीर्तन में समय न लगाकर उसे क्यों व्यर्थ खोते हो ?[4]

कुचन नम्प्यार ने अपनी पुस्तक 'इरुपत्तिनालुवृत्तम्' में लिखा है कि कमललोचन कृष्ण के चरित का कीर्तन करने से विष्णु का पद आसानी से मिल सकेगा।[5] रामपुरत्तु

---

१ राग भैरो

मगल माधो नाउ उच्चार।
मगल वदन कमल, कर मगल मगल जन की सदा सभार।
देखत मगल पूजत मगल गावत मगल चरित उदार।
मगल श्रवन, कथा पुनि मगल मगल तन वसुदेव कुमार।
गोकुल मगल मधुवन मगल मगल रुचित वृन्दावन चद।
मगल कर्म गोवर्द्धन धारी मगल भेख जसोदा नन्द।

× × ×

मगल कमल चरन सुर वदित, मगल कीरति जगत निवास।
मगल ध्यान विचारत अनुदिन मगल मति परमानन्ददास।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से पद स० ३०५ अष्टछाप, पृ० ११६।

२ श्रवण कीर्तन सार सार सुमिरन कौ है पुनि।
ध्यान सार हरि ध्यान सार, श्रुति सार गुथी जुनि।

—रासपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० ८२।

३ भगवत् कथकले आवोल केट्टु विचारिच्चुमुनप्रेमान्विन
नाविनालुर चेयतु भिद्धने निन दिन
नित्तु अतुनेर शुद्ध मायिट्टु पिन्ने
निरिटे सान्निध्यत् नत्व दोषवुमुदान्।

—चिन्तारत्नम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २२।

४ वन्नु कूटु पुरुषाथ नेन्नतु इनियुल्ल नरक भयडडन्नु।
इन्नु वरु निरूपण मोवरु पुल्लिनु वृथा काल कळयुन्नु।

—पून्तानम की कृतियाँ, स० सुन्दर, पृ० ४३।

५ गुणिगवर दशमनिल वन्नु नलिनाक्षन।
कृष्ण तनुवाल्यवनारिच्चोर चरित्र॥
कृष्णयोदु गोल्लुवनिनिन्नु तुनिवुल्लेन।
विष्णु पद मेलदुवनिनाशु हरि कृष्ण॥

—भारतन इरुपत्तिनालुवृत्तम्, स० पनिक्कर, पृ० १०८।

अर्चन, कीर्तन, स्मरण आदि की महिमा—

अर्चन, कीर्तन, स्मरण आदि की महिमा के बारे मे एजुत्तच्छन ने यो लिखा है—ईश्वर की पूजा करना, कीर्तन करना, स्मरण करना आदि साधनो मे मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी।[1] मन मे समझो कि कमलासन के पिता (विष्णु) के कथा रूपी अमृत का सेवन सुखदायी है, वह सुरतरु के समान सर्वस्व देने वाला है।[2] भगवान् का एक बार नाम जपने से ही जिस प्रकार अजामिल को मोक्ष मिल गया उसी प्रकार जपने वाला भक्ति-मोक्ष पाने का अधिकारी हो जाएगा।[3] कडी तपस्या करने की आवश्यकता नही, दान, यज्ञ, आदि भी न करना चाहिए। बल्कि इस कलिकाल मे भगवान् की महिमा के कीर्तन से ही सारी आशाए पूरी हो जाएगी, अर्थात् मोक्ष मिलेगा।[4] भगवान् के मजुल रूप का ध्यान, नाम, जप और उनके चरितो का आख्यान-श्रवण आदि मनुष्यो के लिए उत्तम है।[5]

सूरदास ने स्मरण-भक्ति के सबध मे इस प्रकार लिखा है—हरि के स्मरण मे परमानन्द का अनुभव होता है। श्रुति, स्मृति आदि उत्तम ग्रथ पुकार-पुकार कहते है कि हरिस्मरण के समान दूसरी उत्तम वस्तु कोई भी नही। इसीसे मुक्ति प्राप्त होती है। ऊच नीच, भावना के बिना जो हरि का स्मरण करते है उनको भगवान् मोक्ष देते है। अत दिन-रात हरि का स्मरण करने मे विलम्ब न करे। सौ बातो से यदि कोई अच्छी बात है तो वह हरिस्मरण है। हरिस्मरण के बिना कही भी चलो, आनन्द नही मिलेगा और हमारा

---

१ ईश्वरार्च्चन नाम सकीर्त्तनम
शाश्वतानन्द मोक्ष सपादनम

—भागवतकीर्त्तनम्, पद स० ४, कवि एजुत्तच्छन।

२ कमलासन तातटे कथामृत
सुख पान सुर दारु समान
सकलाशा साधन मेन्नुल्लतु
करुतुक चित्ते नारायण जय॥

—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० ७, कवि एजुत्तच्छन।

३ कैवल्य तान, करुणा निधि यटे।
तिरु नामङ्ङलिलोन्नु जपिच्चाल,
कैवरुमेन्न मजामिल मोक्ष,
कथा गति कायम् नारायण जय॥

—भागवतकीर्त्तनम, द्वितीय पाद, पद स० ६, कवि एजुत्तच्छन।

४ कोट्टुतायुल्ल तपस्सुकल वेण्डा, बहु दानाद्य मख क्रिय वेण्डा।
कलि कालत्तिल भगवन् कीर्त्तन मखिलेष्टदमा नारायण जय॥

—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० १०, कवि एजुत्तच्छन।

५ कोमल वैष्णव रूप ध्यान नाम जप तिरु चरिताख्यानम।
काममिनोरोन्नु नरजात नेमदमत्रे नारायण जय।

—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० ११, कवि एजुत्तच्छन।

जन्म भी बेकार हो जाएगा ।[1]

परमानन्ददास निरन्तर हरि का स्मरण करने का उपदेश देते हैं—हे भगवान्, आपकी लीला का स्मरण मुझे बार-बार होता है और मेरे मन में अनेक चित्र बन जाते हैं। जिसने भगवान् की मीठी मुस्कान का आनन्द लिया है वह उन्हें कभी भूल न सकेगा। आपका स्मरण कभी प्रगाढ आलिंगन का सुख देता है तो कभी मन आपके मधुर स्वर में मिलकर गाने लगता है। जब आप अप्रत्यक्ष होते हैं तब मेरा मन विकल हो उठता है। आंखें बन्द करने पर कभी मेरी अन्तरात्मा आपको सर्वस्व अर्पण करती हुई वनमाला पहनाती है। परमानन्ददास कहते हैं कि कभी मुझे नन्दलाल के ध्यान में वियोग की व्याकुलता का अनुभव होता है।[2]

एजुत्तच्छन का मत है जब मन काम, क्रोध और मद आदि में कलुषित हो तब भगवान् की महिमा के बारे में विचार कर उनके नाम का यदि कोई व्यक्ति उच्चारण करे तो उसका जीवन सफल हो जाए।[3] उसी प्रकार अपने मन को संबोधित करते हुए नाम

---

१ राग बिलावल

हरि हरि हरि, सुमिरो सब कोई।
हरि हरि सुमिरन सब सुख होई।
हरि समान द्वितीया नहि कोई, हरि चरणनि राखो चित गोई।
हरि श्रुति स्मृति सब देखों जोई, हरि सुमिरन होई सो होई,
हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई।
शत्रु मित्र हरि गिनत न दोई, जो सुमिरे ताकी गति होई।
राव रंक हरि गिनत न दोई जो गावे ताकी गति होई।
× × ×
हरि बिनु मुक्त नहि कहा न कहा हरि हरि हरि सुमिरो जहां तहां।
हरि हरि हरि सुमिरो दिन रात, नातर जन्म अकारथ जात।
सौ बातन की एकै बात, सूर सुमिर हरि हरि दिन रात।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३६।

२ राग कल्याण

हरि तेरी लीला की सुधि आवति।
कमल नैन मन मोहनी मूरति मन मन चित्र बनावति।
एक बार जाय मिलत मया करि सो कैसे बिसरावति।
मृदु मुसिकानि वक अवलोकनि चालि मनोहर भावनि।
कबहुँक निबड़ तिमिर आलिंगनि कबहुँक पिक स्वर गावनि।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि करि संगहीन उठि धावनि।
कबहुँक नयन मूंदि अन्तर गति बनमाला पहिरावनि।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गवावनि।

—डा० गुप्त के परमानन्द-पदसंग्रह से, पद सं० २२४, अष्टछाप, पृ० २७२।

३ ऊनिल्ल पकरं मद, मात्सर्य मेन्निवकळुळ्ळोर
[illegible] मनत्ति
[illegible] ॥१८॥

—हरिनाम कीर्तनम्, एजुत्तच्छन कृत।

की महिमा के संबंध में पून्तानम ने कहा है—हे मन, नामोच्चारण से शीघ्र ही अजामिल को मोक्ष मिल गया। नामोच्चारण से ही वाल्मीकि मुनि श्रेष्ठ हो गए। जीवन की सफलता के लिए नामोच्चारण ही पर्याप्त है। यही बात वेदान्त भी घोषित करते हैं।[1] अन्त में वह भगवान से प्रार्थना करते हैं—हे भगवान, आप मुझे नामोच्चारण करने की शक्ति तथा रुचि दीजिए।[2] फिर वे कहते हैं कि नामामृत के सामने सोमामृत क्या चीज है। मृतकों के लिए नाम पीयूष के समान है।[2]

पाद-सेवन

संसार में हम देखते हैं कि सेवक अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए सब प्रकार से उसकी सेवा करता है। उसी प्रकार भक्त भगवान के चरणों की सेवा मन, वाणी, काया से करता है। इसी को पाद-सेवा कहते हैं।[3] सारे भक्त कवियों ने एक मत से कहा है कि भगवान् की चरणसेवा से मुक्ति मिलेगी। भागवत में लिखा है—जो महान पुरुष भगवान के कोमल चरण रूपी नौका का सहारा लेते हैं उनके लिए संसार-सागर गोवत्सपद चिह्न के समान है। परम पद पाने के लिए उन्हें विपत्तियों का सामना करना नहीं पड़ता।[4]

प्रभु के चरणकमलों की महत्ता के संबंध में सूर ने लिखा है—जिसपर प्रभु की कृपा होती है उसे वे सब सामर्थ्य प्राप्त करा देते हैं। उसके लिए असम्भव बात कोई भी नहीं। लूला-लंगडा दुर्गम पर्वत को भी लांघ सकता है, अन्धा सब-कुछ देख सकता है। ऐसे करुणामय स्वामी के चरणों की सेवा कौन नहीं करेगा।[5] दूसरे एक पद में सूर ने कहा

---

१ नामोच्चारण मोन्नु कोटुगति वन्नु पण्डु दासा पने-
न्नामोच्चारणमोन्नु कोडु मुनियाय् वालमाकि पट्टे तुला
नामोच्चारणमोन्नु तन्ने मतियेन्नातुन्नु वेदान्नु
नामोच्चारण मेन्ननेन्कलरुल्लाटानन्द पाथो निधे॥

—पून्तानम की कृतियाँ, पद सं० १२, सं० गुरुमा, पृ० १११।

२ नामामृत नाविलिम्बकुमारोल
सोमामृत पार्त निनच्चु कटात
नामामृत कागमृत मृताना।

पून्तानम की कृतियाँ, पद सं० १५५, सं० सम्मत्, पृ० १११।

३ सेवकाना तथा लोके व्यवहार प्रसिद्धयति
× × ×

—सिद्धान्तरहस्य, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक ७ तथा ८।

४ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लव, महत्पदं पुण्ययशो मुरारे।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं,

—भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय, श्लोक ५८।

५ राग बिलावल
चरन कमल बन्दौं हरि राइ।
जाकी कृपा पगु गिरि लघै, अन्धे कौं सब कुछ दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहि पाइ॥

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, सं० सूर-समिति, पद सं० १, पृ० १।

है कि प्रभु की शरण मे जो गए है उन सबको भवसागर से मोक्ष मिला है। अवरीष, गोपाल, गज, प्रह्लाद आदि लोगो का उदाहरण भी उन्होने दिया है।[1]

परमानन्ददास का कथन है कि नन्दनन्दन की पाद-सेवा मुक्ति से भी मधुर है। जो सच्चे भक्त हैं और सरस है वे इस रस का आस्वादन करने के लिए अपना सर्वस्व पाद-सेवा मे अर्पण करके श्रवण, कथन, स्मरण और कीर्तन मे समय लगाते है। उन्होने वेद-पुराण को निचोडकर इसी रस का आस्वादन कर लिया है। ऐसे भक्तो से प्रेरणा पाकर ही परमानन्ददास ने भगवान् के चरणकमलो मे अनुराग करना उचित समझा।[2]

नन्ददास भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे नन्द दुलारे! जब तक आपके चरणो मे लोग श्रद्धा-भक्ति से प्रेम नही रखते तब तक रागादि विकारो से छुटकारा पाना असम्भव है। मोह की जजीर से वे हमेशा जकडे रहेगे।[3]

मीरा व्याकुल होकर कहती है—हे भगवन्, आपकी शरण मे मै आई हू। अनेक तीर्थ-स्थानो पर जाकर स्नान किया किन्तु मन की मलिनता दूर नही हुई। वे कहती है कि भगवान् की चरणसेवा से ही यम के फन्दे से छुटकारा मिलेगा।[4]

---

१ राग रामकली

सरन गए को को न उबार्यो।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्यो।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरवासा कौ क्रोध निवार्यो।
× × ×
सूर स्याम बिनु और करै को, रंगभूमि मैं कंस पछार्यो॥

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद सं० १४, स० सूर-समिति।

२ राग सारग

सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
जानै रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी।
चरण कमल रज मन बसी सब धर्म बहाए।
श्रवण, कथन, चिन्तन बढ्यो पावन गुन गाए।
वेद पुरान निरूपि कै रस लियो निचोर।
पान करत आनन्द भयो डार्यो सब घोर।
परमानन्द विचारि कै परमारथ साध्यो।
राम कृष्ण पद प्रेम बढ्यो लीला रस बाध्यो।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसंग्रह से, पद सं० ३१५, अष्टछाप, पृ० १८१।

३ तब लगि नाहि बंधन आगार, देह गेह धन नेह विचार।
तब लगि हिय जंजर जरी, मोह लोह की पायनि बेरी।
जब लग जन नहिं भये तुम्हारे, हे ईश्वर नन्दलाल दुलारे।

—दशम स्कन्ध भाषा, अध्याय १८, नन्ददास, 'शुक्ल' पाठ भेद से पृ० २०७।

४ मैं तो तेरी सरण पड़ी रे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार ॥टेक॥
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नहीं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, जम का फन्दा निवार॥

—मीरा की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पद सं० १९३, पृ० ८३।

हिन्दी के कवियों के समान ही मलयालम भाषा के कवियों ने पाद सेवा की महिमा का वर्णन अपनी-अपनी भावना के अनुसार ही किया है। कृष्णगाथा में चेरुश्शेरी ने लिखा है—आपकी चरणसेवा भवसागर को पार करने वाली नौका है। आपसे विनीत प्रार्थना है आप अपने चरण-कमलों में हमें अभय दीजिए।[1] श्री पून्तानम ने भी भगवान के चरणों के दर्शन और चरणों की सेवा से मोक्ष-प्राप्ति आदि के संबंध में कई पद लिखे हैं। अन्त में वे उपदेश देते हैं कि कमल नयन भगवान की पाद-सेवा अति शीघ्र कर सको तो तुरन्त करो।[2] एजुत्तच्छन पादसेवन की महिमा यों गाते हैं—हे भगवन्, मनुष्य के मन में अहंकार रूपी पौधा अंकुरित हो जाएगा। धीरे-धीरे काम, क्रोध आदि शाखाओं से वह पौधा परिपूर्ण होगा और दुष्कर्म रूपी फल उसमें लगेंगे जिसके कारण कई जन्म लेने पड़ेंगे। अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे अहंकार रूपी पौधे को मेरे मन में अंकुरित न होने दें।[3]

अर्चन

सर्वत्र भगवान् को देखते हुए अपने को भगवान् पर अर्पण करके निमग्न होकर जीवन बिताने को अर्चन या मानसिक पूजा कहते हैं। भक्तिवर्द्धिनी में लिखा है कि श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान् के रूप की पूजा करना अर्चन भक्ति है।[4]

अज्ञानी लोग मन्दिरों में जाकर पत्थर की मूर्ति की पूजा करते हैं। माया में मोहित होने के कारण भगवान् की सर्वव्यापकता उनकी समझ में नहीं आती किन्तु सारे कृष्ण-

---

१ पेम्नायुल्लोरु दुरित वारिधि,
तरण मेङ्ङलक्कु वरमेक
यतिन मिन्नुटे चरण सेवया,
मरियोरु तोणि यन्लेण
अटिमयायपुरकोरिवरे अन्नेन्नु
नेटियुन्निल्लन्न निनवाले
अजल् तार्त्तीटु निन कजलिल् चेर्प्पोर,
कनिवुटाकेणमिनियययो।

—कृष्णगाथा, पृ० २१, स० राजराज वर्मा।

२ नालाक नेत्र चरणाम्बुज सेव चेय्वा,
नालाकिलप्पोळे तुटङ्ङण मप्रकार ॥१२६॥

—पून्तानम की कृतियाँ, स० सूरसन्, पृ० १२८।

३ दम्भाय वन्मर मतिनुल्लिल निन्नु चिल,
कोम्पु तलिर्त्तवधियिल्लात कायकनिकल
अपोट्टुदुत्तरिकिल वाजायवतिन्नु गति
निन् पाद भक्ति हरि नारायणाय नमः ॥४७॥

—हरिनामकीर्तनम्, पद्य स० ४७, ले० एजुत्तच्छन।

४ अन्यावृतो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः।

—भक्तिवर्द्धिनी, षोडश ग्रंथ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक २, पृ० ७२।

भक्त कवियो को ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव हुआ है, यह उनकी कविताओ मे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है।

सूर ने लिखा है—जो घटघटवासी ब्रह्म है, उसके प्रकाश मे सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि सब शोभा पाते है। मारा लोक, नारद, सनकादि, सुर-असुर, मनुष्य आदि सब मिल-कर उसी सर्वव्यापी ब्रह्म की पूजा करते है।[1]

परमानन्ददास भक्ति मे विभोर होकर प्रेम-प्लावित हृदय मे गोपी रूप मे गाते है—हे मनमोहन, मै तुमको बुलाते-बुलाते हार गई। तुम्हारे लिए छाक लेकर आई हू। तुम कहा हो ? मुझे पता नही लगता। तुमको ढूढते-ढूढते बडा कष्ट झेलकर आई हू। देखो तुम्हारी वशी की ध्वनि सुनते ही मेरे उर और अन्य अगो मे पसीना भर गया है और अचल भी भीग गया है।[2]

'दशम स्कन्ध' मे नन्ददास ने वरुण के द्वारा कृष्ण की पूजा कराई है।[3] यह अर्चना-भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। चेरुश्शेरी नपूतिरि ने कृष्ण-गाथा मे मुनियो से कृष्ण की स्तुति कराई है, जिसमे स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि कृष्ण सर्वव्यापी है, इस प्रपञ्च मे अग्नि, जल, अरुण, वरुण, कामदेव और आकाश आदि के रूप मे भगवान् ही प्रत्यक्ष दिखाई पडते है। कुसम मे सुगन्धि के समान वे सब कहीं व्याप्त है। अत सर्वात्म-भाव मे

---

1 राग केदारी

नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप।
चरण सप्त पाताल जाके सीस है आकास।
सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकास।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३८।

2 राग मारू

तुमको टेरि टेरि मैं हारी।
कहा रहे अब लौं मन मोहन ले हौं मैं छाक तुम्हारी।
भूलि परि आवत मारग मैं क्यों हू न पैंडो पायो।
ढूंढत ढूंढत यहा लौं आई, तब तुम बेनु बजायो।
सुनो मेरे लग पसीना उर को अंचल भींनों।
परमानन्द प्रभु प्रीति जानि कै धाय आलिंगन कीनों॥

—परमानन्ददास-पदसंग्रह, पृ० सं० ८७७।

3 बरुन निरखि उठ्यो अकुलाय, पगन मैं लोट पोट ह्वै जाय।
पाछे प्रभु पूजा अनुसर्यो, सहज बरन परम रंग भर्यो।
उत्तम उत्तम विधि निधि लियो, आनि धरी हरि चरननि हियो।
कुम्भ कलस ढिग धर्यो जुरैत, भर्यो सब अवनी संग।
पुनि पुनि बार बार पग परै, अञ्जुलि जोरि अस्तुति करै।

—दशम स्कन्ध, अध्याय २८, नन्ददास, शुक्ल, पृ० २१८।

उनकी पूजा करने से ही संसार-सागर से मोक्ष मिलेगा।[1]

एजुत्तच्छन का उपदेश है—प्राकृत लोगों को सुख पाने के लिए मन्दिरों में जाकर ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए। उसके बाद उनको यह ज्ञान होगा कि जो शक्तिमूर्ति में स्थित है वह सर्वत्र व्याप्त है और उनके हृदय में भी वह शक्ति वास करती है। जब वे हृदय-स्थित ईश्वर की उपासना निर्मल मन से करेंगे और जप-ध्यान करेंगे तब उनको मोक्ष पाने की इच्छा होगी और धीरे-धीरे भगवान् की कृपा से वे माया से मुक्त होंगे।[2]

पून्तानम अपने को समझाते हुए कहते हैं—अरे मन, तू अपने मूल स्थान को भूला-सा दिखाई पड़ता है। तुरन्त सांसारिक विषयों से हटकर उस विश्वव्यापी परमात्मा का ध्यान कर ले।[3]

वन्दन

ईश्वर की महिमा का चिन्तन, उनके अपार गुणों का स्मरण और सर्वदा उनके सामने नतमस्तक होकर प्रणाम करना वन्दन-भक्ति है। प्राय देखा जाता है कि अर्चन और वन्दन साथ-साथ हुआ करता है।

दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनी कविताओं में भगवान् की महत्ता, अपनी दीनता तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धा आदि का वर्णन किया है। उन सन्तों ने कृष्ण को सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, दीनानाथ आदि विशेषणों से विभूषित किया है। सर्वप्रथम वे भगवान् की महिमा गाते हैं और अन्त में उनकी पादसेवा करना मानव-जीवन का उद्देश्य बतलाकर

---

१ दहननायतु तपननायतु पवननायतु परने नी।
अवनि यायतु गगन मायतु मजकिल वारिजु परने ना।
अरण नायतु वरुणनायतु करुण क्कातले परन नाये।
× × ×
कसुम त नुट मण पोले निन्न भुवनङ्ङलेट्टु निरञ्ञु ना
कुटिकोल्केड्डल तन्नकतारिल वन्नु कुवलय वेल्लु निरत्तोने।
—कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० २१७।

२ प्राकृतन्मावर्क्कु सुख उण्टावुवान प्रतिमा स्वरूप काट्टु पोलवण्टे
हृदयाबुजत्तिलु ध्यानिच्चु भक्तियोटे भजिच्चुनामङ्ङले जपिच्चु कम्मङ्ङले
× × ×
भक्त वत्सलन तन्नुरे कारुण्य मुटाकुपोल शक्तिया महामाया केटायि भवन्निर्नाटुम
—चिन्तासन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २४, २५।

३ चित्तु मरन्नु विषयङ्ङ्लोरोन्नु नोक्कि
च्चतुपिरन्नुमुजलायुक मनवकुरुन्ने
विश्व निरञ्ञु विलयाटिन तपुराने
चित्ते कलर्न्ननुभवि च्चतिनोर्त्तु कोल नी॥१३६॥
—पून्तानम की कृतियाँ, म मरसन, पृ० २२८।

विषय को समाप्त करते है। कभी-कभी उनकी कृपा-प्राप्ति के लिए वे कातर प्रार्थना भी करते हैं।

अपनी विवशता दिखाकर भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए सूर कातर स्वर मे प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! आपकी आज्ञा से मैं खूब नाचा। अब बस कीजिए। इस प्रवृत्ति से मुझे छुट्टी दीजिए और मेरी अविद्या का नाश कीजिए।[1]

परमानन्ददास ने भी विनीत भाव मे प्रार्थना की है—हे प्रभो, आप मुझे अपने चरण-सरोज का भ्रमर क्यो नही बना लेते। मेरी विनीत प्रार्थना आप सुन लीजिए। आपके कर-कमल आतप मे रक्षा करने वाले छत्र के समान है। आपकी दृष्टि दयाभरी है। यह परमानन्ददास आपके प्रेम का लोभी है। जिसपर आप कृपा करते हैं उनको आप अपने निकट बुला लेते है।[2]

नन्ददास ने आरम्भ मे भगवान् की वन्दना करते हुए लिखा है कि नन्दगोपाल रस की खान और सारे जगत् के आधार हैं।[3] मीरा की कविताओ मे शायद ही कोई ऐसा होगा जिसमे भगवान् की वन्दना किसी न किसी रूप मे न की गई हो। वे मन को समझाते हुए कहती हैं—रे मन! तू सदैव हरि-चरणो मे रत हो। हरि के चरण समस्त दुःख दूर करने वाले हैं और जिन्होंने उन चरण-कमलो मे मन लगाया है उन सब को मोक्ष प्राप्त

---

१ राग धनाश्री

अब मै नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

—सूरसागर, पहला खंड, [illegible], पद सं० १५३, पृ० ५१।

२ अपने चरन कमल कौ मधुकर मोहि काहे न करि हौ जू।
कृपावन्त भगवन्त गुसाईं यह विनती चित धरि हौ जू।
[illegible] आतपन की छाया कर अम्बुज [illegible]।
[illegible] नयन रतनारे कृपा [illegible]।
परमानन्द [illegible] लोभी भाग्य बिना क्यों पावै।
जाको [illegible] तुम्हारे [illegible] आवै।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-संग्रह से, पद सं० ३८३, [illegible], पृ० [illegible]।

३ नमो नमो आनन्द, सुन्दर नन्दकुमार।
रसमय रस कारन रसिक, जग जाके आधार।

—रसमंजरी, [illegible], पृ० [illegible]।

हुआ है।[1]

हितहरिवंश कहते है—साधुओ की संगति करके कल्पवृक्ष कृष्ण भगवान् की सेवा करो तो सच्चा सुख मिलेगा।[2] स्वामी हरिदास का कथन है, कमलनयन का हित करो, उसके सामने 'और हित' फीका है। यह जन्म तो दो दिन का है। अत बिहारी की सेवा के सिवा और मोक्ष पाने का कोई उपाय नही।[3] मनुष्य का जन्म बार-बार नही मिलेगा। अत इस अपूर्व समय को बिना खोए भगवान् का भजन करने का उपदेश ध्रुवदास देते है।[4] भगवान् कृष्ण की आश्रित वत्सलता की महिमा का वर्णन करते हुए रसखान अपनी रसात्मक वाणी मे कहते है—जिस भगवान् ने द्रौपदी, गणिका, अजामिल, अहल्या, प्रह्लाद

---

१ राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण ॥टेक॥
सुभग सीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
जिण चरण ब्रह्माण्ड भेट्यो, नख सिखा सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो गोप लीला करण।
जिण चरण गोवरधन धार्‌यो, गर्व मघवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण॥

—मीराबाई की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पद सं० १, पृ० १।

२ दोहा

तनहिं राखु सतसंग में, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतरु सेव॥

—हितहरिवंश, ब्रजमाधुरीसार, सं० वियोगी हरि, पृ० ८५।

३ आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सों जा हित के आगे और हित लागे फीको।
कै हित कीजै साधु संगति सों, जावै कलमष जी को॥
हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ,
संसार हित कसूंभि दिन दुती को।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सों,
और न निबाहु जानि जी को॥

—स्वामी हरिदास, ब्रजमाधुरीसार, सं० वियोगी हरि, पृ० १२६।

४ बार बार तो बनत नहि, यह संजोग अनूप।
मानुष तन वृन्दा विपिन, रसिकनि संग बिबि रूप॥
रसिकनि संग बिबिरूप भजन सर्वोपरि आही।
मनु है ध्रुव, यह रंग लेहु पल पल अवगाही॥
नौ दिन जात सो फिरत नहि, करहु उपाय अपार।
[illegible] यह सार॥

—ध्रुवदास, ब्रजमाधुरीसार, सं० वियोगी हरि, पृ० [illegible]।

आदि को मुक्ति दी है उसपर क्यो सन्देह किया जाए। उसकी कृपा हो तो बेचारा काल क्या कर सकेगा![1]

घनानन्द अपनी मधुर तथा सरल भाषा मे गाते है—हरि के भजन मे विलम्ब न करो। अच्छा अवसर है। उससे न चूको। श्याम मनोहर का गुणगान करके अपना मनोरथ पूरा करो।[2]

मलयालम के एक अज्ञात कवि ने बडे ही हृदयस्पर्शी शब्दो मे भगवान् की स्तुति करते हुए कहा है—हे भगवन्, अपनी मनोमोहिनी वशी बजाते हुए दौडकर आइए। उछलते-कूदते, थिरकते, रागालाप करते, वशी बजाते मेरे पास आइए। सिर पर मोर पख लगाकर, उसपर माला रखे, अपने साथियो के साथ खेलते हुए आइए। गोपियो के वस्त्र छीनकर वट वृक्ष पर बैठने वाले हे भगवान्, मेरा दु ख दूर करने के लिए शीघ्र आइए। यम के आने के समय आप अपनी मनोमोहिनी मूरत मे प्रत्यक्ष हो जाइए। यही मेरी विनीत प्रार्थना है।[3]

चेरुश्शेरी नपूतिरि इन्द्र के द्वारा भगवान् की वन्दना करते है—जब मृत्यु आए और दुर्बलता के मारे मेरे सारे अग शिथिल होने लगे, उस समय आप अपने चरण-कमलो के

---

१ द्रौपदि औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्‌यो दुख भारो॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहै रविनन्द विचारो।
कौन की सक परी है जु माखन, चाखनहारो है राखनहारो॥
—सुजान रसखान कवि, रसखान, ब्रजमाधुरी, स० वियोगी हरि, पृ० २१६।

२ कलिगारा
विलम न करिबे हरि के भजन को।
करत पलक मे और नाहिन भरो मौतिन को।
आय बन्यो है औसर नीको, कर ले मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरि गुन पूरन सुनि यस आनदघन को।
—घनानन्द, स० शम्भुप्रसाद बहुगुना।

३ ओटक्कुषल विलियोटे मुन्निल ओटि वन्नालु मुकुन्द
पाटियु मन्नुवराटियु तोटिय पाटियुमानन्द मोट्टनाटियु
ओट क्कुषल विलियोटे ओटि वन्नालु मुकुन्द
पीलिप्पमार कुन्नलु केट्टि अतिन चालवे मालकल् चार्ति
मालरन्मार ओन्निच्चु मेलिच्चु नीलकन चेदय नीलाक नाग
वानरागरिमार कन्टे नल्ल चेलकलाक पक्वन्नु
अन्निन मुकन्निट्टेरि वन्निन्नोर बालक
ना भर मानुष ना कुवाल कन्क भानि वन्नोन
[illegible] अन्निम मनमें वेगल नल्ल चिन्ताकुन्न
निनुटे पूर्ति नल्ल पुो भने मानार क्वेन्द्रे।
मोन्गुरुन्न [illegible] नोटि वन्नालु मुकुन्द।
—[illegible] ना० मा० नवीन भाग २, पृ० [illegible]।

स्पर्श से मेरे समस्त दु ख दूर कर दे। आपके अतिरिक्त और कोई अवलम्ब नही।[1] ज्ञानी और उत्तम भक्त एजुत्तच्छन ने पद-पद पर भगवान् की महिमा गाई है। वे जीवन की क्षण-भगुरता का वर्णन करते हुए कहते है—जन्म के साथ ही मृत्यु भी हमारे साथ रहती है। मेढक को निगलने से लिए जैसे साप उसका पीछा करता है वैसे ही काल रूपी सर्प के मुझे निगलने से पहिले, हे भगवन्, आप मेरी रक्षा करने की कृपा कीजिए।[2]

पून्तानम ने वालगोपाल की लीलाओ का वर्णन करके प्राथना की है—अहकारी असुरो का अहकार दूर करने के लिए आपने वृन्दावन मे जन्म लिया। दूध और हाडी तोडकर गोरस चखने वाले हे कृष्ण भगवान्, आप अपने कमल-चरणो मे मेरे पाप-समूह को भस्म कर दीजिए।[3]

कुन्चन नप्यार भगवान् के अनुग्रह पाने के लिए दीनता दिखाते हुए वन्दना करते है—हे नन्द के लाल, सुन्दर मुरारी, मन्दर पर्वत को उठाने वाले, केशी के घातक तथा कैवल्यमूर्ति! आपके पैरो पडता हू। आप अच्युत, सच्चिदानन्दमय, निश्चल, निरजन, कारण पुरुष, कसविनाशक, चारणसेवित, दयालु, कमलनयन, प्रवल शत्रुओ के महारक है। मै आपकी वन्दना करता हू।[4]

---

१ मरण वन्नणञ्जाटु व्यसन कोंडञ्जन्नाटु
करणङ्ङल तलन्नृ ञान किटक्कु नेर
शरणमाय मुनिकल्क्कु मरुवु निन् चरणङ्ङल
मरण मालकट्र मारस्लाटेण।

—कृष्णगाथा, म० राजराज वमा, पृ० २४७।

२ भक्षिप्पतिनु गुह पोले पिलन्नुमुख,
मय्यो कृतान्तनिह पिन्पे नटन्नु मम
एत्तुनदर्द्दर मुरत्तोट्ट पिन्ने थोग,
सर्प कणक्के हरि नारायणाय नम

—हरिनाम-कात्तनम, कवि एजुत्तच्छन, पद म० २३।

३ दर्पेरन्नसुरक्कु टमु कलवातिनेप्पेरम्पाटियिल
पपाल वेरण कवर्नु कुभमुटने मभियमेवु विभो।
अभोजत्तिनु सभ्रमात्तियरलु निनपाद मन्याटिनो,
रेन पापत्तिनु कृ प मेकुक निलिपाणनि मप्रेपणम,

—पून्तानम का कृतिया, म० मुम्मन पद, म० [illegible]।

४ नन्द नन्दन नयनानन्द सुन्दरानन व[illegible] व[illegible],
नन्दित लोक मुकुन्द दुरान्तक मन्दर पव धारक गोर।
केशव माधव माधव माधो केशि विनाशन केवल पूर्ते।
पशन [illegible]शल [illegible]शन दशिम हु शरण भव नामय पापन।
अच्युत राघव रावण नाशक सच्चिदानन्दमय प [illegible] [illegible] [illegible]
त्वच्चरितामनसार सदो नय निश्चल श [illegible] निरजन कृ[illegible]
कारण पुरुष कम विनाशन चारण सेवित चार [illegible]
दयाल पालक वारिज लोचन [illegible] [illegible] [illegible]॥

—[illegible]

भक्ति के विविध अंग

वल्लभाचार्य प्रभृति आचार्यों का मत है कि भक्ति का स्थायी भाव प्रीति अथवा स्नेह है। इस प्रीति की अभिव्यक्ति चार प्रकार से होती है

१ दास्य भाव से,

२ सख्य भाव से,

३ वात्सल्य भाव से,

४ प्रेम अथवा माधुर्य भाव से।

कृष्णकाव्य में भक्ति के चारो रूप मिलते हैं और इन चारो की महिमा का वर्णन कृष्णभक्त कवियो ने बडे विस्तार मे किया है।

सर्वप्रथम हम दास्य-भावयुक्त भक्ति का विश्लेषण करना उचित समझते है।

दास्य-भक्ति

ईश्वर मेरा पिता है, माता है, स्वामी है, और मैं उनका आज्ञाकारी पुत्र अथवा स्वामिभक्त दास हू। यह दास्यप्रीति या दास्यभक्ति है।[1]

वल्लभाचार्य के मत मे, सफलता और विफलता की चिन्ता न करते हुए भगवान् की आज्ञा पालन करने मे तत्पर रहना भक्त का परम कर्तव्य है। आचार्य जी ने दास्य-भक्ति मे निष्काम भावना को प्रधानता दी है।[2]

अन्य आचार्यो का भी मत है कि निष्काम भाव से कर्म करते रहने पर भक्त की अहबुद्धि नष्ट हो जाती है। गीता मे लिखा गया है कि भक्त मेरा आश्रय लेकर सब कामो को करता हुआ भी मेरे प्रसाद से अव्यय शाश्वत पद पाता है।[3]

आत्मदोष-प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण तथा भगवान् की सर्व-सामर्थ्य की अनुभूति—ये भाव दास्य-भक्ति के अग माने जाते है। सारे कृष्णभक्त कवियों के काव्यो मे दास्य-भक्ति के प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते है।

सूरदास कहते है—मैं नन्दनन्दन का खरीदा हुआ दास हू। उनकी शरण मे आने के कारण यम के फन्दे से मुझे छुटकारा मिल गया। तिलक, तुलसी, पत्र, वनमाला आदि धारण किए हुए भक्त के वेश मे देखकर लोग मुझे कृष्ण का दास कहते है। यह सुनकर मै बहुत प्रसन्न होता हू। दासवृत्ति करने के कारण मुझे भगवान् का जूठन प्रसाद रूप मे

---

1 अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५६८।

2 अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५०१।

3 सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

—गीता, अध्याय १८, श्लोक स० ५६।

खाने को मिलता है। यह मेरे लिए सबसे बडे आनन्द की बात है।[1] आत्म-निवेदन का भाव प्रबल होने पर सूर कह उठते हैं—हे प्रभो, मैं भले ही बुरा होऊ, किन्तु अब तो आपका दास हो गया हू। आपके अतिरिक्त और किसीपर मैं विश्वास नही करता। आपकी शरण मे मैं आ गया हू। आपके प्रताप के बल से मैं निर्भय हो गया। आपकी कृपा मे मुझे बडा सुख मिल गया है।[2]

परमानन्ददास की विनीत प्रार्थना मे दास-भाव सन्निहित है। वे कहते हैं—आप पर मेरा पूरा भरोसा है। आप तो दीनदयालु और पतित-पावन हैं। आपकी शरण मे आकर ऐसा कोई भी नही जिसे मोक्ष न मिला हो। आप पतित-पावन और भक्तो का उद्धार करने वाले हैं। आपके इस यश ने मुझे आकर्षित कर लिया है। आपने गणिका आदि अनेक पापियो को तार दिया। फिर ऐसा कौनसा कारण है, इस दास को आपके द्वारा 'दाद' नही मिलती।[3]

---

१ राग विलावल

हमें नन्द नन्दन मोल लियो।
यम के फन्द काटि मुकराए, अभय अजात किये।
भाल तिलक श्रवनन तुलसी दल मेटे अग किये।
मूडे मूड कंठ वनमाला मुद्रा चक्र दिये।
अब काउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।
सूरदास को और बडो सुख जूठनि खाइ जिये।

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १७।

२ राग धनाश्री

जो हम भले बुरे तो तेरे।
तुम्हें हमारी लाज बडाई विनती सुन प्रभु मेरे।
सब तजि तुम शरनागत आयो निज कर चरन गहे रे।
तुम प्रताप बल बदत न काहू निडर भये घर चेरे।
और देव सब रक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा ते पायो सुख जु घनेरे।

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १७।

३ राग सारग

ताते तुम्हरो मोहि भरोसो आवै,
दीन दयालु पतित पावन जस वेद उपनिषद गावै।
जो तुम कहो कौन खल तारे तो हौ बोलो साखि,
पुत्र हेत हरि लोक चल्यो द्विज सक्यो न काहू राखि।
गनिका कहा कियो व्रत सयम शुक हित नामहि सिखावै।
कारन करि समिरै गज बपुरो ग्राह परम गति पावै।

× × ×

अभय दान भगवान प्रकट प्रभु साचो बिरद बुलावै,
कारन कौन दास परमानन्द द्वारे दाद न पावै।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास पदसग्रह से, पद स० ३०१।

नन्ददास की कविता मे दैन्य भाव नही मिलता। उन्होंने भगवान् की महिमा का वर्णन करके भक्त के लघुत्व का भाव प्रकट किया है।

मीरा तो अपने को कृष्ण की दासी ही समझती थी। एक पद मे वे कातर स्वर मे प्रार्थना करती है—हे भगवन्! आप ही मेरे जीवन के आधार है। आपके अतिरिक्त इन तीनो लोको मे मेरा कोई आश्रय नही, आपने मुझ दासी को क्यो भुला दिया![1]

मलयालम भाषा के कवियो ने भी हिन्दी के कवियो के समान दैन्य भाव प्रकट करते हुए अनेक पद गाए है।

एक अज्ञात कवि अपनी 'कृष्ण-लीला' नामक पुस्तक मे गोपियो द्वारा इस प्रकार प्रार्थना कराते है—हे भगवन्, हमारे दुःख दूर करने के लिए आपके अलावा और कोई भी नही। दीन दुःखी, अशरण लोगो का आश्रय आप ही है। सर्वव्यापी, सर्प पर शयन करने वाले हे प्रभो, आप वेदो को भी अज्ञात है। आप दुष्टो के सहारक है। हमे शरण देकर बचाइए।[2]

कृष्णगाथाकार चेरुश्शेरी दीन भाव से प्रार्थना करते है—हे भगवन्, कितने वर्षों मे हम विविध योनियो मे जन्म लेते और मरते आ रहे है। अपने कठिन दुःख का वर्णन मै कैसे करू। मरते समय आपकी सुन्दर मूर्ति का स्मरण हमे होवे।[3]

एजुत्तच्छन जरासन्ध के कारागार मे स्थित राजाओ द्वारा बडी दीनता से श्री कृष्ण की प्रार्थना कराते है—हे नाथ, रमारमण, विष्णो! आपकी जय हो। आपके अतिरिक्त अपने आश्रितो पर इतना अधिक स्नेह और किसे होगा? ऐसी सुबुद्धि दीजिए कि

---

१ हरि मोरे जीवन प्रान अधार ॥टेक॥
और आसिरो नाहीं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यो मती बिसार।
—मीराबाई की पदावली, दूसरा भाग, पद नं० ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २।

२ आलम्पाटकन्मान् नीयोझिन्जारु मिल्ल,
नीयल्लो पारोरेतु पालिन्नु पोरुन्नत,
नीयल्लो अगतिजन्नाश्रय माकुन्नत्,
नीयल्लो पालिक्केटु मोन्नायि निरुन्नत्
× × ×
नीयल्लो ओरो पेटि मट्टुलरकु पोरुन्नत्
पावर्णा नी पातुकोल्क [illegible]।
—श्री कृष्णलीला, तृतीय पाठ, पृ० ११, सं० मेनोन।

३ विष्णु म दिष्टु पिरन्नेय नालु-
[illegible]
× × ×
[illegible] मरित्तुन्न नेर।
—कृष्णगाथा, सं० [illegible], पृ० [illegible]।

हमारे मन मे काम, क्रोधादि षड्विकार न उत्पन्न होवे, हम माया-जाल मे न फसे। जिन चरण-कमलो की पूजा ब्रह्मादि करते है, उन्हीमे हमारा मन भी सदैव रमा रहे। आप हमे अपना बनाइए।[1]

श्री पून्तानम की प्रार्थना है—जैसे तिल मे तेल रहता है वैसे ही सारी वस्तुओ मे हे भगवन्! आपका निवास है। यह तथ्य बिना जाने मै भ्रम मे पड गया। हे प्रभो! मेरा पाप दूर करके मुझसे प्रसन्न हो।[2]

कुचन नप्यार आदि कवियो ने भी भगवान् कृष्ण से कृपा बनाए रखने की प्रार्थना की है। एक स्थान पर नप्यार लिखते है—हे करुणाकर, शरणागतप्रिय, धरणी के भार को दूर करने वाले, मृत्यु के समय मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखिएगा।[3]

सक्षेप मे दोनो भाषाओ मे ऐसी अनेक कविताए प्राप्त है जिनमे दैन्य भाव प्रधान है। कवियो का विचार है कि दैन्य भाव से अहकार का नाश होता है और चित्त मे अलौकिक आनन्द पैदा होता है। भक्त ने जब अपने अहकार को मिटा दिया तो पार्थिव पदार्थों की तृष्णा अपने आप चली गई। दीनता मे भक्त की उस असमर्थता के दर्शन होते है जो अशक्त बालक मे पाई जाती है तथा जिसके कारण बालक सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। शिशु माता की गोद चाहता है, परन्तु अशक्त होने के कारण चल नही सकता, वह रोता है और रोते-रोते विकल हो जाता है, तभी मा दौडी हुई आती है

---

१ नारायण जयनाथ हरे जय नारद सेवित नारक नाशन।

× × ×

मुट्टु निनक्कोन्नि ञ्ञिडुडने ञेवल मट्टोरुवक्कुमिल्लाश्रितवात्सल्य
तामस माय युगोत्भवमायुल्ल काम मोह क्रोध लोभ मानादियु।
भूमिपाल भ्रमाहकार भावव् कामिनि मारिलुल्लोरनुरागव्
माधव त्वन्महा मायतन् वैभव नाधिक्कर्कतिनि जड्डुने दैवमे।

× × ×

दुग्ध तुसादिकल्लोक्के वकलञ्ञिनि तृक्कालिण योट्टु चेर्तुरनिन्नु कोल्लणमे।

—भागवत सभापर्व, कवि एत्तुत्तच्छन, पृ० १५१, १८०।

२ एल्लल्लिल वर्न्नियल्लुमेरण कणक्के यात्मा,
वेलास्कु मेननरियाते मयङ्डिनेन् ञान
नल्लिक्कलञ्ञ सकल मम कन्नप ना
युल्लिल तेलिञ्ञुणरनेण मुरार कीर्त्ति ॥१२०॥

—पून्तानम का कृतिया, स० सूरनाट्, पृ० १३३।

शरणागत शरणानत करुणामय हरणा,
तरुणारुण किरणोद्य वदरुणामल चरणा
धरणीभर हरणा यदु रमणा मणि रमणा
करुणा कुरु मरणे मम यदु नायक शरणा।

—कुचन नप्यार, स० परमेश्वर, पृ० १३०

और बालक को उठाकर हृदय से लगाती है। ठीक उसी प्रकार करुणा भरे दीन भाव से द्रवित होकर भगवान् भक्त की सुध लेते है।

सख्य-भक्ति—

परमात्मा सुख-दु ख और आमोद-प्रमोद मे मेरा साथी है । वह मेरा परम मित्र है, बन्धु है, उसके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई ऐसा मित्र या बन्धु नही है, इस प्रकार के भाव का बोध सख्य-प्रीत या सख्य-भक्ति से होता है।

सूरसागर मे सूर ने सखा-भाव से अनेक बार श्याम मनोहर का स्मरण करते हुए पद लिखे है। सुदामा के प्रसग मे हमे सख्य-भक्ति का उदाहरण मिलता है । सुदामा-दरिद्र-भजन नामक प्रसग मे भगवान् कृष्ण ने अपने मित्र सुदामा के साथ एक सच्चे मित्र के समान ही आचरण किया। उसका वर्णन सूर यो करते हैं—कृष्ण ने दूर ही से अपने बालसखा सुदामा को देखा। सुदामा बहुत कमजोर दिखाई पडे। वे फटे-पुराने मलिन वस्त्र पहने हुए थे। अपने मित्र की दीन दशा देखकर उनकी आखे भर आई। वे अपनी शय्या से उठे और तुरन्त उनका स्वागत करके अपने आसन पर बिठाया। कुशल-प्रश्न करने के बाद सुदामा की भेंट के चिउडे वे चबाने लगे । मुट्ठी भर चिउडा खाते ही सुदामा की गरीबी दूर हो गई। दूसरी बार खाने के लिए हाथ बढाया कि रुक्मिणी ने रोका।[1]

मलयालम के कवि वारियर इसी प्रसग मे लिखते है—सुदामा बहुत गन्दा और फटा वस्त्र पहने था, उसके कन्धे पर एक उत्तरीय था। वह पोटली और धर्म-ग्रथ काख मे दबाए था। उसकी छाती पर भस्म लगी थी । फटा-पुराना छाता लेकर रुद्राक्ष माला फेरते हुए, भगवान् के ध्यान मे मग्न चला आ रहा था। महल की सातवी मञ्जिल से भगवान् ने उसे देखा, तो तुरन्त दौडे हुए आए और आसू बहाते हुए अपने मित्र को छाती से लगा लिया।[2] अन्त मे कवि पूछते है - कृष्ण के सिवा और किसीने इस प्रकार अपने मित्र

---

१. दूरहि तैं देख्यौ बलवीर।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर।
पौढे हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिनि चमर डोलावत तीर॥
उठि अकुलाइ अगमने लीने, मिलत नैन भरि आए नीर।
निज आसन बैठारि स्याम घन, पूछी कुसल कह्यौ मतिधीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमकौं, कहा दुरावन लागे चीर॥
दरसन परस हम भये सभागे, रही न मन मैं एकहु पीर।
सूर सुमति तंदुल चबात ही कर पकर्यो कमला भई भीर॥
—सूरसागर, खड दूसरा, पद स० ४८६६, पृ० १६८८, स० पुनरुक्ति।

२. कगदालेत्र फट मेम्रयु मुषिञ्ञ लेत्य तग्ग
पोटु तट्टुट्टुत्तिट्टुत्तरीयत्तुं इट्टु
शुटिल पोतिञ्ञ पोनिरु मुन्नाय पुन्नडु
रुडु [illegible] कयलिक्कुटरिन्गोटु

के प्रति समवेदना तथा सहानुभूति दिखाई है? गोचारण-प्रसग मे सूर ने लिखा है कि सख्य-प्रेम से प्रेरित होकर कृष्ण अपने बाल-सखाओ के साथ गाय चराने चले जाते है और उन्हें प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार की मनोरजक बाते वे करते है।[1]

परमानन्ददास भी सख्य-भाव से भगवान् की पूजा करते थे। वे कहते है—एक दिन एक गोप अपने सखा कृष्ण के साथ बैठकर, भोजन कर रहा था। उस समय उसने कहा—हे गोपाल! तेरे साथ बैठकर खाने मे मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन मै नही कर सकता। कई दिन से इस प्रकार का सुख खाने मे मुझे नही मिला था, यद्यपि हम सदैव एक-साथ कुमुद-वन मे रहते है। अन्त मे परमानन्ददास कहते है कि प्रभो, हास्य-विनोद द्वारा अपने सखाओ को आनन्द-सागर मे डुबा देते है।[2]

भद्रमाय भस्मवु धारिच्चु नमस्कार किए
मुद्र्यु मुखरमाय पोलिक्कुट्यु
रुद्राक्ष मालयु एन्ति नाम कीर्त्तनवु चेयतु
चिद्रूपत्तिन्कलुरच्चु चेन्व मे चेल्लु

× × ×

पाराते चेन्नेतिरेट्टु कुचेलने दीनतया
पारवश्य मेव मट्टोरीश्वरनुटो

—कुचेलवृत्त, ले० रामपुरत्तु वारियर, पृ० १०, ११।

१ राग सारग

चरावत वृन्दावन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल श्रिदामा डोलत है सुख पाइ।
क्रीडा करत जहाँ तहा सब मिलि अति आनन्द बढाइ,
बगरि गई गैया बन बीथिनि देखीं अति अकुलाइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछरु तिवाइ।
आपुहि रहे अकेले बन मैं कहुं हलधर रहे जाइ।
बशीवट सीतल जमुनातट अतिहि परम सुखदाइ,
सूर स्याम तब बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाइ॥

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद स० ११९८, स० सूर-समिति।

२ राग सारग

आजु दधि मीठो मदन गोपाल।
भावत मोहि तिहारो जूठो चचल नयन विशाल।
आके पान बनाये दोना दिये सबन को बाट,
जिन नहि पायो सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट।
बहुत दिनन हम बसे कुमुद बन कृष्ण तिहारे साथ,
ऐसा खाए हम कबहु न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ।
आपुन हँसत हँसावत ग्वालन मानस लीला रूप,
परमानँद प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद स० ४३२, अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, पृ० ६२५।

नन्ददास ने सूर या परमानन्ददास के समान सख्य-भक्ति के पद नही लिखे है। अपनी पुस्तक सुदामाचरित मे उन्होंने लिखा है कि सुदामा के समान सखा-भाव से जो भगवान् की पूजा करेगा उसे हरि सब सुख देंगे।[1] मीराबाई ने कृष्ण भगवान् को पति और स्वामी मानकर ही पूजा की थी। उनकी कविताओ मे सख्य-भक्ति के पद प्राय नही मिलते है।

मलयालम भाषा के कवियो ने लिखा है कि पांचो पाडव और द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण की सख्य-भाव से भक्ति की थी। उसके साथ ही साथ बाल्यकाल के समय बाल कृष्ण ने अपने मित्रो के साथ बडे प्रेम के साथ व्यवहार किया था, इसका चित्र भी हिन्दी के कवियो के समान चेरुश्शेरी आदि ने खीचा है। श्री कृष्ण की युवावस्था के समय की प्रमुख घटनाओ का वर्णन सूर आदि ने केवल सरसरी दृष्टि से लिखा है, किन्तु एजुत्तच्छन आदि कवियो ने बडी तन्मयता से उन घटनाओ का वर्णन किया है। सख्य-भाव से भगवान् की पूजा करने वालो मे प्रमुख पाडव अर्जुन हैं। कृष्ण अपने मित्रो की सहायता करने मे सदा जागरूक रहते थे। बचपन मे कृष्ण अपने मित्रो को किस प्रकार प्रसन्न रखते थे उसका चित्र चेरुश्शेरी ने इस प्रकार खीचा है। 'कृष्ण बडे भाई के साथ गाय चराने के लिए निकले। गोपियो ने दोपहर के समय खाने के लिए पकवान दोनो में भरकर दिया। उसे लेकर कृष्ण मित्रो सहित वन के मध्य मे पहुचे। उन्होंने उनसे कहा—हमे एकसाथ बैठकर खाना चाहिए। साथियो ने यह प्रस्ताव मान लिया। भोजन करते समय वे अनेक प्रकार से अपने बालमित्रो का चित्त प्रसन्न करने लगे। मयूरो के स्वरो और कोकिला के गाने का अनुकरण करते हुए वे उन्हे रिझाने लगे। विहगगण जब उडते तो वे उनकी छाया को पकडने को दौडते, हसो के पीछे चलते। जब बन्दर पेड पर चढते तो कृष्ण उनकी पूछ पकडकर नीचे गिरा देते। इसी प्रकार तमाशा दिखाकर कृष्ण अपने बालमित्रो को प्रसन्न रखते थे और वे भी परमानन्द का अनुभव करते थे।[2]

---

१ ऐसे जो कोऊ हरि को भजै, हरि दयारना ते सुख सजे।

—सुदामाचरित, नन्ददास शुक्ल, परिशिष्ट, पृ० ४५४।

२ उग्रङ्ङलायुल्ल व्यग्रङ्ङल तीर्त्तुन-
न्नग्रजनोटु पन्नन्नु चेम्मे
चारत्त निन्नुटन कन्नुकल मेय्यानाय
× × ×
नाले क्कालिच्चु नटन्नार पिन्ने
कोकिफल कूकपोन कूकटट्ङ्ङनार
कोफिन्न पाटुपोन प्यारि प्यारि
पक्षिगा पाटुपोन छाय पिटिप्पाना-
योसरे वेल्लाम्मोटि योटि
× × ×
पुरनट्टल नप्पुन्न पैनटनिट्टने
पमग्गुर्गारि पनिकुन्नेर।

—कृष्णगाथा, सं० राजराज वर्मा, पृ० ३८।

भारतम् ग्रंथ मे श्री एजुत्तच्छन ने अनेक स्थलो पर कृष्ण के मैत्री भाव का चित्रा-कन किया है। कृष्ण पाडवो की सर्वदा सहायता करते थे। जब कोई विपत्ति उनपर पडती थी तो वे कृष्ण की सहायता मागते थे। कृष्ण सब-कुछ छोडकर अपने सच्चे मित्रो की सहायता के लिए दौड पडते थे। धर्मपुत्र कहते है—कौरव और पाडवो के लिए आपके समान यथार्थ मित्र और कोई नही। हे भगवन्, आप दोनो के बीच मे समझौता करने की योग्यता रखते है।[1]

जब अभिमन्यु का निधन हुआ तो अर्जुन अत्यन्त दु ख से रोने-पीटने लगे। उस समय भगवान् कृष्ण आकर अपने मित्र को यो सात्वना देते है—अरे अर्जुन, मैने जो उप-देश दिया वह जल-रेखा के समान एकाएक बेकार रह गया ! जो जन्म लेता है वह अवश्य मरेगा। फटे-पुराने वस्त्रो को छोडकर मनुष्य नए वस्त्रो को पहन लेते है। उसी प्रकार है शरीर धारण करना। स्त्रियो के समान ढाढे मारकर रोना तुझे तनिक भी शोभा नही देता।[2]

एक स्थान पर भगवान् ने स्वय दारुक से कहा कि पाडव तो मेरे मित्र है, वे हमेशा मेरी पूजा करते है। अपने सेवको को छोडना मेरे लिए असम्भव है।[3]

श्री कुचन नम्प्यार ने अपनी कविताओ मे लिखा है कि पाडव भगवान् को मित्रवत् मानते थे। अत भगवान् कृष्ण अपने मित्रो की सहायता करने के लिए कपट वेष भी धारण कर लेते थे। युद्ध के प्रसग मे कवि लिखते है—कृष्ण ने सोचा कि दुर्योधन और मेरे परम मित्र अर्जुन मुझे अपने-अपने पक्ष मे मिलाने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा विचार कर

---

१ इन्नीक्कुरुक्कलक्कोक्केयु मुख्यनाकु सुहृत्त नी
सम्बन्धि दयितन नित्य रण्डु पक्षत्तिलु समन्
पाडुवकलाय् धर्त्तराष्ट्रक्कर्क्कनामयमण्यक्कण
समर्थन राग मुडावकान पोन्नोनङ्ङुन्नु केशव !
—श्रीकृष्ण नामक पुस्तक से पृ० १४६, ले० सि० पि० गोविन्द मेनोन।

२ निन्नोटु तन्ने ञान चोन्नोरुपदेश मिन्नु जलरेखयायितो फल्गुन।
जातनायाल मृतना मृतनायवन् जातनाभिङ्ङने जन्तु धम्म पुरा।
जीर्ण वस्त्रङ्ङलुपेक्षिच्चु मानवर पूर्ण शोभङ्ङला वस्त्रङ्ङल् कोल्लुवोर।
जीर्ण देह कलञ्ञव्वण्ण देहिकल् पूर्ण्ण शोभङ्ङला देहङ्ङले वकोल्लु।

× × ×

पेण्णुङ्ङले प्पोले दुखिच्चिवरियाते
—महाभारतम्, द्रोण, कवि एजुत्तच्छन, पृ० २३८

३ एन्नुटे सेवकन्मारेयुपेक्षिक्क
येन्नुल्लतोन्नु कोंटु वरा निर्णय,
—भारतम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २४०।

निद्रा का वहाना करके वे लेटे।[1]

मलयालम भाषा के कवियो ने सख्य-भाव-प्रधान भक्ति का आश्रय लेते हुए अनेक पदो की रचना की है। हिन्दी मे सख्य-भाव को इतना अधिक महत्त्व नही दिया गया है परन्तु जहा कही भी सख्य-भक्ति का प्रसग आ गया है, उसका निर्वाह हिन्दी-कवियो ने भली भाति किया है। अकेले नरोत्तमदास का छोटा-सा खडकाव्य सुदामा-चरित्र सख्य-भक्ति का अनुपम ग्रन्थ है।

वात्सल्य-भक्ति—

भगवान् को अपना वालक समझकर उपासना करना वात्सल्य-भक्ति है। वालक की तोतली वाणी, उसका निर्मूल रूप और उसकी मनोहर क्रीडाए आदि देखकर माता-पिता तथा अन्य गुरुजनो के मन मे उसके प्रति वात्सल्य-भाव सहज ही उमड पडता है। कृष्ण के वाल-रूप की उपासना मे वात्सल्य-भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

वात्सल्य-रस-प्रधान कविताए लिखने मे, सूरदास और परमानन्ददास जैसे कृष्ण-भक्त कवि वेजोड है। हिन्दी के अनेक विद्वानो का मत है कि वात्सल्य-रस-प्रधान श्रेष्ठ कविताए हिन्दी के अतिरिक्त किसी और भाषा मे नही है। मै मानता हू कि तद्विषयक वहुत सुन्दर कविताए हिन्दी मे है। साथ ही यह भी कहना चाहता हू कि मलयालम मे भी वात्सल्य-भाव-प्रधान सुन्दर रचनाए प्राप्त है। मलयालम मे ऐसी कविताओ की सख्या कम हो सकती है, किन्तु गुण की दृष्टि से कुछ कविताए उसी स्तर की होगी, उसमे सन्देह नहीं। कुछ तुलनात्मक उदाहरण नीचे दिए जाते है—

यशोदा अपने दुलारे पुत्र कान्ह को पालने मे लिटाकर सुलाने मे लगी रहती है। किसी प्रकार उनके लाल को नीद आ जाए, यही उनकी इच्छा है। वे उसे पालने मे लिटा-कर सुलाने लगती है। उसे सुलाने के लिए लोरी गाने लगती है—ऐ निदरिया, तू जल्दी आ, तुझे मेरा कान्ह बुला रहा है। इसी बीच कृष्ण कुछ-कुछ सोने लगते है। उन्हें सोता जानकर मा चुप हो जाती है। तभी कृष्ण जाग जाते है। मा फिर गाने लगती है। इस प्रकार माता यशोदा को वह दुर्लभ सुख सहज ही मिल जाता है, जो देवताओ और मुनियो के लिए पाना असम्भव है।[2] यहा सूरदास ने मा और बच्चे की मनोदशा का सच्चा और

---

१. यल्लिए समयि दुर्योधनन्
परम मत्तन् मन पार्थन् तान्
इन्यामेन्ने परिपनिनागि
वकरुति मन्नू नारायण जय

—भावरत्न, पनिनाट्टुरनाम्, रा० नम्बार, पृ० १।

२. राग धनाश्री

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।

स्वाभाविक वर्णन किया है। दूसरे पद मे माता की अभिलाषाओ की चर्चा बड़ी स्वाभाविक रीति से कवि ने की है, कृष्ण कब घुटने चलेंगे, कब उसके दात निकलेंगे, और कब वह अपनी तोतली वाणी मे बोलेगा। मुझे देखकर धीरे-धीरे पैर रखकर कब मेरे पास आवेगा। हलधर के साथ आगन मे कब घूमेगा आदि।[1]

सूरदास ने वात्सल्य-रस-प्रधान असख्य पद वियोग के प्रसगो मे लिखे है। उनमे उनकी बालभक्ति की झाकी मिलती है। कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले गए। अपने प्यारे पुत्र के विरह से यशोदा छटपटाने लगी। दु ख के मारे वे बिलख-बिलखकर कहने लगी—मेरे बच्चे को जाने से रोकने वाला व्रज मे कोई नही है। मधुपुरी के राजा ने किस उद्देश्य से मेरे बच्चो को बुलाया है। चाहे कस मेरे सब गोधन छीन ले, मुझे बन्दी बनाकर ले चले, मै यही चाहती हू कि मेरा कान्ह हमेशा मेरे सामने खेलता रहे, मेरी गोद मे बैठा रहे। हाय, अब आगे मै किसे हसती हुई बुलाऊगी—यह कहते-कहते वे मूर्च्छित हो गई।[2]

मेरे लाल कौं आउ निदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहि वेगिहि आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूदि लेत है, कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नद भामिनि पावै।

—सूरसागर, प्रथम खड, पद स० ६६१, स० सूर समिति।

१ मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ो किनि होहि,
इहि मुख मधुरैं बयन हसि कबहू जननि कहोगे मोहि।
यह लालसा अधिक दिन दिनप्रति कबहू ईशा करै,
मो देखत कबहू हसि माधव पगु ह्वै धरनि धरै।
हलधर सहित फिरै जब आगन चरण शब्द सुख पाऊ,
छिन छिन क्षुधित जान पद कारन हौं हठि निकट बुलाऊ।
आगम निगम नेति करि गायो शिव अनुमान न पायौ,
सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाष बढ़ायौ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १०६।

२ राग सोरठ
जसोदा बार बार यौं भाषै।
है कोउ व्रज मैं हितू हमारौ, चलत गुपालहि राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौ, नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ, काल रूप ह्वै आयौ॥
बरु यह गोधन हरौ कस सब, मोहि बदि लै मेलौ।
इतनोई सुख कमल नयन मेरी अखियनि आगे खेलौ॥
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अकम लाऊ।
तिहि बिछुरत जौ जियौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊ॥

परमानन्ददास के हृदय में भी गोपाल की क्रीडा देखकर वात्सल्य रस उमड उठता है।[1]

नन्ददास ने भी बाललीला का सुन्दर वर्णन किया है। उनका एक पद देखिए—रानी यशोदा अपने पुत्र को जगाती है और कहती है माखन, मिश्री, दूध, मिठाई और मलाई मैं लाई हूं। प्रिय पुत्र, उठो और कलेवा करो, तब कृष्ण उठकर तुतलाने लगे। जिन्हे सुनकर माता बहुत प्रसन्न हुई।[2]

सूर के समान चेरुश्शेरी नपूतिरि के बाललीला-वर्णन वात्सल्य रस से ओतप्रोत हैं। माखन चोरी का प्रसग विशेष रूप से सुन्दर है। कृष्ण के कपट व्यवहार और कुशलता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं एक दिन कान्ह के हाथ मे यशोदा ने कुछ माखन दे दिया। तुरन्त ही उसे खाकर वे कहने लगे—'अरी मा! मैंने साधारण रीति से माखन खाया। किन्तु वह अभी मेरे गले के अन्दर अटक गया है। बडे सकट मे पडा हू। बिना कुछ दूध पिए वह नीचे नही उतरेगा।' इस प्रकार कहकर कान्ह आखे फाडकर देखते रह गए। बेचारी मा ने समझा, कान्ह का कहना ठीक है। उसी दम दूध देकर पूछा, 'अब कैसा है?' तब कान्ह मुसकराते हुए बोले, 'अरी मा, यदि इस प्रकार बहाना न करता तो तू मुझे दूध देने का नाम न लेती। अब मैं तृप्त हो गया हू।' यह सुनकर मा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।[3]

कमलनयन मुख टेरत टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगटि जनाऊँ, दुखित नन्द जु की रानी॥
—सूरसागर, दूसरा खंड, पद न० ३५९१, न० सूर समिति, पृ० १२७३।

१ बाल विनोद गोपाल के देखत मोहि भावै।
प्रेम पुलकि आनन्द भरि जसोमति गुन गावै।
बाल समेत घन सांवरो आंगन में धावै,
बदन चूमि कोरा लिये सुत जानि खिलावै।
सिव विरंचि मुनि देवता जाको अन्त न पावै,
सो परमानन्द स्वामि को भलो मनावै।
—डा० गुप्त के परमानन्द-पदसंग्रह से, पद स० १३, अष्टछाप, पृ० ६२०।

२ अपने सुतहि जगावति रानी।
उठो मेरे लाल मनोहर सुन्दर, कहि कहि मधुरी बानी॥
माखन मिश्री और मिठाई, दूध मलाई आनी।
हगन मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे मन सुखदानी॥
जननी वचन सुनत उठि बैठे, कहत कान तुतरानी।
'नन्ददास' प्रभु निरखि जसोमति, मन ही मन हरषानी॥१॥
—नन्ददास, अष्टछाप के कवि, डा० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१७।

३. निरन मायरण्डु दिसुद्द न्नेन्नले
सभर लिन्नु विडुडु न्नेर।
नारिल न्नन्नु लिनन्निन्नु पोयि

एक अज्ञात कवि ने कृष्ण की बाललीला का वर्णन इस प्रकार किया है—कृष्ण अपने मित्रो के साथ वन जाने की इच्छा से यशोदा की गोद मे उनकी अनुमति पाने के लिए बैठे। मा ने उन्हे छाती से लगाया और दूध पिलाकर बडा दुलार किया। तब कृष्ण बोल उठे, 'मा, मेरे बत्तीस साथी है। वे वन मे जाकर खेलना चाहते है, उनके साथ मुझे भी जाने दो मा।' यशोदा कह उठी, 'अरे, रे, मत जा, मत जा, मेरे प्यारे, बडी कडी धूप है।' कृष्ण कहने लगे, 'मुझे मत रोको मा। हमे खाने के लिए घृत, दधियुक्त चावल दो, मेरी वशी भी दे दो। मेरी अच्छी मा।' इतना कहकर माताजी की गोद से उठकर वे भाग गए।[1]

कालिय-दमन के प्रसग मे कृष्ण ठीक समय पर घर न लौटे। यशोदा व्याकुल हो अपनी सखी से पूछती है—मेरा कान्ह अभी तक नही आया। कल इसी समय वह आ गया था। गायो को न देखने के कारण वन मे भटकते-भटकते उसके पैरो पर काटे न लग गए हो? अथवा पेड से वह न गिरा हो, या रास्ता भूल गया हो, कोई बाघ उसके ऊपर न झपटा हो, कि वह लडको के साथ झगडते-झगडते थककर गिर गया हो। खाना ठडा हो रहा है। मेरी छाती जल रही है। आगे वे कहती है, माताए सर्वदा दु खी हुए बिना नही रह सकती। ऐसा मालूम होता है, पिछले जन्म के शत्रु ही इस जन्म मे पुत्र होकर दु ख पहुचाते है। मैं दिन रात अपने प्यारे पुत्र की चिन्ता मे लगी रहती हू। गायो के गले की घटियो की आवाज़ भी नही सुनाई पडती। शायद पूतना की सखियो ने मेरे बच्चे को मारा हो अथवा, कालिन्दी नदी मे नहाते समय कालिय नाग ने ही डस लिया हो।[2]

× × ×
अप्पोजे निन्ने ञानिङ्ङने वचिच्चे-
निप्पोजेन्नुल्ल कुलुर्तुवल्लो। —कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० २३।

१ ओमन वकुट्टन गोविन्दन वल रामने क्कुटे कूटाते।
कामिमणियम्मतन्नक सामनी चेन्नु मेविनान।
अम्मयुमप्पोल् मारणच्चिचट्टङ्ङुम्भ वेच्चु किटाविने।
अम्मिञ्ञु नलि्क यानन्दिप्पिच्चु चिन्मयनप्पोल ओतिनान्
ओप्पत्तिलुल्ल वालकराइ मुप्पत्तिरण्डु पेरुण्डु
अप्पित्तलेराय्वनत्तिल कलिप्पान इप्पोल ञानम्मेपाकेट्टे
अय्यो एन्नुरिण इप्पोल पोकोल्ले तीयुपोतुल्ल वेयिलल्ले
वेरुने एन्नम्म तटयोल्ले केट्टो परिचोटुरिणकल यकुरुणुवान
नरु नेय् कूट्टियुरुट्टीटट्टु नल्लोरु तयिर कूट्टि युरुट्टीट्टु
वरुत्तोरुपेरि पनिच्चिचेट्टु ईरडुरलयुं एन्टे मुरलियु
तरिक एन्नम्मे मटियिल चाचाटि तरसा कण्णन तान पुरप्पेट्टान।
—श्रीकृष्णविलासम्, स० डा० अच्युत मेनोन, पृ० २४।

२ एन्मकनेतुपोल वाराञ्ञ् तोञ्ञि चो
ल्लिन्नले यिन्नेर वन्नानल्लो
कालिकल काणाञ्ञु काट्टिल नटक्कुम्पोल
काल तन्निल मुल्लु तरच्चितलल्लो

पुत्र के वियोग मे माता की व्याकुलता और शका का उदाहरण यहा दिया गया है। एजुत्तच्छन के कृष्ण की बाल-लीला का एक उदाहरण देखिए—कृष्ण ने माखन मागा तो तुरन्त मा ने एक हाथ पर उन्हे दे दिया। तब वे बोले, 'मेरी मा! देख, तूने एक हाथ में माखन रखा है। दूसरे हाथ मे माखन न रखने के कारण वह रो रहा है।' उसी दम उस हाथ मे भी मा ने माखन रखा। कृष्ण ने एक हाथ का माखन तुरन्त खा लिया और रोने लगे। यशोदा ने कारण पूछा तो कृष्ण ने उत्तर दिया, 'अरी मा, एक कौवा आकर मेरा माखन छीन ले गया, मै बडा बेवकूफ निकला।' इतना कहकर फिर भी कृष्ण रोने का बहाना करके खडे रहे। यह देखकर यशोदा ने तुरन्त फिर माखन दे दिया और मधुर बातें कहकर उन्हें शान्त किया।[1]

कालिय-नाग के दर्पहरण के प्रसग मे एजुत्तच्छन ने पुत्र-वियोग का हृदय-विदारक वर्णन किया है। कृष्ण की विरहाग्नि मे तडपती हुई यशोदा कहती है—यदि पुत्र नही है तो हमेशा दु खी होना पडता है। पुत्र के जन्म के बाद उसे पाल-पोसकर बडा करना अत्यन्त क्लेशकर है। मेरे लिए कोई सहारा नही। मेरे समान दु ख सहने वाली को सुख मिलना असम्भव है। दु ख झेलने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। पुत्र के अभाव मे कितने दिन मै

कायकन्ने यकोल्लुवान पाजमर नेरीट्टु
कानन तन्निले वीणानो तान्
चालेत्तट्टु तेलिक्कुन्न नेरत्तु
कालिकल कुत्ति यक्कुन्निल्लल्ली
कानन तान्निले नल पक्षि काणान्नु
दोननाय निन्नड्ड जन्मानो तान
× × ×
कालिन्दि तन्निन् कुलिक्कुन्न नेरत्तु
कालियन् यन्नु पटिच्चानो तान्।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ४० ।

१ चेट्टु ननर्नंगनु पोत्तु वन्नुट
नेट्नु पुरान यन्तु कराट्टे
यन्नान्तु कएडु मन्दग्निनान
न चुनुनुग्गि चोन्नान भवतिरि
मिल्मन्नान्नुन्नायेन्नुटे
रत्त गेन्निन्नट्टो। वेत्तु नलकोटिनाल
नट्टेनितु तोन्नु रामनेतानें
मुट्टु नन्कुपोतोपानेदो
× ×
चेन्नु सिवोट्टु चुट्टन्नपाम पोन्नु,
यन्नु पोट्टुत्तु तन्नोटिनाल मेन्नने।

—भागवत्, दशम स्कन्ध, से० रघुरामन्, पृ० २५८ ।

दुखी रही। पुत्र-जन्म के बाद भी दुख पर दुख आता ही रहता है। हाय! मेरा प्यारा कान्ह अभी तक घर न आया।[1]

पून्तानम नपूतिरि ने कृष्ण के बारे मे जो कुछ लिखा है उसमे उनकी वात्सल्य-भक्ति का परिचय मिलता है। वे कहते हैं—कृष्ण नन्हे पैरो से नाचते-कूदते हैं। कमरबन्द की सोने की घटिकाए आपस मे टनाटन बजती रहती है। सिर पर उन्होने मोर-मुकुट पहना है। वह तोतली बोली बोलते है। उनका शरीर सुन्दर है। सखाओ के साथ वे वशी बजाते हैं। यह रूप सर्वदा मेरे सामने सदा प्रत्यक्ष हो जाए।[2] कवि आगे कहता है, दर्पण मे अपना रूप देखकर कृष्ण विचार करते हैं कि यह मेरा सखा है। तुरन्त वह आइने से आलिगन करते है।[3] बालक के ऐसे भोले स्वभाव का चित्रण कुछ ही कवि कर सके हैं।

कृष्ण की नटखटी का वर्णन करते हुए कुचन नप्यार एक गोपी द्वारा कहलाते हैं यशोदे, तुम्हारे प्यारे कान्ह ने मेरे घर मे जो अनाचार किया है उसे सुन लो। मैंने पिताजी के लिए थोडा दूध गरम करके कमरे के कोने मे एक सुरक्षित स्थान पर रखा था। कान्ह छिपे-छिपे घर के अन्दर घुसा, सारा दूध पी लिया, और पात्र मे जल भरकर चला आया। पिताजी ने अधेरे मे जाकर उसे पी लिया तो मालूम हुआ कि दूध नही बल्कि जल है।

---

१ मक्कल तनिक्कोन्नु मिल्लाक्किलेप्पोल
दुखिच्चिरिक्कयेन्नाय्वरु इश्वरा।
पेट्टु वलर्त्तु कोल्वानु पणि तुलो
मट्टुमिल्लोरावारमोतोलय्यो।
चित्ते विचारिक्क पुत्र सपत्तिकल।
इत्र परिभ्रमिक्कुन्नवराल्लु।

× × ×

ओट्टुमट्टु वन्नालेन्गकन पशु,
कुट्टिकलोन्चकल् केट्टितल्लेडड मे।
—भागवतम्, दशम स्कन्ध, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २७२

२ उण्णिक्काल् कोट्टु नृत्तङ्ङलुमर निरये किकङिङणि वप्पोन्नरञ्ञा,
तृण्णक्कौ कोट्टु तालङ्ङलुमणि मुटियिल पिच्छव् कोञ्चत्वारपु
उण्णि ककण्टे पू पै कुजल विलियु अट्टुत्तुल्ल चिल्प्पिलरु मे
कण्णाल् ककाणुन्न पोले मनतलिरितुदिक्केणमोनकुंपोजेल्ला ॥१६॥
—पूतानम् की कृतिया, स० मूस्सत्, पृ० १०।

३ कण्णटियिल कण्टुकलाय रम्य। कण्णत् तेलिञ्ञोरु मुखारविन्द ॥
चङ्ङातियेन्निट्टु चिरिच्चु कण्णन। कण्णाटि पूणुन्नतु कण्टातावु ॥२८॥
—पूतानम् की कृतिया, स० मूस्सत्, पृ० ६५।

मारे क्रोध के उन्होंने मुझे बुरा-भला कहा। और मेरे सामने बर्तन तोड डाले।[1]

वात्सल्य-विरह की अनुभूति मे कुचन नम्प्यार ने बहुत कम पद लिखे है।

सूरदास के समान चेरुश्शेरी और एजुत्तच्छन ने अनेक पद लिखे हैं, जिनके उदाहरण ऊपर दिए गए हैं। वात्सल्य-भाव का तथा बालरूप मे कृष्ण का जैसा स्वाभाविक और प्रचुर चित्रण और उस भक्ति का प्रकाशन हिन्दी मे हुआ है वैसा मलयालम भाषा मे नही हुआ है।

मधुर भक्ति

माधुर्य-भक्ति के सम्बन्ध मे चैतन्य सम्प्रदाय के श्रीरूपगोस्वामी का कथन है कि माधुर्य एक पृथक् रस है। कृष्ण और गोपिया तथा व्रजबालाए आदि इनमे उद्दीपन विभाव है। स्वेद, कप, रोमाच, विवर्णता आदि अनुभाव है। निर्वेद, हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव है। कृष्ण मे रति स्थायी भाव है। शृगाररस के समान विप्रलभ और सयोग अवस्थाए भी इसमे पाई जाती है।[2]

शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य मे भिन्न है मधुर रस। शान्त रस मे भक्त भगवान् की सगुण मूर्ति का चिन्तन करता है, दास्य मे भगवान् की विभूति चिन्ता मे लीन होकर उसका गायन करता है। सख्य मे भगवान् को सखा मानकर उनसे अत्यधिक घनिष्ठता का संबध रखता है और वात्सल्य मे भगवान् की बाललीला का आस्वादन करता है। मधुररस मे भक्त भगवान् को पति के रूप मे देखता है। उनको सारा जगत् भगवान्मय ही दिखाई पडता है। किसी सुन्दर युवक को देखकर युवतियो के मन मे प्रेमभाव जाग उठता है वैसे ही भक्त लोगो के मन मे भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। वह प्रेम, विभाव, अनुभाव आदि से मधुर रस बन जाता है।

सासारिक प्रेमभाव का निग्रह करना विश्वामित्र और पराशर प्रभृति मुनियो के लिए भी कठिन था, फिर षड्रसयुक्त भोजन का आस्वादन करने वाले साधारण लोगो के लिए, काम-क्रोधादि विकारो पर विजय पाना असाध्य ही है। अतएव ज्ञानियो और सतो का मत है कि भगवान् की सेवा करते हुए वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है। दूसरी ओर सूरदास जैसे भक्त-कवियो ने बताया है कि मन मे स्थायी रूप से रहने वाले प्रेम या वात्सल्य को ईश्वरोन्मुख कर देना उचित है। इन कवियो ने स्वय अपने व्यक्तित्व

---

1. मनोन पल्लानोर गेल नाले। त्वन् पुत्रनानुएिन नल्ल पुत्रोन्
गल्ल्तने वन्नु पलनोन्नानन्नेन्नर चेट्टनेल्लनल्ल चेन्
× × ×
दुष्टता नी चेन्नु परञ्ञु मिन्ना। पोट्टिच्चेट्टिल्लनल्लन्टे नेरे
—श्यानन्दि नजिब्बानन्, टै० कुचन नम्पार, पृ० २५।

2. भक्तिरसामृतसिन्धु-पश्चिम विभाग, लहरी, पृ० ४०६।
सत्त—मलयालम-भक्तसाहित्य, डि० सा० गुप्त।

की प्रतिष्ठा गोपियो मे करके, कृष्ण के प्रति अपने प्रेमोद्गार प्रकट किए है और सर्वगुण-समन्वित कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण करके अपने जीवन को सफल बनाया है।

सूरदास और चेरुश्शेरी आदि कवियो ने भगवान् के प्रति अपने प्रेम को 'लौकिक' रूप देकर उसे स्वाभाविक और बोधगम्य बनाने की चेष्टा की है। 'गोपिया' उनके इस अटूट प्रेम की अभिव्यक्ति का साधन एव आलबनमात्र है। वे गोपिया भी कृष्ण की भाति अवतारी है अर्थात् उन्होने पूर्व-जन्म के पुण्य-बल से भगवान् की सगति का सुख भोगने के लिए अवतार लिया है। सूरदास ने उन्हे महर्षियो, वेद, स्मृतियो और ऋचाओ का अवतार बताया है। साराश यह कि कृष्ण और गोपियो का प्रेम शुद्ध सात्त्विक और आध्यात्मिक है। साधारण जन भूल से ही ऐसा समझ लेते है कि कृष्ण के रूप पर आसक्त गोपिया लोकलाज की चिन्ता न करके सामाजिक मर्यादा का उल्लघन करती है। वस्तुत कवि का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि जिस भगवान् को प्राप्त करने के लिए ऋषि-मुनि ससार-त्याग करते है, उसे गोपिया इहलोक मे ही अपने शुद्ध तथा आनन्द-प्रेम द्वारा प्राप्त कर लेती है।

हिन्दी-कवियो ने लिखा है कि गोपिया ने कौमार्यावस्था से ही कृष्ण को पति के रूप मे वरण कर लिया था। यद्यपि विवाहित स्त्रिया भी उनसे प्रेम करती थी परन्तु उनकी सख्या कम थी। 'जार'-भावना प्रदर्शित करने वाले पद हिन्दी मे बहुत कम है। सूरदास, नन्ददास तथा अन्य कवियो के मतानुसार राधा श्री कृष्ण की परिणीता स्त्री है। नन्ददास की एक सखी कहती है—हे सखी, श्री कृष्ण के साथ राधा के व्याह का शुभ अवसर निश्चित कर लिया गया है। उपहार मे दी जाने वाली विविध रग की गाए स्थान-स्थान पर सुशोभित है। भूषण आदि देखकर मुझे बडा लोभ होता है। राधा-कृष्ण को वधु-वर के रूप मे देखकर मैं बलि जाती हू।[1]

नन्ददास ने परकीया के रूप मे भी गोपियो का चित्र खीचा है। परकीया भाव की उत्कृष्टता की प्रशसा करते हुए वे लिखते है, विवाहित गोपिया कृष्ण का अपूर्व सौन्दर्य देखकर कृष्ण से सच्चा अनुराग करने लगी। अपना 'गुण-दोषमय शरीर' छोडकर उनसे मिली।[2] लोक-लाज छोडकर अपने स्वजनो की ताडना की उपेक्षा करके गोप स्त्रिया श्री कृष्ण

---

१ राग नट

सजनी आनद उर न समाऊ।
बरसाने वृषभान लगन लिखि पठई है नँद गाऊ।
धौरी धुमरी धेनु विविध रग शोभित ठाऊ ठाऊ।
भूषण मणि गण पार नाहिने सो धन देख लुभाऊ।
नन्ददास लाल गिरधर की दुलहिन पर बलि जाऊ॥

—नन्ददास, शुक्ल, परिशिष्ट भाग, पृ० ३७४।

२ तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह।
जाइ मिली करि परम सनेह।

के पास चली गई। ऐसे चित्र सूर ने भी बडी सुन्दरता से खीचे हैं। सूरदास लिखते हैं—प्राणप्यारे कृष्ण की मुरली ध्वनि, और सुन्दर रूप आदि से हम (गोपिया) बहुत प्रभावित हुई है और प्रेम-वेदना से हम तडप रही है। सुजान कृष्ण के आलिगन से ही हमारी व्यथा दूर हो जाएगी।[1]

माधुर्य-भाव से भगवान् का स्मरण करने वाले भक्तो मे मीरा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वे कहती हैं—गिरधर गोपाल के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। साधुओ के साथ बैठकर मैंने लोक-लज्जा छोड दी है। भक्ति से मैं प्रमत्त हुई और ससार की दशा देखकर मुझे बडा दु ख हुआ। मैं गिरधर की दासी हू।[2]

एक दूसरे पद मे वे कहती है कि मैं गिरधर के घर जाती हू। वे मेरे प्रीतम हैं।[3] एक अन्य पद मे भगवान् से अपने सबध की उन्होंने यो व्याख्या की है . तुमको बिना देखे मैं एक घडी भी रह नही सकती। तुम मेरे प्राण हो, तुम्हारे विरह मे मैं मारी-मारी फिरती

जद्यपि 'जारबुद्धि' अनुसरी,
परमानन्द कद रस भरी।

—दशम स्कन्ध, भाषा, नन्ददास, शुक्ल, पृ० ३२१,३२२।

१ राग धनाश्री

मन मृग बेध्यो मोहन नैन बान सों,
गूढ़ भाव की सैन अचानक तकि ताक्यो भृकुटि कमान सों।
× × ×
ह्वै है सुख तबही उर अन्तर आलिंगन गिरिधर सुजान सों।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रेस, पृ० २१२।

२ राग झिंझोटी

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाँडि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गयी, आणंद फल होई।
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोही॥

—मीरापदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १५, पृ० ६।

३ राग सुनरुणी

मैं तो गिरधर के घर जाऊ॥ टेक॥
गिरधर म्हारो साचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊ।
× × ×
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊ॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १६, पृ० ७।

हू । मुझे नीद नही आती और ध्यान भी मुझे अच्छा नही लगता। मेरा दु ख कोई नही जान सकता ।[1]

भगवान् कृष्ण के प्रति मीरा का यह भाव साधारण प्रेम नही प्रत्युत उनकी सच्ची साधना है। वे कहती है—मेरी नीद समाप्त हो गई है। प्रिय की प्रतीक्षा करते-करते रात बीत गई । सब सखियो ने मिलकर सान्त्वना दी। किन्तु प्रिय को देखे विना कल नही पडती। जैसे चातक बादलो से वर्षा के लिए रट लगाए रहता है और मछली पानी (कृष्ण) के लिए छटपटाती रहती है वैसे ही मेरे प्राण अपने पतिदेव (कृष्ण) से मिलने की उत्कठा मे रहते है ।[2] सच्चे भक्त या ज्ञानी की मानसिक अवस्था के समान ही मीरा की दशा है। अनन्य भक्तिभावो से ओतप्रोत और सासारिक जीवन से विरक्त भक्तजन अपने आराध्यदेव के स्मरण मे जिस प्रकार तल्लीन दीख पडते है, वैसे ही मीरा अपने पतिदेव की चिन्ता मे सब-कुछ भूल बैठी है। यह प्रेमावस्था की चरम सीमा है। कई दिन प्रतीक्षा करने पर भी भगवान् प्रत्यक्ष नही होते। तब विरह-वेदना से तडपती हुई वे कहती है—मै अपने प्रीतम को पत्र लिखूगी। जान-बूझकर उन्होने मौन धारण कर लिया है। ऊचे महल पर चढकर मै उनकी बाट जोहती और अश्रुधारा बहाती रहूगी। मेरा हृदय फटा जाता है। हे मेरे पूर्वजन्म के साथी ! तुम कब मिलोगे ?[3]

---

१ राग पहाडो

घड़ी एक नहि आवड़े, तुम दरसण विन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जो, कासू जीवण होय।
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोहि।
घायल सी घूमत फिरू रे, मेरो दरद न जाणे कोय।

× × ×

मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होइ ॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १०१, पृ० ३७।

२ राग आनन्द भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पथ निहारत, सिगरी रैण विहानी हो॥टेक॥
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानो हो।
विनि देख्या कल नाहि पड़त, जिय ऐसी ठानो हो।
अगि अगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड न जानो हो।
ज्यू चातक घनक रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहणी, सुध बुध विसरानी हो॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० ८७, पृ० ४३।

३ मेरे प्रियतम प्यारे राम कू, लिख भेज रे पाती॥टेक॥
स्याम सनेसो कबहुं न दीन्हों, जानि बूझ गमवानी।
डगर बुहारू पथ निहारू, जोइ जोइ अखियां राती।

इस कथन से स्पष्ट है कि मीरा की दृष्टि मे उनका प्रेम-संबध आध्यात्मिक था और पूर्वजन्म मे भी उन्होंने कृष्ण को पति मानकर आराधना की होगी। जिससे इस जन्म मे उनकी भक्ति और भी प्रबल हुई। ज्ञानी या योगी जिस प्रकार ब्रह्म के ध्यान मे लीन रहते है, वैसे ही मीरा भी दिन-रात प्रेम मे सब-कुछ भूली बैठी है। श्रीधरनागर के अतिरिक्त किसी और की ओर उनका ध्यान जाता ही नहीं। ईश्वर के प्रति उनके अनन्य प्रेम का पता उनके प्राय प्रत्येक पद से चलता है।

प्रेम की महिमा पर रसखान ने कई पद रचे है। वे कहते है—प्रेम का नाम लोग लेते है, किन्तु उसका मर्म वे नही जानते,[1] जो सच्चे प्रेमी है वे फिर इस ससार मे जन्म नही लेंगे।[2] सच्चे प्रेमी होने के कारण ही वरुण 'जलधीस' और शिव-मगलकारी बन गए। प्रेमियो को मान, अपमान, सुख-दुःख आदि की द्वंद्व भावनाए नही होती।[3] काम क्रोध आदि विकारो से प्रेमी का मन चचल नही होता।[4]

प्रेम-भावना से प्रभावित व्यक्ति का चित्र ध्रुवदास खींचते है प्रेम का मन खाने-पीने के सुख से अप्रभावित रहेगा। जिसने प्रेम-रस का आस्वादन किया है उसका मन और किसी वस्तु पर न लगेगा। रात दिन प्रेमी का चित्र प्रेम-रस से समाया रहेगा। अपने प्रेम मे सबधित बाते ही उसे अच्छी लगती है।[5]

राति दिवस मोहि कल न परत है, हीयो फटत मेरी छाती।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरब जनम के साथी॥
—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १२४, पृ० ४२।

१ प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जाने प्रेम तो, मरे जगत क्यों रोय।

२ प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर सरित बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नहीं रसखान॥

३ लोक वेद मरजाद सब, लाज काज सन्देह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह॥

४. काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सब ही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य॥
—प्रेमवाटिका, ले० रसखान, ब्रजमाधुरीसार से, स० श्री वियोगी हरि, पृ० २२२-२२४।

५ खान पान सुख चाहत अपने, तिनको प्रेम सुपन नहिं सपने।
जो या प्रेम हिंडोरे झूलैं, तिनको और सबै सुख भूलै।
प्रेम रसासव चाख्यौ जबही, और रस [illegible], भये [illegible]।
या रस में जब मन परै [illegible] नेह की गति ह्वै जाई।
निसि दिन नाहि न कछू सुहाई प्रानन के संग रहै समाई।
जाको चाख्यो है मन मान्यो, सो ही ताके हाथ बिकान्यो।
सब ताके [illegible] की बातें, प्यारी [illegible] लागनि [illegible]।
[illegible], सो तो [illegible] जानै, ऐसो नेह की रीति बखानै॥
—[illegible], स० वियोगी हरि, पृ० २४८, २४३।

मलयालम भाषा के कवियो ने श्री कृष्ण की प्रेमिकाओ मे अधिकाश गोपियो को परकीया नायिका के रूप मे चित्रित किया है । अत भगवान् के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा । उनको मालूम था कि अपने पति को छोडकर कृष्ण के पास जाना समाज के नियमो का उल्लघन करना है। किन्तु कृष्ण की मोहिनी मुरली सुनते ही वे अपने प्यारे पुत्र, पति, बूढे मा-बाप, समाज के सभ्य लोग, इन सब की परवाह न करके सब-कुछ भूलकर भगवान् के पीछे दौड पडती है। उन्हे सर्वदा श्री कृष्ण का ध्यान रहता है। सारा जगत् उन्हे कृष्णमय दीख पडता है। ज्ञानी, यती और तपस्वी सब लोगो का ध्येय भी इसी स्थिति तक मन को पहुचता है। यहा ऊच-नीच अपना, पुराना-दु ख-सुख आदि कुछ नही होता। गोपिया प्रेम भाव से यह स्थान प्राप्त कर सकी।

श्री चेरुश्शेरी लिखते है—जब श्याम ने वशी बजाई, उस समय वृन्दावन की गोपिया दुहना और उबालना, बच्चो को लोरी सुनाकर सुलाना, बच्चो को दूध देना, पतिदेव के साथ भोजन करना, बिछौना बिछाकर अपने पतिदेव के साथ सोने के लिए जाना, प्रेमी के साथ पान खाना, कृष्ण को अपने स्वामी समझकर उनके सामीप्य के लिए आखे डबडबाती हुई प्रार्थना करना आदि विविध कामो मे व्यस्त थी। मुरली का स्वर सुनकर वे सब गृह-कार्य त्यागकर मन्त्रमुग्ध-सी निकल पडी।[1]

एक स्त्री एक आख मे काजल लगाने के बाद दूसरी आख मे काजल लगाने जा रही थी कि मुरली की ध्वनि सुनाई दी, उसी दम सब-कुछ छोडकर वह दौड पडी। दूसरी एक कान मे कुण्डल पहन रही थी। उसने वशी नाद सुना तो बेसुध होकर दौडी। गोपियो का यह दौडना-भागना देखकर उनके भाई, मा-बाप, पतिदेव आदि निकट सबधियो ने

---

१ पाल्क्कुज तन्नेयेट्टुत्तडहु चेन्निट्टु
गोक्कले निन्नु करन्नारप्पोल
आक्कमियन्नुल्ल चेल्क्कणिय्मार चिलर
पाल्क्कलमोक्कवे तीक्कल वेच्चू
बालकन तन्नुटे लीलकल् पाटीट्टु
पालु तिकत्तिनार मेत्ले मेल्ले
तन्मकन तन्ने येटुत्तड्डु लालिच्चु
नन्मुल नलिकनाल मट्टोरुत्ति
× × ×
गोकुल नारिमार ओरोरो बेलयि
लाकुल मारायि [निन नेर
× × ×
पोटिड्ड नो येन्नु चोत्लि वनिन्चिट्टु
नेरे नटत्तितुटडीनप्पोल

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६५-६६।

उन्हें रोका। कवि कहते हैं कि इसपर भी वे नहीं रुकीं, क्योंकि उनको आकर्षित करने वाला सबसे अधिक प्रबल है।[1]

मधुर-भक्ति के अन्तर्गत वियोग भाव को प्रकट करने वाले अनेक पद दोनों भाषाओं के कवियों ने लिखे हैं। इन पदों में अपने प्रिय से मिलने के लिए गोपियों का तरसना और कामना करना आदि का सुन्दर चित्र खींचा गया है। विरह-व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्र सूर इस प्रकार खींचते हैं—

राग सारंग

कहो तो जो कहिवे की होई।
प्राण नाथ बिछुरे की वेदन जानत नाहिन कोई।
जो हम अधर सुधा रस लै लै, रही मदन गति मोई।
कहा कहौं कछु कहत न आवै तन मन रही समोई।
विरह व्यथा वेदन उर अन्तर जापे बीते जाने सोई।
सूरदास शिव सनकादिक लोभा सो हम बैठे खोई।[2]

परमानन्ददास का एक पद है :

राग सारग

मारग माधौ को जोवें।
यह ननुहारि न देख्यो कोऊ जो नैन दुख खोवे।
बाल विनोद किये नंद नदन सुमिरि सुमिरि गुनरावे।
बासर प्रति गृह काज न भावै जिस मरि नींद न सोवें।
अन्तर गति की बिथा मानसी मो तन अधिक बिगोवें।
परमानन्ददास गोविन्द बिन ग्रांसुवन जल उर धोवे।[3]

नन्ददास कहते हैं कि वियोग के अवसर पर सब कुछ प्रियमय ही दिखाई पड़ता है।[4]

---

१ मातृ जनटुलु भानृ जनटुलु
मोतिनार पोकोन्ना येन्नु तन्ने
× ×
पोसु तड्डाुल्न यन्नुक्कने पकानु
मृपनन्नो दड्ट निन्नवन तान

—[illegible], स० [illegible], पृ० ६७।

२ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ५३८।

३. डा० [illegible] के परमानन्ददास-पदसंग्रह से, पद सं० २१७, [illegible], [illegible], [illegible], पृ० २२० [illegible], पृ० ६८२।

४ [illegible]

—[illegible]

आतुर भाव मे मीरा अपनी वियोग-व्यथा प्रकट करती है। उनको प्रिय के विरह मे सब कुछ फीका जान पडता है।[1]

घनानद लिखते है कि वियोगावस्था मे प्रेमी की आखे प्रिय के अतिरिक्त और कुछ नही देखती। उसके कान प्रिय की पीयूषमयी वाणी के अतिरिक्त और कुछ नही सुनते, रसना निशि-वासर प्रिय की कथा कहती है—किंबहुना उसके सारे अग प्रिय के रग मे भीग जाते है। उसके मनोमदिर मे प्रिय का वास सदा रहता है।[2]

सूरदास आदि के समान मलयालम भाषा के कवियो ने भी वियोगपक्ष की ओर समुचित ध्यान दिया है। उन्होने लिखा है कि जब सारे सबध तोडकर भयकर वन मे होकर गोपिया कृष्ण के पास आई तो उनकी भक्ति की कडी परीक्षा कृष्ण ने ली। सारोपदेश देकर उन्होने उन्हे घर लौटाने का निश्चय किया, किन्तु वे अप्रभावित ही रही। अन्त मे कृष्ण ने उनके साथ रासक्रीडा की। उनकी भक्ति की परीक्षा करने के लिए वे एकाएक अतर्धान हो गए। उनके विरह से गोपिया अत्यन्त व्याकुल हुई। वन-वन मे कृष्ण की खोज करती हुई वे फिरने लगी। किन्तु कृष्ण प्रत्यक्ष न हुए। विवश होकर जैसी हृदयस्पर्शी प्रार्थना गोपिकाओ ने इस समय की वह माधुर्य-भक्ति की वियोगावस्था मे प्रकट किए गए सच्चे उद्गार है।

मलयालम के एक अज्ञात कवि गोपियो द्वारा यो प्रार्थना कराते है—हमारे दुख दूर करने वाले, हे भगवन्! आपके अतिरिक्त हमारा और कोई भी नही। आप ही चौदह लोको का पालन करते है। निराधार के आधार भी आप है। आप सर्वजगन्मय है। आदि-शेष पर विश्राम करने वाले, वेदो के अगोचर है। ब्रह्मा की प्रार्थना मानकर आपने पृथ्वी पर अवतार लिया। वसुदेव-पुत्र, आपने अपने कन्धे पर गोवर्धन पर्वत को उठा लिया,

---

१ राग पालू

रमइया बिनि रह्यो न जाय ॥टेक॥
खान पान मोहि फीको सो लागे, नैणा रहे मुरझाय।
बार बार मै अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाय।
मीरा कहै हरि तुम मिलिया बिनि तरस तरस तन जाय।

—मीरा की पदावली, द्वितीय भाग, पृ० २७।

२ जब तें निहारे इन आखिन सुजान प्यारे।
तब ते गही है उर आन देखिबे की आन।
रस भीजे बैननि सुभाइ कै रच्यो है तहाँ।
मधु मकरद सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनद गुननि कथा।
रसना रसीली निसि बासर करत गान।
अग अग मेरे उन ही के सग रग रगे।
मन सिंहासन पै बिराजै तिनही को ध्यान।

—घनानद, पृ० २५, स० शभुप्रसाद बहुगुना।

दावानल का पान कर लिया, कालियनाग का अहकार चूर्ण कर दिया। हमारे त्राता आप है। आप हमारा पालन-पोषण करें। काले बादलो सदृश अपने बालो को देखने का हमें अवसर दें। आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे हम मनोदु ख दूर करने वाले आपके वदन, लक्ष्मी के क्रीडास्थल आपके वक्षस्थल, दु ख दूर करने वाले आपके कर-कमल, पीताबर, किंकिनि, जघाए और चरणकमल आदि को देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें। हे श्याम मनोहर, आप अपना परम पावन दिव्य शरीर हमे दिखाइए।[1]

श्री कृष्ण की विरहाग्नि मे तडप-तडपकर गोपिया कराहती है। उनका चित्र चेरश्शेरी नपूतिरि इस प्रकार हमारे सामने प्रस्तुत करते है—हे कृष्ण ! हमारे प्रति आपने जो सहानुभूति दिखाई थी वह कहा गई ? चातक जिस प्रकार घनश्याम की प्रतीक्षा करता रहता है उसी प्रकार हे घनश्याम ! आपके दर्शन के लिए हम उत्कठित रहती है। जल से अलग होकर जैसे मछलिया छटपटाती रहती है वैसे ही हम भी आपके बिना व्याकुल है। हमपर कृपा की वर्षा करे। यदि हममे कोई कमी हो तो आप उसे बता सकते है। आप हमे क्यो इस प्रकार अपार दु ख देते है ![2]

इसी प्रसग मे एजुत्तच्छन भी गोपियो द्वारा हृदय-विदारक प्रार्थना कराते है—हे भगवन् ! हम कामाग्नि से जलती रहती है। हमारी रक्षा करने मे आप इतना विलब क्यो करते है, हे कमललोचन ! आप हमारे ऊपर अनुग्रह करे। आपसे अलग होकर हम एक निमिष भी नही रह सकती। मृत्यु से हमे बचाइए। हे प्राणनाथ ! हम बार-बार प्रणाम करती है।[3]

---

१ अत्तन्पाटकट्टुयान नीयोञ्ञ्नागमिन्ना
नोयर्ला पारोरेत्तु पानिन्नु पोग्न्नन्
× × ×
कार्वर्णा अट्टने नो काणु कोल् तपुराने
कारकोट्टल निरुगट्न ननकु वार मुतल कारावेगा
× × ×
भगिथिन कुत्तुलुतु भगिकन् कायानो
विश्व मोहन माय पूनेनि कायानो
—कृष्णलीला, स० मपर मेनोन पृ० ८०, पृ० ११-१२।

२ कारवर्णा क[illegible] कटल वर्णा पाण्न्यो
[illegible] वारघने
× × ×
पाना[illegible] बल्लाम्म चोल्लामल्लो।
—[illegible], स० नागराज वर्मा, पृ० [illegible]।

३ गोपने रक्षिक्क गोन्द्र मानेन्नु
[illegible] दहिक्कुन्न [illegible]
[illegible] [illegible] नानम
× × ×

कुचन नप्यार ने लिखा है कि श्री कृष्ण राधा के साथ जब अन्तर्धान हुए तब दूसरी गोपिया वृक्ष-लतादि से श्री कृष्ण के बारे मे पूछती हुई फिरने लगी। अन्त मे वे कहती है—हे दयासागर! आप क्यो इतने क्रूर बने है? हम क्या करे? लोग हमारी हसी उडाएगे। आपने हमे धोखा दे दिया। हमसे बढकर राधा मे क्या और कोई गुण है? आपके चरण-सरोज के अतिरिक्त हमारा और कोई अवलब नही। इस प्रकार हमको दु ख पहुचाने की अपेक्षा हमे मार डालना ही अच्छा है।[1]

शान्ता भक्ति—

श्रेष्ठ मुनियो का कथन है कि जहा दु ख,सुख, चिन्ता, द्वेष और राग नही है, वहा शान्त रस की निष्पत्ति होती है।[2] साहित्यदर्पण मे ऐसा लिखा गया है। शान्त रस की अनुभूति मे लौकिक भाव नही पाए जाते। उसका आधार ईश्वरोन्मुख भाव है। शान्तरस-प्रधान कविताए दोनो भाषाओ के कवियो ने पर्याप्त सख्या मे लिखी है। उन्होने अपनी कविताओ मे वैराग्य, आत्मप्रबोध, विनय, आत्मनिवेदन आदि भावो को प्रकट करते हुए मानो शान्त रस की धारा ही प्रवाहित कर दी है। सूर, परमानन्द, एजुत्तच्छन पून्तानम आदि कवियो की कृतिया शान्त रस मे सनी हुई है।

भगवान् अपने भक्तो की प्रसन्नता के हेतु किसी प्रकार का भी काम करने को सन्नद्ध रहते है। उसके कई उदाहरण सूरदास देते है। वे कहते है—शबरी के जूठे बेर उन्होने बडे प्रेम से खाए। विदुर के यहा जाकर साग-भाजी का साधारण भोजन किया। पाण्डवो को दुर्वासा महर्षि के शाप से बचाने के लिए अक्षय पात्र मे लगा हुआ अन्न का कण खाकर तृप्त हुए और दूसरे लोगो को तृप्त किया। भगवान् की करुणा की कोई सीमा नही।[3]

प्राणन् नशिन्चु पोम्न्नतिन मुन्नमे
प्राणात्मका प्राणनाथा नमो नम

—श्री महाभागवतम्, दशम स्कन्ध, एजुत्तच्छन, पृ० २८४।

१ नीयल्लातोर गतियिल्ल वल्लवीना
पोय्यल्लेन्नरिक विभो दयाम्बुराशे
× × ×
कोन्नाकिल करलिलए निक्कुखेदमिल्ला
ननायि पुनरपि निन् कजल्कु चेरा।

—श्री कृष्णचरितम्, कवि कुचन नप्यार, पृ० ५२५४।

२ न यत्र दु ख न सुख न चिन्ता, न द्वेषरागो न च काचिदिच्छा।
रस स शान्त कथितो मुनीन्द्रै सर्वेषु भावेषु शम प्रधान ॥

—साहित्यदर्पण।

३ गोविंद प्रीति सबनि की मानत।
× × ×
कौरव काज चले रिषि सापन, साक पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु जुग जुग भक्त बढाए ॥

—सूरसागर खड १, पद स० २०, सभा सस्करण, पृ० ५।

भगवान् का कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिए सूरदास बडे मर्मस्पर्शी शब्दो मे प्रार्थना करते है।[1] अपनी दीनावस्था जताते हुए परमानन्ददास का पद शान्ता भक्ति का उत्तम उदाहरण है।[2] भगवान् की लीला मे तन्मय होकर नन्ददास ने भी ऐसा ही लिखा है।[3]

सूर और नन्ददास के समान मलयालम के कवियो ने भी शान्त रस की अनेक कविताए लिखी है—भगवान् की महिमा का वर्णन करते हुए निरणम कवियो मे श्रेष्ठ माधव पणिक्कर लिखते है—मै उस परमात्मा को नमस्कार करता हू जो अद्भुतता के आगर है, सपूर्ण है, जरा-मरणादिहीन है, पुष्प की गन्ध के समान सर्वत्र व्याप्त और आलिप्त है तथा सच्चिदानदमय है।[4]

चेरुश्शेरी अपनी दीनता प्रकट करते हुए भगवान् कृष्ण से निवेदन करते है—हे भगवान् ! मै ससार-सागर मे डूब रहा हू। लहरो के आवर्त मे पडकर मै बिल्कुल निर्बल हो गया हू। मेरे लिए पार पाना असाध्य प्रतीत होता है। मृत्यु सर्वदा मेरा पीछा करती

---

१ नमो नमो करुणा निधान
चितवत कृपा कटाच्छ तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान

× × ×

मेरे जिय अम यही लालसा लीला श्री भगवान
श्रवण करौं निसि वासर हित सौं, सूर तुम्हारी आन।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३८-३९।

२ रे मन मुनि पुरान पढ़ा कीनों
अन पायनी भक्ति न उपजी भूखे दान न दीनों।

× × ×

चरन कमल अनुराग न उपज्यो भूत दया नहिं पाली
परमानन्द साधु सगति बिनु कथा पुनीत न चाली।

—डा० गुप्त के निजी परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ३०१, अष्टछाप, पृ० ६११।

३. मोहन लाल रसाल की लीला इनहीं सोहैं
केवल तन्मय भई कछु न जानति हमको हैं।

× × ×

भृंगी भय ते भृंग होत वह कीट महा जड़
कृष्ण प्रेम ते कृष्ण होइ कछु नहिं अचरज बड़।

—रासपंचाध्यायी, नन्ददास, शुक्ल, पृ० १६८।

४ [illegible]
[illegible]

× × ×

[illegible]

—[illegible] से, स० विद्वान् [illegible], पृ० ३२।

है। आप मेरे दु ख का निवारण करे।[1]

एजुत्तच्छन आत्मनिवेदन करते है—आशा रूपी डाकिन के पजे मे पडने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जगत् सत्य है, हमारा जीवन जल के बुलबुले के समान क्षण-भगुर नही, वलिक स्थिर है, ससार के माया-मोह मे फसने के कारण उनके मन मे तीव्र पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न होता है और वे कहते है कि हे कृष्ण! मैने जानते हुए और बिना जाने बहुत से पाप किए है। आपकी कृपा के बिना वे पाप नही मिट सकते।[2]

प्रसिद्ध भक्त कवि पून्तानम भक्ति-सुधा मे सरावोर होकर कृष्ण की प्रार्थना करते हुए कहते है—हे कृष्ण, तुम ही दु ख दूर करने वाले हो। मै आपके सम्मुख सिर नवाता हू। मेरे दु ख का कारण क्या है? फिर कवि कृष्ण का नाम लेकर कहते है, दु ख जन्म लेने से होता है। जन्म लेने का मूल क्या है? कर्म के प्रभाव से जन्म लेना पडता है। हे कृष्ण! कर्म का कारण है क्या? राग अभिमान से होता है। अभिमान क्यो होता है? (कवि कहते है कि) आपकी महत्ता और अपनी स्थिति के बारे मे न सोचने के कारण जीवो के मन मे अभिमान होता है। भगवान् की महत्ता और अपनी स्थिति के बारे मे न सोचने के कारण जीवो के मन मे अभिमान होता है। भगवान् की महत्ता और अपनी स्थिति के सबध मे मनुष्य क्यो नही सोचता? (उत्तर है) अज्ञान के कारण लोग सोचते नही। (अन्त मे कवि कहते है) कृष्ण की सच्ची सेवा से ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाएगी।[3] सारे आध्यात्मिक

---

१ मायाकार तोय तन्निल
पाय पाय मुङ्ङि नट्टुङ्ङि
ओरु कर येड्ड् मुङ्ङि नटुङ्ङि
तेरु तेरे नीन्ति त्तान्तन्माराय
पेरुकिन ताप मियन्नु तलर्न्नु
करतिन तोरु माज्कुन्नय्यो
× ×
पार्थर्वोजुमल्लल् तलर्त्तुन्नतिन्नाय्

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २२० ।

२ उट्टोराशानिशाचितन बाधयाल् चुटट्टुवार्मेय्यिन् वाज्चयुवीज्चयु
× × ×
नष्टमाकण्णे निन् कृपा पूर्णमा दृष्टि पातत्ताल कृष्ण हरे जय

—भागवत कीर्तनम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० १ ।

३ दु ख मोट्टमुन्न तपुराने कृष्ण तृनकतल आनिता कूपिट्टुन्नेन्
दु ख मेट्टत्तिने-न्ते मूल कृष्ण दु ख मेट्टत्तनुजन्म मूल
जन्म मेट्टत्तिने-न्ते मूल कृष्ण जन्म मेट्टत्तु कर्म्म मूल
× × ×
सज्जन सगति क्केतु मूल कृष्ण वाम पुरेशने सेव चेय्यू
वाम गेहाधिप वासुदेव कृष्णा बाल गोपालक पालय मा

—केरल भाषा-साहित्य चरित्रम मे, स० महाकवि उल्लूर एम० परमेश्वरय्यर, भाग ३, पृ० ६१६ ।

तत्त्वो का साराश उपर्युक्त कविता के द्वारा कवि ने हमे समझाया है।

एक अन्य स्थल पर पून्तानम कहते हैं—मनुष्य का मन विविध प्रकार की आशाओं मे लगा रहता है। किन्तु बड़े अचरज की बात है कि हे भगवन्! तुझे पाने की आशा किसीको नहीं होती। हे कृष्ण, मेरे मन को शान्ति दीजिए।[1] इसके पश्चात् अपने मन को सबोधित करते हुए कवि निवेदन करता है—हे मन! सुन्दरी स्त्री का सुख और धन की चिन्ता मे लगकर तू आनन्दमूर्ति भगवान् को मत भूल। प्राण-वायु के जाते समय विचार करने पर भी तू कोई अच्छा काम न कर सकेगा।[2]

श्री कुचन नम्प्यार ने लिखा है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए योग, मन्त्र, उपासना और आसनो का अभ्यास कुछ काम नही आएगे। जो भगवान् के चरणो की पूजा करता है वही मुक्ति पा सकेगा। यह सारा प्रपच मायाजनित है, क्षणभगुर है। यह सब भगवान् की लीला है।[3]

प्रस्तुत अध्याय मे यह दिखाया गया है कि दोनो भाषाओं के कवियो ने भक्ति की महिमा अपनी शक्ति के अनुसार प्रदर्शित की है। ईश्वर के दोनो रूपो का वर्णन उन्होने किया है। यह भी दिखाया गया है कि ईश्वर की प्राप्ति का सरल मार्ग आम जनता के लिए भक्ति ही है, जिसके कई उदाहरण दिए गए हैं। ईश्वर के निर्गुण रूप का खडन किसीने नही किया है। एजुत्तच्छन को छोड़कर शेष कवियो ने ईश्वर के साकार रूप के वर्णन मे अनेक पद लिखे हैं। निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना अत्यन्त कठिन है। यही उनका मत है। सूरदास, परमानन्ददास, चेरुश्शेरी नपूतिरि और पून्तानम नपूतिरि ने कई

---

१ नन्नारायालु मदनारायाल
पोन्नारायालु मरकुन्नु लोक
निन्नारा कण्ट्मोरवस्कमय्यो
कण्णा रगे ननकुक शानन मे
—पून्तानम की कृतियाँ, पद स० १२७, म० पि० के० कन्र्ने शेखिस्कोट, पृ० १३५।

२ एन्नीड्रशा वरनुं पणवु निनच्चि
आनद मूर्तिने मरक्क मनस्सुन्ने
पाणन् स्नन्नुं ननपाट्टिक्नाय समय्माल
नेरुन्नतोन्नुमेनुान्न नगुरारिम्याल
—पून्तानम की कृतियाँ, पद स० १३२, पृ० १३७।

३ नेगनीश्वरनोटु चेन्नुं कमिश्यनिनु मनुष्यरे
गाणु पल योगु पल मन्त्र निल मन्त्रवु
आगमङ्ङ् उपासनङ्ङ्नु मासनङ्ङु मोन्नुमे
राम मागर पानि कृरुपङ्किरधिन्न पश्यिसन्
× × ×
समनेदननमरसनेक मारा मैचरन
—श्री कुचन नम्प्यार, म० सि० रामकृष्ण पिल्ला, पृ० ६४।

स्थानो पर निर्गुण ईश्वर की उपासना का खडन करके ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करने की सुगमता पर जोर डाला है। नौ पकार की भक्तियो पर दोनो भाषाश्रो के कवियो ने श्रनेक कविताए रची हैं।

दोनो भाषाश्रो के कवियो का दृढ विश्वास है कि भक्त श्रपने जीवन मे जो कुछ करते हे वे सब भगवान् को प्रसन्न करके उनके दर्शन पाने के लिए ही करते हैं। उनके मन मे मान, श्रपमान, दु ख-सुख श्रादि द्वन्द्व विचारो का प्रवेश भी नही होता। सर्वदा, सर्वथा ईश्वर पर श्रर्पण करते हुए सारे कार्य करते हैं। दास्य-भक्ति, सख्य-भक्ति, वात्सल्य-भक्ति श्रौर माधुर्य-भक्ति पर समान भाव से दोनो भाषाश्रो के कवियो ने रचनाए की हैं।

माधुर्य-भक्ति मे मीराबाई श्रौर चेरुश्शेरी नपूतिरि का स्थान समान है। दूसरे कवियो की श्रपेक्षा इन दोनो ने गोपियो के सहारे श्रपनी मधुर भक्ति सुन्दर श्रौर सरस कविताश्रो मे प्रकट की है।

वात्सल्य-भक्ति-रस-प्रधान कविताए लिखने मे चेरुश्शेरी नपूतिरि, पून्तानम नपूतिरि श्रादि का स्थान सूरदास श्रादि से पीछे नही। बाललीला के वर्णन मे सब ने श्रपनी-श्रपनी क्षमता सिद्ध कर दी है। दोनो भाषाश्रो के कृष्ण-भक्त काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निश्चय करना कि वात्सल्यपूर्ण पदो की रचना करने मे सूर श्रेष्ठ हैं या चेरुश्शेरी, अत्यन्त कठिन है।

पांचवां परिच्छेद

काव्य-कला

'काव्य' की सम्पूर्ण और सर्वांगीण परिभाषा देने का प्रयास कितने ही विद्वानो और मनीषियों ने किया है। काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है।[1] यह परिभाषा सीधी-सादी, सरल और सर्वग्राह्य है। श्रीमद्भगवद्गीता मे 'कवि' शब्द का प्रयोग आत्मा के सूक्ष्मतम रूप के लिए हुआ है।[2] ऋग्वेद मे भी कवि को आत्मा का रूप बताया गया है।[3] साहित्यदर्पण मे दी गई परिभाषा 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' के अनुसार काव्य कवि की रसात्मक आत्माभिव्यक्ति है। 'रस' ब्रह्म है और 'कवि' शब्द ब्रह्म के लिए भी श्रुति[4] मे आया है। इसलिए कवि की कृति का रसयुक्त होना स्वाभाविक है। काव्य को ब्रह्मानन्द-सहोदर भी कहा गया है। ब्रह्मानन्द को प्राप्त करके आत्मगत रखने से ही काव्य की रचना नही होती उसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है। अत अभिव्यक्ति के एकमात्र साधन भाषा के महत्त्व को स्वीकार करना पडता है। काव्यशास्त्रज्ञो ने काव्य की परिभाषा मे भाषा-सौष्ठव और भाषा-शक्ति को अपेक्षित स्थान देना आवश्यक समझा है। काव्य के क्षेत्र मे रस के साथ-साथ अलकारो और शब्द-शक्तियो का महत्त्व भी है। रस या आत्मा की अभिव्यक्ति काव्य का सत्य तत्त्व है और भाषा चमत्कार कला तत्त्व है। संस्कृत-साहित्य मे भामह[5] प्रथम शास्त्रकार थे जिन्होंने अलकारो की प्रतिष्ठा की और अनेक नये अलकारो की रचना की। दण्डी[6] ने भी काव्य के कलापक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया। वामनाचार्य[7] ने काव्य की आत्मा 'रीति' है, ऐसा बताया। 'रीति' का अर्थ विशिष्ट पद-

---

1 साहित्य और सौन्दर्य डा० फतेसिंह, पृ० १।

2 कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ गी० अ० ८, श्लो० ९।

3 कविर्गिरा [illegible] (ऋ० [illegible])
कवि [illegible] (७,६,२)

4 रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति (तै० उ० २०७)

५. भामह काव्यालंकार।

६ दण्डी काव्यादर्श।

७ वामन काव्यालंकारसूत्र तथा वृत्ति।

रचना है। आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक मे 'ध्वनि सिद्धात' को प्रमुखता दी। सस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट ने बताया सर्वगुणसम्पन्न एव दोषरहित अभिव्यक्ति जो अलकारो का सहारा मनोनुकूल ले सकती है, काव्य के नाम से आभाषित होगी।[1]

आश्चर्य की बात है कि पाश्चात्य विद्वानो ने प्रारंभ मे ही काव्य के विश्लेषण मे लगभग उसी मनोवृत्ति[2] का परिचय दिया, जिसका सक्षिप्त विवरण हम ऊपर दे चुके है। यूरोपीय विद्वानो ने एक बात का और ध्यान रखा। उन्होने 'सामाजिक तत्त्व' का काव्य मे होना आवश्यक बताया। प्लेटो[3] ने उस काव्य की पूरी तरह से भर्त्सना की, जो समाज को अध पतन की ओर ले जाता है। उसके मतानुसार व्यक्तिगत आनन्द मे लिप्त कवि केवल अपराधी ही है। उसके शिष्य अरस्तू[4] ने बडी योग्यता से, प्लेटो के प्रहार मे काव्य की रक्षा की और उसने सिद्ध किया कि हर दशा मे काव्य ही समाज को सन्मार्ग पर लाने का सर्वोत्तम साधन है। उसने काव्य को, सत्य कला और लोककल्याण की भावना मे समन्वित करके गौरवान्वित किया।[5] कालातर मे इन्ही तत्त्वो को लेकर लगातार विचार-विमर्श होता रहा।

साहित्य का ज्यो-ज्यो विकास होता गया, काव्य की रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न जारी रहा। उसके परिणामस्वरूप साहित्य का वर्गीकरण भी हुआ—महाकाव्य, नाटक और आख्यान तथा खडकाव्य, महाकाव्य, मुक्तक काव्य आदि। वर्गीकरण मे सबमे बडा लाभ यह हुआ कि काव्य का क्षेत्र निश्चित हो गया और प्रत्येक वर्ग के लिए कुछ निश्चित उपकरण भी स्थिर कर लिए गए, जिसमे प्रत्येक प्रकार के काव्य का मूल्याकन सरलता से किया जा सका। वे उपकरण है—काव्य का विषय, वर्ण्य विषय से सबधित भाव आदि, रमणीय अर्थ, अलकार और रस तथा भाषा।[6]

हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियो के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उपर्युक्त काव्यागो को आधार मानकर हम चलेंगे। हमारी विवेचना का प्रथम चरण काव्य-विषय है।

काव्य-कला का तुलनात्मक अध्ययन

काव्य-विषय

हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियो का मुख्य विषय श्री कृष्ण और उनकी लीलाए है। सूरदास ने भागवत की कथा का अनुसरण करके कृष्ण की बाल तथा यौवन-

---

१ मम्मट काव्यप्रकाश।
२ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ १६५/६६।
३ प्लेटो रिपब्लिक।
४ अरस्तू पोयटिक्स।
५ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ ५३,५४।
६ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ६२ से ६७।

लीलाओ का वर्णन बडी सुन्दरता से किया। परमानन्ददास ने कृष्ण के जीवन के भिन्न-भिन्न भावात्मक प्रसगो पर मुक्तक पद लिखे है । ब्रज-लीलाओ के चित्रण मे भी उन्होने ध्यान लगाया है । असुरो के वध आदि के सबध मे लिखने का प्रयास उन्होने नही किया है। श्री कृष्ण के बाल्यकाल की घटनाए बडी भावुकता से परमानन्ददास ने लिखी है। नन्ददास ने कृष्ण-कथा के कुछ चुने हुए प्रसग लेकर कविताए रची। मीरा ने अपनी सरस-कोमल वाणी द्वारा अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग की अनुभूतिया प्रकट की है। मीरा के पदो मे कथा की कोई अतर्धारा नही दिखाई पडती । उन्होने किसी साहित्य-परपरा का आश्रय नही लिया है। उनके पद सरल, स्पष्ट तथा सीधे हृदय से लिखे गए है । उन्होने श्री कृष्ण को प्राकृतिक गुणो से रहित, योगेश्वर तथा सगुण ब्रह्म के रूप मे अपने पदो मे चित्रित किया है। प्रबन्धात्मक शैली मे वे पद नही लिखे गए है।

हिन्दी के प्रमुख कवियो ने कृष्ण-चरित्र के सहारे बहुधा मुक्तक काव्य ही लिखे है किन्तु मलयालम के प्रमुख कवि जैसे चेरुश्शेरी नपूतिरि, पून्तानम्, एजुत्तच्छन, कुचन नप्यार आदि ने कृष्ण की कथा के आधार पर प्रबन्धकाव्यो की रचना की है। प्रबन्ध के लिए निर्धारित शास्त्रीय नियमो का पालन करने मे मलयालम के कवियो ने पूरी तत्परता दिखाई है, यथा, कथा के मध्य मे प्राकृतिक चित्रो और घटनास्थलो के रूप मे विविध स्थानो के वर्णन, पात्रो के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास, विभिन्न अवस्थाओ तथा घटना-चक्र के बीच उनकी प्रतिक्रिया, उनकी मनोदशाओ का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का निर्वाह पूरी तरह से किया गया है । अत मलयालम की कृष्णगाथा, श्रीकृष्णचरितम्, मणिप्रवालम् जैसी कृतिया महाकाव्यो की श्रेणी मे आ गई है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि इन भक्तकवियो ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही कविताए रची और आत्म-विषयात्मक शैली का प्रयोग भी किया जो मुक्तक काव्य की मुख्य विशेषता है।

दोनो भाषाओ के कवियो की कविताओ में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियो का सजीव, स्वाभाविक और सरस चित्रण है। दूसरे इनमे अलौकिक नायक कृष्ण के उदात्त चरित्र के सहारे आध्यात्मिक अनुभूति की व्यजना भी हुई है। इस आध्यात्मिकता की व्यजना करने मे इन कवियो की चित्तवृत्ति अधिक रमी है। इससे न केवल मानव-समाज का हित हुआ, वरन् वह हमे ब्रह्मानन्द का आस्वादन भी कराती है। दोनो भाषाओ के कवि उच्चकोटि के भक्त है और बाद मे कवि। काव्य और भक्ति के सयोग के कारण मानो सोने मे सुगन्धि आ गई है।

हिन्दी मे कृष्ण-भक्त कवियो के ग्रन्थो मे उक्ति-रूप मे अथवा चरित्रो के दृष्टान्त-रूप मे आत्मोत्थान के लिए व्यावहारिक उपदेश और जन-समाज के हितार्थ नीति-कथन के प्रसग अधिक नही है, पर मलयालम की कविताओ मे काव्य, रस, आध्यात्मिक अनुभव और चरितो के दृष्टान्तो द्वारा तथा उपदेशात्मक सूक्तो द्वारा व्यक्त किए हुए लोक-मर्यादा की रक्षा के साथ, नीति और नैतिकता के उपदेश, इन सबका सुन्दर समन्वय हमे मिलता है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो के समान मलयालम के कवियो की विचारधारा

रचना है। आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक मे 'ध्वनि सिद्धात' को प्रमुखता दी। सस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट ने बताया सर्वगुणसम्पन्न एव दोषरहित अभिव्यक्ति जो अलकारो का सहारा मनोनुकूल ले सकती है, काव्य के नाम से आभाषित होगी।[1]

आश्चर्य की बात है कि पाश्चात्य विद्वानो ने प्रारभ मे ही काव्य के विश्लेषण मे लगभग उसी मनोवृत्ति[2] का परिचय दिया, जिसका सक्षिप्त विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। यूरोपीय विद्वानो ने एक बात का और ध्यान रखा। उन्होने 'सामाजिक तत्त्व' का काव्य मे होना आवश्यक बताया। प्लेटो[3] ने उस काव्य की पूरी तरह से भर्त्सना की, जो समाज को अध पतन की ओर ले जाता है। उसके मतानुसार व्यक्तिगत आनन्द मे लिप्त कवि केवल अपराधी ही है। उसके शिष्य अरस्तू[4] ने बडी योग्यता से, प्लेटो के प्रहार मे काव्य की रक्षा की और उसने सिद्ध किया कि हर दशा मे काव्य ही समाज को सन्मार्ग पर लाने का सर्वोत्तम साधन है। उसने काव्य को, सत्य कला और लोककल्याण की भावना से समन्वित करके गौरवान्वित किया।[5] कालातर मे इन्ही तत्त्वो को लेकर लगातार विचार-विमर्श होता रहा।

साहित्य का ज्यो-ज्यो विकास होता गया, काव्य की रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न जारी रहा। उसके परिणामस्वरूप साहित्य का वर्गीकरण भी हुआ—महाकाव्य, नाटक और आख्यान तथा खडकाव्य, महाकाव्य, मुक्तक काव्य आदि। वर्गीकरण से सबसे बडा लाभ यह हुआ कि काव्य का क्षेत्र निश्चित हो गया और प्रत्येक वर्ग के लिए कुछ निश्चित उपकरण भी स्थिर कर लिए गए, जिसमे प्रत्येक प्रकार के काव्य का मूल्याकन सरलता से किया जा सका। वे उपकरण है—काव्य का विषय, वर्ण्य विषय से सबधित भाव आदि, रमणीय अर्थ, अलकार और रस तथा भाषा।[6]

हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियो के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उपर्युक्त काव्यागो को आधार मानकर हम चलेगे। हमारी विवेचना का प्रथम चरण काव्य-विषय है।

काव्य-कला का तुलनात्मक अध्ययन

काव्य-विषय

हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियो का मुख्य विषय श्री कृष्ण और उनकी लीलाए हैं। सूरदास ने भागवत की कथा का अनुसरण करके कृष्ण की बाल तथा यौवन-

---

१ मम्मट काव्यप्रकाश।
२ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ १६५-१६६।
३ प्लेटो रिपब्लिक।
४ अरस्तू पोयटिक्स।
५ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ ५३,५४।
६ साहित्यालोचन—बा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ६२ से ६७।

लीलाओ का वर्णन बडी सुन्दरता से किया। परमानन्ददास ने कृष्ण के जीवन के भिन्न-भिन्न भावात्मक प्रसगो पर मुक्तक पद लिखे है । ब्रज-लीलाओ के चित्रण मे भी उन्होने ध्यान लगाया है । असुरो के वध आदि के सबध मे लिखने का प्रयास उन्होने नही किया है। श्री कृष्ण के बाल्यकाल की घटनाए बडी भावुकता से परमानन्ददास ने लिखी है। नन्ददास ने कृष्ण-कथा के कुछ चुने हुए प्रसग लेकर कविताए रची। मीरा ने अपनी सरस-कोमल वाणी द्वारा अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग की अनुभूतिया प्रकट की है। मीरा के पदो मे कथा की कोई अतर्धारा नही दिखाई पडती । उन्होने किसी साहित्य-परम्परा का आश्रय नही लिया है। उनके पद सरल, स्पष्ट तथा सीधे हृदय से लिखे गए है । उन्होने श्री कृष्ण को प्राकृतिक गुणो से रहित, योगेश्वर तथा सगुण ब्रह्म के रूप मे अपने पदो मे चित्रित किया है। प्रबन्धात्मक शैली मे वे पद नहीं लिखे गए है।

हिन्दी के प्रमुख कवियो ने कृष्ण-चरित्र के सहारे बहुधा मुक्तक काव्य ही लिखे है किन्तु मलयालम के प्रमुख कवि जैसे चेरुश्शेरी नपूतिरि, पून्तानम्, एजुत्तच्छन, कुचन नम्प्यार आदि ने कृष्ण की कथा के आधार पर प्रबन्धकाव्यो की रचना की है। प्रबन्ध के लिए निर्धारित शास्त्रीय नियमो का पालन करने मे मलयालम के कवियो ने पूरी तत्परता दिखाई है, यथा, कथा के मध्य मे प्राकृतिक चित्रो और घटनास्थलो के रूप मे विविध स्थानो के वर्णन, पात्रों के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास, विभिन्न अवस्थाओ तथा घटना-चक्र के बीच उनकी प्रतिक्रिया, उनकी मनोदशाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का निर्वाह पूरी तरह से किया गया है । अत मलयालम की कृष्णगाथा, श्रीकृष्णचरितम्, मणिप्रवालम् जैसी कृतिया महाकाव्यो की श्रेणी मे आ गई है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि इन भक्तकवियो ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही कविताए रची और आत्म-विषयात्मक शैली का प्रयोग भी किया जो मुक्तक काव्य की मुख्य विशेषता है।

दोनो भाषाओ के कवियो की कविताओ मे सार्वजनिक प्रेमानुभूतियो का सजीव, स्वाभाविक और सरस चित्रण है। दूसरे इनमे अलौकिक नायक कृष्ण के उदात्त चरित्र के सहारे आध्यात्मिक अनुभूति की व्यजना भी हुई है। इस आध्यात्मिकता की व्यजना करने मे इन कवियो की चित्तवृत्ति अधिक रमी है। इनसे न केवल मानव-समाज का हित हुआ, वरन् यह हमे ब्रह्मानन्द का आस्वादन भी कराती है। दोनो भाषाओ के कवि उच्चकोटि के भक्त है और बाद मे कवि। काव्य और भक्ति के सयोग के कारण मानो सोने मे सुगन्धि आ गई है।

हिन्दी मे कृष्ण-भक्त कवियो के ग्रन्थो मे उक्ति-रूप मे अथवा चरित्रो के दृष्टान्त-रूप मे आत्मोत्थान के लिए व्यावहारिक उपदेश और जन-समाज के हितार्थ नीति-कथन के प्रसग अधिक नही है, पर मलयालम की कविताओ मे शास्त्र, [illegible], आध्यात्मिक अनुभव और चरित्रो के दृष्टान्तो द्वारा तथा उपदेशात्मक सूक्तियों द्वारा व्यक्त किए हुए लोक-मर्यादा की रक्षा के भाव, नीति और नैतिकता के उपदेश, इन सबका सुन्दर समन्वय हमे मिलता है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो के समान मलयालम के कवियो की [illegible]

सीमित नही है। एजुत्तच्छन, कुचन नप्यार जैसे कवियो की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। जीवन का कोई ऐसा अग नही जिसे उन्होने अछूता छोडा हो।

विषय के सबध मे मलयालम की कविताओ मे कोई मौलिकता न होने पर भी घटनाओ का वर्णन करते समय कवियो ने स्थल-स्थल पर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

चरितनायक कृष्ण की वर्ण्य कथावस्तु

पूर्वार्द्ध

[जन्म से उद्धव के गोकुल आने तक की घटनाए]

कृष्ण के जन्मकाल का वर्णन सूर ने यो किया है—सकल लोकनायक ने जन्म लिया और यह रूप मा-बाप को दिखाया सिर पर मुकुट है, पीताम्बर पहने हुए है, छाती पर भृगु-रेखा शोभित है, चारो हाथो पर शख, चक्र, गदा, पद्म शोभित है । वेप अति प्रतापी है।[1] कुन्चन नप्यार जैसे मलयालम कवियो का वर्णन भी उसमे मिलता-जुलता है। वे लिखते हैं—जन्म के समय भगवान् कृष्ण के माथे पर जगमगाता हुआ किरीट था, हाथ मे सोने के ककण, कटि पर किंकिनी और पुष्प समान मृदुल वस्त्र पहना था। छाती पर श्री वत्स था और कौस्तुभ रत्न भी शोभित था। शख, चक्र, गदा तथा कमल चारो हाथो मे शोभायमान थे। शरीर सावले रग का था। कवि कहते है, ऐसे रूप वाले भगवान् आपका मगल करे।[2]

श्री कृष्ण के मनुष्य का जन्म लेने के कारण के सबध मे सूरदास ने एक पद मे सकेत किया है—**याकी कोखि औतरं वे सुत, करं प्रान परिहारा।**[3] जन्म के पूव भी परिस्थिति के सम्बन्ध मे मलायलम के कवियो ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। चेरुश्शेरी इस प्रकार कहते है—असुरो के अत्याचारो से पीडित होकर मेदिनी ने विष्णु भगवान् से कातर स्वर मे प्रार्थना की है। उसकी प्रार्थना सुनकर करुणानिधि द्रवित हो गए और उन्होने सान्त्वना देते हुए उसे धैर्य बधाया।

कस अपनी बहन देवकी को रथ मे बिठाकर ससुराल के लिए विदा करने जाता

---

१ सकल लोक नायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ।
माथे मुकुट, सुभग पीताबर उर सोभित भृगु रेखा।
सख चक्र गदा पद्म बिराजत अति प्रताप सिसु भेषा।
—सूरसागर, स्कध १, सभा सस्करण, पृ० २५८।

२ मिन्नुपोन्निन् किरीट नरिवन कटक काञ्चि पून्चेल माला
धन्य श्री वत्स सल् कौस्तुभमिट कलर चार दोरन्तराल
शख चक्र गदा पन्कज इव निराम् नालु तृक्कैकलोटु
सन्कीर्ण श्याम वर्ण्ण हरि वपुरमल पुरयेन्मगलव
—श्रीकृष्णचरित्म् मणिप्रवालम, ले० कुचन नप्यार, पद स० ७३।

३ सूरसागर—स्कंध १, सभा सस्करण, पृ० २५६।

है। मार्ग मे आकाशवाणी हुई—देवकी के आठवें पुत्र मे तुम्हारा निधन होगा और तुम सावधान रहो।[1] इतना सुनते ही कस रथ से उतरकर देवकी के बाल खींचकर तलवार से मारने को तैयार हुआ। इस प्रसग का वर्णन चेरुश्शेरी यो करते है—कस तलवार से मारने लगा। तब कुछ लोगो ने आखें बन्द की, आसू पोंछे। कुछ लोग दौड़े हुए कस के पास आए। कुछ लोगो के हाथ फडक उठे। कुछ लोगो की आखें लाल हो गई और कुछ लोग जोर से रो पडे।[2]

सूर ने इस प्रसग का वर्णन बडे सीमित ढग से किया है—कस रथ से उतरकर देवकी को तलवार से मारने चला।[3] इस अवसर पर उपस्थित जनो के मनोभावो के सम्बन्ध मे सूर ने कुछ नही लिखा। कस का भयानक रूप देखकर देवकी की क्या दशा हुई उसके विषय मे कृष्णगाथा मे इस प्रकार लिखा है—जब सिंह अपने शिकार हिरण को पकडकर मुह मे रखता है उस समय के रोते हिरण के समान देवकी भयभीत होकर 'हा देव! हा देव!' चिल्लाने लगी। कस की कराल मूर्ति देखकर वह डर के मारे पिता जी, माता जी, और मामा जी की दुहाई देने लगी। अन्त मे अपने भाई कस से भी दया की प्रार्थना की और अपने पतिदेव की ओर भी दीन दृष्टि से देखा।[4] इस प्रकार के मर्म-स्पर्शी मनोभावो की उपेक्षा सूर ने की है।

महान् व्यक्तियो के जन्मकाल का वर्णन भी मलयालम कवियो ने असाधारण ढग से किया है। श्री कृष्ण के जन्मकाल का वर्णन करते हुए चेरुश्शेरी ने लिखा है—सब कही मगलकारी दृश्य दिखाई देने लगे। ब्राह्मणो ने यज्ञकुड मे अग्नि जलाई और परि-

---

१ देवका तन्नुटे अष्टम गर्भत्तिन् मेवि निन्नुल्लोरु बालकन् तान्
निन्नुटे कालनायेन्नु निन्नोटुन्नोनेन्नु निन्निच्चु कोल्क कसा

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३।

२ कण्णटच्चोटिनार कण्णु नीर तूकिनार तिरपमङ्ङो टिनार खिन्नरायि
कै तिरुम्मीटिनार चण चोवच्चोटिनार करयलच्चोटिनार मेल्लिनेटर्

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३।

३ रथ में उतरी, केस गहि राजा कियौ खड्ग पटनारा

—सूरसागर, स्क १०, म० सभा-संस्करण, पृ० २५६।

४ सैमरि वीरन् [illegible] तन्निपाप चेवन [illegible] पोले
गेपि निन्नीटुन्न [illegible] देवि मान् [illegible] नोन्नि [illegible]
[illegible] कण्णे नोर्र [illegible] बिन्नु [illegible]
[illegible] निन्नाटुन्न [illegible] गोवकीटु [illegible] पूण्टेन्नु [illegible]
[illegible] मारुटे [illegible] नो [illegible] बिन्नु [illegible]
[illegible] नोक्कि [illegible] विन्निन्नु [illegible]

× × ×

[illegible]

—कृष्णगाथा [illegible]

क्षमा की। नदी, झील, सरोवर का जल सज्जनो के मानस के समान स्वच्छ हो गया। आकाश नक्षत्र रूपी हार पहनकर शोभित हुआ। भ्रमर गुजारते हुए भ्रमण करने लगे। मद-शीतल-सुगन्धित वायु बहने लगी।[1]

कृष्ण का अवतार हुआ। कस ने जान लिया कि ब्रज मे जन्मा हुआ बालक ही उसका हन्ता है। अत वह पूतना को उसे मार डालने के लिए भेजता है। इस प्रसग का वर्णन भी मलयालम कवियो ने बडी मार्मिकता से किया है। वे कहते है—सुन्दर, सुकोमल, निष्कलक नन्दकुमार अकेले एक छोटी-सी शय्या पर लेटा है। उसे चालाकी से मारने के विचार से कपट वेषधारिणी दुष्टा पूतना उसके पास आती है। जैसे गरुड के पास साप दौडते हुए आ जाता है (गरुड के पास सर्प के आने का अर्थ है साप की मृत्यु) वैसे ही पूतना बच्चे के पास आई। बच्चे का कोमल मुख देखकर वह कुछ क्षण रुककर कुछ सोचने लगी। ऐसा मालूम पडता है मानो वह अपने काल के आने की देर के कारण पर विचार कर रही हो। तब उसने धीरे-धीरे उस बच्चे के कोमल शरीर का स्पर्श किया जैसे रत्न समझकर अग्नि को छू रही हो। जिस प्रकार रज्जु समझकर कोई साप को उठा लेता है उसी प्रकार पूतना ने कृष्ण को उठा लिया। उस शिशु के पुष्प समान कोमल शरीर के स्पर्श से ही उसके रोगटे खडे हो गए। उसे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो पूतना के पहले ही वे रोगटे स्वर्ग जाने के लिए तैयार हो गए। उसने अपने लम्बे हाथो से बच्चे का आलिगन किया मानो खजूर समझकर हाथी ने अग्निशिखा को पकड लिया है। पश्चात् उसने श्री कृष्ण के मुख का एक बार चुबन कर लिया। ठीक है, उस मुख को देखकर ऐसी स्त्री कौन है जो चुबन नही करती।[2]

---

१ मगल जालङ्ङल तिङ्ङि निन्नेड्डमे पोङ्ङि येजुन्नु तुटङ्ङि तप्पोल
आरणर कण्टत्तिलग्निकलेल्लामें पारमेजुन्नु वलजन्चुजन्नु
स्वच्छ ङ्ङलायिन्नु तोयङ्ङलेल्लामे सज्जन मानस मेन्न पोले
तारङ्ङलायुल्ल हारङ्ङल् पूण्डिट्टु पार विलङ्ङि वियत्तु मप्पोल
मत्तङ्ङलाय् निन्नु पाटि त्तुटङ्ङीतच्चित्त तेलिञ्ञल्लल भृगङ्ङलु
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ७।

२ दूरत्तु निन्नङ्ङ कण्टोरु नेरत्त चारत्तु चेन्नु चतिच्चु पुक्काल
अण्टज नायकन तन्नुटे चारत्तु कुण्टलि तान चेन्नु पुकुम्पोले
ओमनत्तमुख तन्निले नोकि वकोण्टोत्तुं निन्नीटिनालोट्टु नेर
नीत्तार कोप कोण्टन्तकन् वारान्नु पार्त्तु निन्नीटिनालेन्नपोले
मेल्लवे नेनङ्ङ् तोट्टु निन्नीटिनाल् पल्लव वेलुमप्पूवल मेनि
रत्नमेन्निङ्ङ्टने तन्निले नण्णि निन्नग्निये च्चेन्नु तोटन्न पोले

× × ×

आगन मारिल न मुख काणुमोजट्ङने तोन्नातो रिल्लेयारु
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १७।

यहा पूतना का घर मे घुसना, बच्चे का अपूर्व सौन्दर्य देखकर ठिठकना, फिर स्पर्श करना, उसे उठा लेना, उसके रोगटे खडे हो जाना, आलिगन करना, चुबन लेना आदि पूतना की चेष्टाओ का क्रमिक वर्णन कितना स्वाभाविक है ! एक सफल कलाकार के समान कवि ने प्रसग का वर्णन करने मे पूर्ण तन्मयता प्रदर्शित की है । भावना और तन्मयता का सयोग काव्यकला मे सोने मे सुगन्धि का काम कर देती है । तन्मयता एक सस्कार-विशेष है जो जन्म के साथ पैदा होती है । विद्वानो ने इसे भी एक शक्ति कहा है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसकी सहायता से कवि अपने मन के भावो को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द अनायास ही ढूढ लेता है। कवि की सफलता इसीमे है कि भावना ने जो बात जानी गई है उसे अर्थयुक्त शब्दो मे लिख दे। यहा पूतना की मोक्ष-प्राप्ति जताना कवि का उद्देश्य है। ईश्वर का दर्शन पाए हुए भक्त और पूतना दोनो की चेष्टाए एक-सी दिखाई पड़ती है। भगवान् के दर्शन होते ही भक्त ठिठक जाता है और किंकर्तव्य-विमूढ-सा हो जाता है। फिर बडे स्नेह से भगवान् का स्पर्श करते-करते पुलकित हो जाता है। और सब कुछ भूल गले से लगाकर चुबन करने लगता है । यद्यपि शत्रु भाव मे ही पूतना श्री कृष्ण के साथ व्यवहार करती है तो भी उसका मन कृष्ण मे इतना लीन है कि वह सहज ही अपने मोक्ष की पात्री बन जाती है। अतएव पूतना की चेष्टाओ की तुलना भक्त से करना कवि की प्रतिभा तथा रुचि को सूचित करती है । यह सब वर्णन चेरुश्शेरी ने सुन्दर भाषा मे किया है। सूर ने सरसरी तौर पर वह कथा कही है। उसके अनन्तर श्रीधर-भग-भग की कथा सूरसागर मे है। किन्तु मलयालम मे वह कथा कदाचित् ही किसी कवि ने लिखी हो।

शकटासुर की मृत्यु की कथा दोनो भाषाओ के कवियो ने सक्षेप मे लिखी है। सूर ने पालने पर भगवान् के शयन का वर्णन सुन्दर रूप से किया है। कृष्ण के जन्म के कारण वृन्दावन-निवासी अत्यन्त सौभाग्यवान् हो गए है। वे कहते है—भगवान् के ससर्ग से जो आनन्द मिलता है उसके आगे तीन लोको का सुख क्या चीज है ! अष्टसिद्धिया और नवनिधिया यहा कर जोडे उपस्थित रहती है। शिव, सनक आदि के लिए अगोचर भगवान् ने वृन्दावन मे जन्म लिया। निस्सन्देह यशोदा माता धन्य है, क्योकि वे कृष्ण को अपनी गोद मे बिठाकर दुलार कर सकी।[1]

---

[1] राग रामकली।

जो सुख ब्रज मैं एक घरी।
सो सुख तीनि लोक मैं नाहीं धनि यह घोष-पुरी।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहति खरी।
सिव-सनकादि-सुकादि-अगोचर, ते अवतरे हरी।
धन्य धन्य बड़भागिनि जसुमति निगमनि सही परी।
ऐसे सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौ अंक भरी॥

—सूरसागर, स्कं० १, [illegible], पद सं० ६८७, पृ० २८४-२८५ ।

कभी किलकारी करके तात-मुख देखते है कभी माता-मुख देखते है। दोनो श्याम को अपने-अपने पास आने के लिए बुलाते है और कान्ह को खिलौना बनाकर बाजी लगाते हैं।[१]

कृष्ण का खीझते हुए माखन खाना, टेढी भौहे और लाल आखे दिखाना, घुटनो से चलना जिससे शरीर का धूलिधूसरित होना, माता की अलकें खीचना, तोतली वाणी से तात कहना[२] आदि का चित्र बडी तन्मयता से सूर ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

यशोदा अपने दुलारे कान्ह को चलना सिखाती है। यह चित्र तो बहुत ही सुन्दर है। सूर कहते है—माता भुजा पकडाकर कृष्ण को खडा करती है पर वे लडखडाकर गिर पडते है, फिर घुटनो के बल से दौडते हैं। फिर धीरे-धीरे भुजा टेककर दो-दो कदम चलते है।[३] कृष्ण अपने सावले शरीर पर झिगुली और सिर पर कुलही धारण करके ठुमक-ठुमक

कटि किंकिनी चद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कठ केहरि नख, बिच बिच बज्र प्रवाल।
कर पहुँची, पाइनि मे नूपुर, तन राजत पट पीत।
घुटुरुनि चलत, अजिर महँ विहरत, मुख मडित नवनीत।
सूर विचित्र चरित्र स्याम के, रसना कहत न आवै।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावैं ॥६७॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० २६४।

१ राग आसावरी

घुटुरुनि चलत स्याम मनि आगन, मातु पिता दोउ देखत री।
कबहुंक किलकि तातमुख हेरत, कबहुं मातु मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर बिदु भ्रुव ऊपर री।
यह सोभा नैननि भरि देखैं, नहिं उपमा तिहुं भू पर री।
कबहुंक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत, उठत पुनि धावै री।
इतते नद बुलाइ लेत है, उतते जननि बुलावै री।
दपति होड़ करत आपुस में, स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हित करि दोउ लीन्हौ री ॥७१६॥

—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० २६४-२६५।

२ राग रामकली

खीझत जात माखन खात
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार बार जँभात।
कबहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुं झुकि कै अलक खेंचत, नैन जल भरि जात।
कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ॥७१८॥

—सूरसागर भाग १, सभा सस्करण, पृ० २६५।

३ राग सूहौ बिलावल

धनि जसुमति बड़भागिनी, लिए कान्ह खिलावै।

चलते हैं। पैजनिया बजती है। उनकी झिगुली, किंकिणी, जन्त्रहार, पहुची, भाल का तिलक, नवनीत रखा हुआ हाथ आदि की अपूर्व शोभा देखकर यशोदा उनपर निछावर होती है।[1]

कृष्ण के चपल तथा विनोदप्रिय स्वभाव का वर्णन सूर इस प्रकार करते हैं—नन्द-रानी श्याम को नचाती हैं। कृष्ण मीठी वाणी से गाने लगते हैं। पैरों मे नूपुर बजते हैं, किंकिणी बजती है। यशोदा भी गान सुनकर ताली बजाती हुई गाती है।[2] दधि-मथन करने मे जसुमति व्यस्त हैं। कृष्ण पास खड़े होकर हँसते हैं। माता पुत्र से कहती है अरे! मोहन! तू नाच ले, नवनीत तुझे मिलेगा। तुरन्त कृष्ण नाचने लगते हैं।[3] माता तथा पुत्र का सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण है यह।

तनक तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ौ होन सिखावै।
लरखरात गिरि परत है, चलि घुटरुनि धावै।
पुनि क्रम क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावै।
अपने पाइनि कबहिं लौं, मोहि देखन धावै।
सूरदास जसुमति इहै बिधि सौं जु मनावै ॥७३०॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० २८६।

१. चलन लाल पैजनि के चाइ।
पुनि पुनि होत नयौ नयौ आनँद, पुनि पुनि निरखत पाइ।
छोटौ बदन छोटियै झिगुली, कटि किंकिनी बनाइ।
राजत जंत्र हार, केहरि नख, पहुची रतन जराइ।
भाल तिलक पख स्याम चखौड़ा जननी लेति बलाइ।
तनक लाल नवनीत लिए कर सूरज बलि बलि जाइ ॥७४१॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३०६।

२ राग सूही
आँगन स्याम नचावही, जसुमति नँदरानी।
तारी दै दै गावही, मधुरी मृदु बानी।
पाइनि नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूजै।
× × ×
जसुमति सुतहि नचावई, छबि देखति जिय तैं।
सूरदास प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तैं ॥७४२॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३०६।

३ राग बिलावल
जसुमति दधि मथन करति, बैठी बर धाम अजिर।
ठाढ़े हरि हँसत नान्हि दँतियनि छबि छाजै।
× × ×
गावत गुन सूरदास, बढ्यौ जस भुव अकास।
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै ॥७५७॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३११।

कृष्ण का नूपुर से रुनुक-झुनुक शब्द उत्पन्न करते हुए आगन मे नाचना, भाल पर का तिलक, कठहार आदि देखकर यशोदा और गोपिया आनद-सागर मे डुबकी लगाती है। उसका चित्र परमानन्ददास सूर के समान ही खीचते है

राग असावरी

माई मीठे हरि के बोलना।
पाय पंजनियां रुनझुन बाजे, आगन आगन डोलना।
कज्जर तिलक कठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना।
परमानददास को ठाकुर गोपी झुनावत मो ललना[1]॥

बाल-प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हुए सूरदास कहते है—एक दिन कृष्ण ने माखन खाते हुए और किलकारी मारते हुए दधि-घट पकडकर अन्दर अपनी परछाई देखी तो मालूम हुआ वहा दूसरा एक बालक खडा है। उसे देखकर वे आपे से बाहर हो गए। उसी दम नन्द के यहा दौडे और शिकायत की कि एक लडका घर के अन्दर घुसकर मेरा माखन खा रहा है। अपने दुलारे को छाती से लगाकर नन्द घट के पास पहुचे और अन्दर देखा। कृष्ण ने समझा कि अपने प्यारे पिताजी उसी लडके को अपनी गोद मे लिए खडे है। उनके क्रोध का पारावार न था। मा के पास दौड गए और तोतली बोली मे कहा—मा, मै तेरा पुत्र हू, किसी और लडके को बावा ने अपना बनाकर मेरा अनादर किया है। कृष्ण की सरल बातें सुनकर मा घट के पास गई और जब घट को अपने दोनो हाथ से हिलाया तो प्रतिबिंब नही दिखाई पडा। कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और हसने लगे।[2]

कृष्ण की चचलता के कई उदाहरण देते हुए सूर ने लिखा है एक दिन कृष्ण ने मा से कहा—अरी मा! तू जल्दी मुझे बडा कर ले। जो मै मागू उसे ज़रूर देना। यदि मेरी इच्छानुसार दूध, दही, मक्खन आदि तू दे दे तो मै सबल हो जाऊगा, कस को पछाड सकूगा और मथुरापुरी को अपने अधीन कर लूगा।[3] यद्यपि ये वचन बालक की

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० २२, तथा अष्टछाप, पृ० ७०२।

२ राग बिलावल

माखन खात हँसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ।
मन मै माप करत, कछु बोलत, नद बबा पै आयौ।
× × ×
कवर हँस्यौ आनद प्रेम बस, सुख पायौ नँदरानी।
सूरज प्रभु की अद्भुत लीला जिन जानी तिन जानी॥७७४॥

—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० ३१४।

३ राग सारग

मैया मोहि बड़ौ करि लै री।
दूध दही घृत माखन मेवा, जो मागौं सो दै री।
× × ×

चचलता सूचित करते हैं लेकिन उनमे व्यग्य छिपा हुआ है। कभी कृष्ण गाते हुए घूमते है, कभी नाचते है, कभी गायो को टेरकर बुलाते है, कभी अपने पिता नद को बुलाते हैं, कभी घर के अन्दर जाकर स्वय मक्खन उठाकर खाते है और कभी खभे मे अपनी परछाई देखकर उसे खिलाते हैं। ये सब देखकर यशोदा बहुत प्रसन्न होती है।[1]

एक स्थान पर कुछ पल भी कृष्ण शान्त नही बैठते। सोने के पहले मा रामायण की कथा बच्चो को सुना लेती है। सीताहरण के प्रसग पर कृष्ण सोते मे जागते है। लक्ष्मण को बुलाकर चाप लेने के लिए कहते हैं। तब मा डर जाती है।[2] कृष्ण की बाललीला पर सूर ने असख्य सुन्दर पद लिखे हैं। उसी प्रकार के मिलते-जुलते पद मलयालम कवियो ने भी लिखे है।

चेरुश्शेरी लिखते है—कृष्ण अपने बडे भाई के साथ आगन मे खेल रहे हैं। तब गोपिया कहती हैं अरे कृष्ण! देखो तेरे लिए मक्खन! मक्खन का नाम सुनते ही कृष्ण उनके पास दौडकर जाते हैं। उसी प्रकार केले का नाम सुनने की देरी है, तुरन्त कृष्ण अपना मुह दिखाते हुए उनके पास जाएगे। खीर की गध पाते ही वे सब कुछ भूलकर उसे पाने के लिए जाएगे। गुड का नाम लिया जाए तो उनके मुह मे पानी आएगा।[3]

रगभूमि मैं कस पछार्‌यौ, घीसि बगाऊ बैरी।
सूरदास स्वामी की लीला मथुरा राखी जैरी ॥७६४॥

—सूरसागर, प्रथम भाग, सभा-सस्करण, पृ० ३२०।

१ हरि अपनै आगन कछु गावत।
तनक तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत।

× × ×

सूर स्याम के बाल चरित, नित नितही देखत भावत ॥७६५॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३२०।

२ राग बिहागरौ

नंद नंदन, इक सुनौ कहानी।
पहिले कथा पुरातन सुनो हरि जननि पास सुर बानी।
रामचंद्र दसरथ सुत, ताकी जनकसुता गृहरानी।
कहँ [illegible] कै, पंचवटी बन, छाँड़ि चले रजधानी।
[illegible] [illegible] [illegible] हर लाए, [illegible] अभिमानी।
लछिमन, धनुष देहु, कहि उठे हरि, जननी सुनि डरानी ॥८१०॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३२०।

३. [illegible]
[illegible]
[illegible]

× × ×

[illegible]

—[illegible], पृ० [illegible]।

एक दिन मा नहाने के लिए चली गई । कृष्ण ने अन्दर जाकर देखा। कोई नही था। अच्छा अवसर पाकर वे मक्खन लेने के लिए एक चारपाई के ऊपर खडे होकर छीके को पकडने लगे। तब चारपाई खिसककर नीचे गिर गई। कृष्ण छीके की रस्सी को पकडकर हिलने-डुलने लगे। कातर होकर वे चिल्लाने लगे। मा आई और पुत्र को जमीन पर खडा करके पूछा अरे तू क्यो ऐसी शरारत करता है ? तब कृष्ण बोले अरी मा ! जब तू नहाने गई तो मैंने सोचा कि तूने अच्छी तरह दही और मक्खन को रखा है कि नही। तू तो बडी मेहनत करके इसे रखती है तब कोई बिल्ली आकर इसे न खावे और दूध न पीवे। इस विचार से मैं इधर आया। मै झूठ नही बोलता। तू मुझपर विश्वास रख। पडोस के बच्चो के समान मैं चोरी नही करता। देख ले ! कल भी पिताजी ने कहा—मैं बहुत अच्छा लडका हू। मैं बार-बार कहता हू कि मक्खन खाने की इच्छा से यहा नही आया।[1]

पून्तानम नपूतिरि ने सूर के समान ही कृष्ण की चचलता, विनोदप्रियता आदि का सुन्दर वर्णन बहुत सक्षेप मे किया है । रामचरित की कथा के प्रसग पर पून्तानम गाते हैं—एक दिन कृष्ण को नीद नही आई। तब यशोदा रामायण की कथा सुनाने लगी। बीच मे कहा कि रावण ने सीता को छीन लिया तो कृष्ण जाग उठे और 'अरे लक्ष्मण' पुकारा।[2] कृष्ण का नाचना, तोतली बाते करना, घुटने टेककर चलना, भाल का तिलक, कटि की किंकिणिया, मोरपख का किरीट आदि के सबध मे दोनो भाषाओ के कवियो ने समान रूप से लिखा है।

पून्तानम कृष्ण की बालचेष्टाओ के बारे मे लिखते हैं—एक दिन कृष्ण ने आइने मे अपना प्रतिबिब देखा। उसे अपना साथी समझकर उन्होने आइने को छाती से लगाया।[3]

---

१ स्नान त्तिन्नायिट्टु मातावु पोकुन्न कालत्तेपार्त्तु निन्ननोरनाल
वेण्णयुं पालुं वेच्चुल्लक्र पूकिनान वेगत्तिल नोविकाफोएटड्डुमिड्डु

× × ×

तन्नु निन्नीट्टुन्न पाल वेण्ण येन्निमट्टिन्नुमे वेण्टतिल्लिन्नमुन्नको
—कृष्णगाथा स० राजराज वर्मा, पृ० २२ २२ ।

२ नालीक लोचन नुरक्कु वरान्येशोदा
नारायणन्टे चरित कथ चोल्लुमप्पोल
सीतान् हरिच्चु दशकधरनेन्नु केट्टि-
टटालोकनाथनयिलक्ष्मण येन्नुरच्चु ॥१२॥
—पून्तानम की कृतिया, म० पि० के० मरार, पृ० ८६ ।

३ कण्णाटियिल फण्टुकनाय रम्य
कणिणल तेनिन्नोग मुखारविन्द
चड्डाति येन्निट्टु निरिच्चु कण्णन
कण्णाटि पूणुन्नतु कण्टिताग ॥२८॥
—पून्तानम् की कृतिया, म० पि० के० मरार, पृ० ८५ ।

जसुमती प्रार्थना करने के लिए बैठती है। अर्चन के पुष्प रखे हुए हैं। कृष्ण दौड़े हुए आते हैं। सारे पुष्प अपने सिर पर रखकर कहते हैं, 'मैं ईश्वर हू' तब मां बोल उठती है, 'अरे रे तू क्या कहता है?'[1] फिर नारायण का जप करने के लिए कृष्ण ने वह कहती है तो भगवान् कृष्ण शर्मिन्दा होकर हस देते हैं। क्योंकि वे स्वय भगवान् हैं।

दूसरे कवियो ने भी इसी ढग से कृष्ण की बाल-क्रीडाओ का वर्णन किया है। परन्तु हिन्दी कवियो का बाल-भाव-वर्णन अद्वितीय है।

बच्चो का आपस मे झगडा करना, एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना आदि का वर्णन सूर ने बडी कुशलता से किया है। वे लिखते है—कृष्ण को बिना मा-बाप का कहकर बलराम खिझाते है।[2] तो कृष्ण माता और पिता से शिकायत करते हैं। यशोदा उनको सरल शब्दो मे कसम खाकर सान्त्वना देती है कि सुनो मेरे लाल, गोधन की सौगन्ध खाकर मैं कहती हू, तू मेरा बेटा है और मैं तेरी मा हू।[3] माटी-भक्षण प्रसग के सबध मे सारे कवियो ने एक ही समान लिखा है

नन्दकुमार की बालोचित क्रीडाओ का चित्र सूर इस प्रकार खीचते हैं—एक दिन कृष्ण अपने साथियो को लिए माखन की चोरी को निकले। गली मे जाते समय एक गोपी के घर मे देखा कि वहा एक गोपी दूध मथ रही है। जब वह कमोरी मागने चली गई तो कृष्ण अपने दोस्तो को बुलाकर अन्दर घुसे और मक्खन खाया। बाहर जाते समय

---

१ नारायणा एन्नु जपिसि नाने।
नारो सनाथिसद् यशोदा।
नाय कृष्णऽौऽ्ट निरितुरोन।
नारायणन सानिति वासुदेवन ॥३५॥

—पूर्णानन पी टुनिया, न० पि० के० स्दर्म, पृ० ८८।

२ सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहि आपु बलकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने?
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
× × ×
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ ॥८३२॥

—सूरसागर, भाग १, सभा संस्करण, पृ० ३३३।

३ मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिस के मारें खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
× × ×
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥८३३॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३३४।

गोपी ने उन्हे देखा और कृष्ण से उसने पूछा, 'तुम लोग कहा गए थे।' कृष्ण ने कहा, 'खेलते समय हमारा यह मित्र भाग गया और तुम्हारे घर मे छिपा रहा।' इस प्रकार कहकर कृष्ण ने अपने उस मित्र को आगे खडा कर दिया। इसके बाद सब वहा से चले गए। यह देखकर गोपी चकित हो गई। उसका मन कृष्ण की ओर हठात् आकर्षित हो गया।[1] सूर आगे कहते है—एक दिन कृष्ण एक गोपी के घर मे घुस गए। उस समय वहा कोई नही था। माखन खाने के बाद उन्होने भाजनो को फोड डाला। फिर सोते बच्चो को कूक कर जगाया और हसते हुए भाग गए।[2] कृष्ण की शरारते बढने लगी। यशोदा तक कृष्ण की चोरी की शिकायते पहुचने लगी। प्रतिदिन एक न एक गोपी उलाहना देने पहुच ही जाती थी। कृष्ण से जब पूछा गया तो मा से उन्होने जो युक्तिभरे वचन कहे वे अनूठे है। वे कहते है—मा! मैने माखन नही खाया। खेल खेल मे मेरे सखाओ ने मेरे मुख पर माखन लगा दिया है। तू ही सोच मा! मै छोटा, उस ऊचे छीके से मक्खन कैसे निकाल सकता हू! ये वचन सुनकर मा मुस्कराई और कान्ह को छाती से लगा लिया।[3]

---

१ सखा सहित गए माखन चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छपथ ह्वै, मथति एक दधि भोरी।
× × ×
भुज गहि लियौ कान्ह इक बालक, निकसे ब्रज की खोरि।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि ॥८८८॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३५१।

२ राग गौरी
गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैं।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनैं।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि करयौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हे, गई महरि कैं आगैं।
सूरदास अब बसै कौन ह्याँ, पति रहिहै ब्रज त्यागैं ॥९३५॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ३३८।

३ राग रामकली
मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल बिनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ ॥८५२॥
—सूरसागर, भाग १, सभा संस्करण, पृ० ३७४।

चोरी के प्रसंग पर मलयालम कवि चेरुश्शेरी लिखते हैं—एक दिन माता यशोदा नहाने गई। अवसर पाकर बालक कृष्ण कमरे में घुस गए। चारों ओर देखने लगे। एक कोने में लटके हुए छीके से मक्खन लेने का संकल्प करके कहीं से एक तिपाई ले आए और उसपर चढ़े। छींके की रस्सी उन्होंने पकड़ी ही थी कि तिपाई गिर गई और कृष्ण टंगे ही रह गए। घबराकर वे सहायता के लिए चिल्लाने लगे। मां दौड़कर आई और कान्ह को लटकते देखकर मुस्कराती हुई उनके पास पहुंची। उसने कृष्ण को नीचे उतारा। मां के पूछने के पहले ही कान्ह ने सफाई देते हुए कहा मां! तेरे जाने के बाद मैंने सोचा कि तू बड़ी कोशिश करके मक्खन आदि बनाती है उसे बिल्ली न खाए, इस विचार से मैंने ऐसा किया। उसके सिवा मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं। तेरी कसम, मैं सच कहता हूं। इस तरह की कुछ और बातें करने के बाद उसने कहा कि रखवाली करने की मजदूरी के रूप में कुछ मक्खन तो दो। मां ने एक हाथ में मक्खन रखा। तब कृष्ण ने कहा—देखो मां! दूसरा हाथ रो रहा है। उसको भी कुछ दे दो। मां ने वैसा किया। एक हाथ का मक्खन खाने के बाद कान्ह ने चिल्लाकर कहा—हाय! हाय! काक लेकर उड़ गया। तब मां ने प्रसन्न होकर और मक्खन दे दिया।[1]

कृष्ण के उत्पातों से तंग हुई गोपियों की शिकायतों का रोचक वर्णन सूरसागर के समान परमानन्दसागर में भी पाया जाता है। परमानन्ददास गाते हैं—गोपियां उलाहना देती हैं अरी यशोदे! तेरे पुत्र के कारण हमें बड़ा कष्ट होता है। हमारे घर में तेरा लड़का आकर बड़ी हानि पहुंचाता है, दूध, मक्खन वगैरह ले जाता है, पात्र सब फोड़ डालता है और लड़कों के कान मरोड़कर भाग जाता है।[2]

---

१. स्नानत्तिनायिट्टु मातावु पोयुन्न नेरत्ते पतारुन्निन्नोरुनाल

× × ×

[illegible]।
[illegible]।

—कृष्णगाथा, जी० डि० के० नागराज पिल्ले, पृ० १६३ से १६७।

२. राग धनाश्री

[illegible] तेरो पूत।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।

—[illegible]

यद्यपि कृष्ण नटखट, चचल और उत्पाती है तो भी विगडी गाय को सभालने की उनकी शक्ति का पता गोपियो को लग गया। उसी दिन मे वहुत घरो मे उनको निमन्त्रण मिलने लगा जिसका मनोमुग्धकारी चित्रण परमानन्ददास ने यो किया है

राग गौरी

नेकु पठै गिरिधर को भैया।
रही विन स्याम पत्याय न औरे, इनके हाथ लगी मेरी गैया।
ग्वाल बाल सब सखा सयाने पचिहारे बलदाऊ भैया।
हूकि हूकि इन ही तन चितवत चाहत नाहिंन अपनो लैया।
सुनि ये वचन हाथ कौरे रहियो दुहू दिसि चितवत कुवर कन्हैया।
परमानंद जसुदा मुसकायो सग दियो गोकुल को रैया।।[1]

कृष्ण की शरारतो का वर्णन मलयालम कवियो ने भली भाति लिखा है। चेरुश्शेरी कहते है एक दिन एक गोपिका ने अपने पिताजी के लिए रोटी वनाई और सुरक्षित स्थान पर रख कही चली गई। कृष्ण ने वहा पहुचकर रोटी तो खा ली और गोवर की रोटी वनाकर उसी स्थान पर रख आए। वेचारी स्त्री ने अनजान मे गोवर की रोटी पिताजी को और घर के दूसरे लोगो को दे दी। खाते समय गोवर का स्वाद उनको लगा।[2] उसकी परवाह विना किए जव वे चवाने लगे तव जिह्वा पर सुई-सी चुभने लगी और वे घवराकर एक-दूसरे की ओर वदरो की तरह देखने लगे।

वन-भोजन के समय भी कृष्ण अपने सखाओ के साथ तरह-तरह के खेल करते और विनोद करते हुए उन्हे हसाते थे। अपने पुत्रो के प्रति नन्द का व्यवहार भी वात्सल्यपूर्ण है। श्रीकृष्ण का कहना मानकर उनका हाथी वन जाना, वालक को अपने ऊपर विठाकर घुमाना आदि वालक-सुलभ चेष्टाओ का अच्छा वर्णन चेरुश्शेरी ने किया है।

उलूखल-वन्धन की कथा मलयालम, सस्कृत और हिन्दी के कवियो ने लिखी है। सूर ने हिन्दी मे कथा को महत्त्व न देकर जसुमति और सखियो की वात्सल्य-भक्ति पर जोर दिया है। उलूखल मे वधे हुए कृष्ण की अवस्था देखकर गोपियो का हृदय द्रवित हो उठता है और कृष्ण को वन्धन से छुडाने की उनकी प्रार्थना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। वे कहती है—अरी जसोदा मा! तू जरा नन्दकुमार की ओर देख। वे भय से काप रहे है और रक्षा पाने के लिए कातर दृष्टि से तेरी ओर देख रहे है। तू अपना क्रोध तज

---

१ डा० गुप्त के परमानन्द-पदसग्रह मे पद स० ६१।

२ चालक नाम्नरान्नन्नेल्लाम शकिच्चु निन्नुटन नयिनानिक
नगरात निन्नु चरवोर नेरत्त नेरानाय वन्निनु भाग मेल्ला
तृम वतनाल कौनगर तनिन मृच नरनकुम्पोतिन पोने
तडडालन सन्टलिन नानक तुटटिडनार का मट्टन वाङ्ग्नाग्न्नपोने
आनन्द वण्णाकिन नडन्नोर्त्तिट्टु वानर वन्नटट् पृगुमप्पोल
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० १७०।

दे और उनको गले मे लगा ले । वे भले ही माखनचोर हो, लेकिन समझना चाहिए कि वे त्रिलोक की निधि हैं ।[1]

उलूखल-बन्धन के प्रसग मे कुबेर के पुत्रो के उद्धार की कथा सारे कवियो ने सुन्दर शैली मे लिखी है। वृन्दावन मे प्रवेश करना, गोप-बालको के साथ बाल कृष्ण की विविध लीलाए, वत्सासुर और बकासुर का वध आदि घटनाओ पर प्रकाश डाला गया है। बालवत्स-हरणलीला मे सूरदास और चेरुश्शेरी दोनो ने मौलिकता दिखाई है । सूर ने भागवत की कथा के आधार पर यह प्रकरण लिखा है। भागवतकार ने कृष्ण को अखिलेश्वर सच्चिदानन्द, दुष्टनाशक, शिष्टपालक आदि के रूप मे प्रस्तुत करके आध्यात्मिक तत्त्वो का वर्णन बडी गभीर शैली मे लिखा है। उसी समय सूर ने कृष्ण को सच्चे मित्र के रूप मे चित्रित कर सखाओ का पारस्परिक मधुर भाषण, व्यवहार आदि का सुन्दर चित्रण नाटकोचित ढग से दिया है। उसमे कृत्रिमता का लेश नही है। उसकी वर्णनात्मक तथा गीत-पदशैली प्रशसनीय है।

चेरुश्शेरी ने प्रस्तुत प्रसग पर एक मनोवैज्ञानिक कहानी बडी ही कुशलता से लिखी है। अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए ब्रह्मा ने देखते-देखते गोप-बालको और गायो को लुप्त कर दिया। कृष्ण ने तुरन्त बात जान ली। उन्होने अपनी माया से नन्द गोपो और गायो की सृष्टि की। इतना ही नही, ब्रह्मा का गर्व दूर करने के लिए उन्होने एक दूसरा ब्रह्मा भी रच डाला। दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि, पहले ब्रह्मा और दूसरे की बातचीत कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है। घबराहट के मारे पहले ब्रह्मा ने दूसरे से पूछा तुम कौन ? दूसरे ने कहा मैं हू ब्रह्मा। इसपर झगडा बढता गया। दोनो आपस मे अपने-अपने बल का बखान देने लगे। एकाएक कैटभ नामक असुर बीच मे कूद पडा और पहले ब्रह्मा की जान लेने के लिए दौडा। बेचारा जान बचाने के लिए भागने लगा। असुर ने उसका पीछा किया । नव ब्रह्मा की दशा पर कृष्ण को दया आई। उन्होने अपनी माया हटा ली। पहले ब्रह्मा को शान्ति मिली और उसे बोध हुआ कि अहकार के कारण ही यह सब मुझे झेलना पडा। फिर वह बालर

---

1. राग केदारौ

देखि री नद नंदन ओर ।
[illegible] आनन [illegible] ।
[illegible] तोरी, [illegible] धीर ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥

—[illegible]

शब्दो मे कृष्ण की प्रार्थना करने लगा। तव उसकी हसी उडाते हुए भगवान् कहते है—आप जैसे वयोवृद्ध हमारे साथ इस प्रकार का व्यवहार करे तो हम वेचारो पर वडी विपत्ति आ जाएगी। गाव के भोले-भाले वच्चो और गायो को घर न पहुचा सकू तो मार खानी पडेगी। मेरा रोना देखने के लिए ही क्या आपने ऐसा किया ?[1]

वचपन से कृष्ण के प्रति गोपियो के मन मे प्रेम अकुरित होने लगा था। उनकी वाक्पटुता, क्रीडा, सौंदर्य, चचलता तथा विनोदप्रियता के कारण कृष्ण के प्रति इनका प्रेम वढने लगा। राधा-कृष्ण की पहली भेट का चित्र वडी सुन्दरता मे सूर ने खीचा है। यमुना नदी के किनारे अपरिचिता राधा को देखकर कृष्ण का मन आकर्पित हो गया। उन्होने राधा से पूछा–अरी गोरी ! तू कहा की है ? किसकी वेटी है ? मैने अभी तक तुझे देखा भी नही। राधा उत्तर देती है–नन्दकुमार की चोरी की वार्ता सुनकर यहा आना ठीक नही समझा। तव कृष्ण कहते हैं–हम तुम्हारी क्या चोरी करेगे, अच्छा हम मिलकर खेले। रसिक कृष्ण की चतुर वातो मे राधा आ गई।[2] उसी दिन से उन दोनो का प्रेम दिन दुगुना रात चौगुना वढने लगा। अन्त मे स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि राधा के लिए कृष्ण मे अलग होकर रहना विलकुल असभव हो गया। एक दिन राधिका ने वहाना किया कि उसे एक साप ने काट लिया। सखिया उसे घर लाई और माता जी से उन्होने कहा कि कृष्ण गारुडी मन्त्र जानता है। यदि वह आए तो राधा वच जाएगी। तुरन्त कृष्ण वुलाए गए। कृष्ण को देखकर राधिका वहुत प्रसन्न हुई। कृष्ण ने वडी सफलता से गारुडी मन्त्र का प्रयोग किया। राधा चगी हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर ने समय के अनुसार राधिका को भोली, चचल, चतुर, प्रेमविवश, परम सुन्दरी, गूढ, अतृप्त मानवती, गौरवशालिनी, स्वकीया, गभीर, परम वियोगिनी के रूप मे सूरसागर मे चित्रित

---

१ वृद्धन्मारायोर कलिच्चु तुटङ्ङनाल मुग्धरा ञङ्ङलिनेन्तु वेण
इङ्ङने निङ्ङल कलिच्चु तुटङ्ङिनालेङ्ङने सकट माकुमल्लो
नाट्टारे वीट्टिले पैतङ्ङलेवकोएटेक्काट्टि वकोटुप्पु ञानेडिङ्ङोचोल।

× × ×

ईश्वरनोट्टु पिजन्चतित्लेतु ञानाश्रय मायतु मट्टोन्नल्ले

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ४०।

२ राग विलावल

सिर दोहनी चली ह्वै प्यारी।
फिरि चितवत हरि हँसे निरखि मुख, मोहन मोहनि टारी।
व्याकुल भई, गई सखियन लौं, ब्रज कौं गए कन्हाई।
[पद स० १३५८]

× × ×

गिरी आनि राधिका धरनि पर, टेरत एकहि नाम।
हरे राम यह बात तुम्हारी, जाहु आपने धाम।
सूर स्याम मनमोहन नागर, हँसि वस कान्ही वाम॥ [पद स० १३८१]

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ५१७ और ५२३ तक।

किया है। इस प्रकार का सुन्दर चित्रण और किसी भी भाषा में नहीं पाया जाता, मलयालम में भी नहीं है।

कालिय-दमन, कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन, मुरली-गान, गान सुनकर गोपियों पर क्या प्रभाव पड़ा, यज्ञ-पत्नी-लीला, गोवर्धन-धारण आदि कथाएं दोनों भाषाओं के कवियों ने भागवत के आधार पर लिखी हैं। यज्ञ-पत्नी-लीला के द्वारा कृष्णगाथाकार ने यह शिक्षा दी है कि कथा के ब्राह्मणों के समान कोई कितना ही पण्डित, कर्मसम्पन्न कर्मठ, कुलीन हो, यदि उसमें सच्ची भक्ति नहीं हो तो वह भगवान् के दर्शन से च्युत हो जाएगा, किन्तु निष्कलंक भक्ति होने पर मुनि-पत्नियों के समान अपढ़, भोले-भाले मनुष्यों को भी ईश्वर के दर्शन मिल सकते हैं।

कालियदमन-लीला के वर्णन में सूर ने कृष्ण की दिनचर्या, गोचारण, कंस-नारद का परामर्श, कालियदह के कमल पुष्प भेजने के लिए नन्द को कंस का निर्देश आदि घटनाओं का विवरण दिया है, जिनसे उनकी मौलिकता का आभास पाठक को मिलता है। उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानो कालियदमन-लीला एक स्वतंत्र खंडकाव्य हो। घटनाओं की विचित्रता, प्रबन्ध-पटुता, चरित्र के चित्रण में स्वाभाविकता आदि खंडकाव्य सभी आवश्यक लक्षण उसमें पाए जाते हैं। इस प्रकार का चित्रण और कहीं नहीं दिखाई पड़ता।

कालियदमन के बाद मलयालम कवियों की कविताओं में दावानल-पान, ग्रीष्मकाल का वर्णन, प्रलंबवध और विविध ऋतुओं का सुन्दर वर्णन पाया जाता है। इनके विपरीत सूर तथा हिन्दी के अन्य कवियों ने राधा-कृष्ण की दूसरी भेंट का वर्णन सुन्दर शैली में किया है। कृष्ण का मुरलीवादन सुनते ही संसार में क्या प्रभाव पड़ता है, उनके संबंध में सूर कहते हैं—विश्व में मुरली का स्वर व्याप्त होते ही बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। स्थिर चलने लगे, चर स्थिर हो गए, पवन थकित हो गया, जमुना उलटी बहने लगी, मृग-समूह सर्वस्व भूल गये हैं, पशु-वृन्द मोहित हो गए, सुरभिया (गौएं) चित्रकित हो दांतों में घास दबाए खड़ी हैं। सनकादि मुनि वृन्दों की समाधि टूटी।[1] गोपियों की दशा के संबंध में सूर लिखते हैं—मुरली ध्वनि सुनते ही गोप-स्त्रियां स्तब्ध रह गईं। किसी को सुधि उनको न रही। निर्निमेष दृष्टि से वे खड़ी देखती रह गईं। ऐसा मालूम पड़ा मानो सभी

---

[1] जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत।

× × ×

सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।
सूरदास भाग हैं तिनके जे या सुखहि लहत ॥१२६८॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ५८०।

चित्रार्पित वस्तुए हो ।[1]

मुरली-गान की महिमा सूर ने सर्वत्र दिखाई है । वे कहते है—कृष्ण ने मुरली वजाई, नाद सुनकर गोपिया सर्वस्व भूल गई । कुल-मर्यादा, गुरुजन का भय, मतान, पति का प्रेम आदि का ध्यान उन्हे न रह गया । पागल-सी होकर वे श्रीकृष्ण के समक्ष जा पहुची जैसे वेणु आदि के वधन से स्वत खिचती चली गई हो ।[2]

दूसरे पद मे सूर ने वताया है कि मोहिनी मुरली का गान मुनते ही जगत् मे उलटी गति हो गई । जो वछडे दूध पीते थे, उन्होने दूध पीना छोड दिया । धेनुओ ने चरना छोटा, जमुना उलटी धार वहने लगी और हवा रुक गई ।[3]

साराश यह है कि ध्वनि सुनकर विना प्रभावित हुए वैठे रहने की सामर्थ्य किसी मे न रह गई । जो मुरली जमुना की प्रवल धारा को उलटा वहा सकती है, जिसकी ध्वनि सुनकर गाए चरना छोडती है, वछडे दूध नही पीते, शिव की भी समाधि भग हो जाती है । खग, मृग, तरु, सुर, नर, मुनि आदि पर जिसका अवाध अधिकार है, उसकी ध्वनि कान मे पडते ही गोपिकाए 'कुलकानि' त्यागकर कृष्ण के पास पहुच ही गई । कैसा जादू है इस मुरली मे !

वशी की महिमा का गान करने के वाद चीरहरण-लीला पर सूर ने विस्तार से

---

१ राग बिहागरा

(कहाँ कहाँ) आगन की सुधि बिसरि गई ।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भई ।
जो जैसें सो तैसें रहि गई, सुख दुख कह्यौ न जाइ ।
लिखी चित्र सी सूर ह्वै रहीं, इकटक पल बिसराइ ॥१२३९॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ४८१ ।

२ राग जैतश्री

जबहिं बन मुरली स्रवन परी ।
चकित भईं गोप-कन्या सब, काम धाम बिसरीं ।
कुल मर्जाद बेद की आज्ञा नैकुहुँ नहीं डरीं ।
स्याम सिंधु, सरिता ललना गन, जल की ढरनि ढरीं ।

× × ×

सबपति नेह, भवन जन संका, लज्जा नाहिं करीं ।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी ॥१६१८॥

सूरसागर, भाग १, सभा संस्करण, पृ० ६०८ ।

३ राग पूरवी

मुरली गति बिपरीत कराई ।
तिहुँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा रमन बजाई ।

× × ×

बिहरत भए नहीं मुनि बाल, सुर गंधर्व नर नारि ।
सूरदास सब चकित जहाँ तहाँ, ब्रज जुवतिनि सुखकारि ॥१६८५॥

—सूरसागर, भाग १, सभा संस्करण, पृ० ६२८ ।

राग बिलावल

नेकु लाल टेकहु मेरी बहियां।
औघट घाट चढ्यो नहिं जाई रपटति हौं कालिन्दी महियां।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप ग्वालि उरझानी।
उपजी प्रीति काम अन्तर गति तब नागर नागरि पहिचानी।
हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै।
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमल नैन तन परस्यौ भावै॥[1]

एक दूसरी गोपी पनघट पर कृष्ण के रूप को देखकर मुग्ध हो गई। वह कहती है—

राग आसावरी

सावरो बदन देखि लुभानी।
चले जात फिरि चितयौ मोतन तब ते सग लगानी।
वे उहि घाट चरावत गैया हौ इतते गई पानी।
कमल नैन उपरैनो फेर्यौ परमानदहि जानी॥[2]

नन्दकुमार की मुरली-ध्वनि, मोहिनी मूरत आदि देखकर एक गोपी मोह-परवश हो गई। उससे सबध मे परमानन्ददास लिखते है—

राग धनाश्री

भावे मोहि माधो वेनु बजावनि।
मदन गोपाल देखि हम रीझीं मोहन की मटकावनि।
कुडल लोल कपोल लोल मधु लोचन चारु चलावनि।
कुतल कुटिल मनोहर आनन मीठे धेनु बुलावनि।
स्याम सुभग तन चदन मडित उर कर अग नचावनि।
परमानन्द ठगी नँद नदन दसन कुद मुसकावनि॥[3]

अष्टछाप के दूसरे कवियो ने भी मुरली की महिमा और कृष्ण के अपूर्व रूप पर कई पद लिखे है।

'यज्ञ-पत्नी-लीला' के द्वारा दोनो भाषाओ के कवियो ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। इसके सबध मे विस्तार से लिखा जा चुका है।

मलयालम के कवियो ने गोवर्धनलीला का वर्णन धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से किया है। सूर ने उसी प्रसग पर व्रज के निवासियो का चरित्र और आचार-विचार आदि पर सुन्दर पद रचे हैं। कृष्ण सबसे पहले अपने सपने की बाते कहकर सरल तथा भोले-भाले व्रज-निवासियो का मन इन्द्र की ओर से धीरे-धीरे विमुख करते है और

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ६०, अष्टछाप पृ० ७०७।
२ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ६६, अष्टछाप पृ० ७०८।
३ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ८८, अष्टछाप पृ० ७१०।

गोवर्धनपूजा करने का उपदेश उन लोगों को देते है। इन्द्र का कोप और जलवृष्टि का चित्र बडी भावुकता मे सूर ने खीचा है। यह प्रसग वडा स्वाभाविक बन पडा है। मलयालम तथा सस्कृत के कवियो ने जहा कृष्ण मे ईश्वरत्व का आरोप किया है, वहा सूर ने कृष्ण को केवल एक मानव के रूप मे प्रस्तुत किया है। सूर की वर्णनात्मक शैली प्रशसनीय है।

चेरुश्शेरी आदि कवियो ने गोवर्धन-लीला के अवसर पर घटित होने वाली एक दूसरी घटना का वर्णन किया है। कामधेनु एक गोपाल का वेष धरकर कृष्ण के सामने प्रकट हुई और कहा कि ब्रह्मा ने मुझे आपके समक्ष मे भेजा है। आपके अतिरिक्त हमारा कोई आश्रय नही। आप पृथ्वी का भार दूर कर दें। इतना कहकर उसने अपने दूध मे भगवान् का अभिषेक किया। उसी दिन से कृष्ण का गोविन्द नाम पड गया।[1] यह प्रकरण सूरसागर मे नही पाया जाता।

एक दिन जमुना मे स्नान करते समय नन्द को वरुण के दूत लेकर चले गए। कृष्ण अपने बाबा की खोज मे वरुण नगरी में पहुचे। कृष्ण के दर्शन पाकर वरुण बहुत प्रसन्न हुए। यह कथा दोनो भाषाओं के कवियो ने सक्षेप रूप मे लिखी है। एजुत्तच्छन ने वरुण के द्वारा कृष्ण को निर्गुण, सगुण और भक्तवत्सल कहलवाया है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी ने नन्द-प्रकरण के बाद रासक्रीडा का प्रसग, सन्ध्या-वर्णन, चन्द्रोदय-वर्णन, वेणुगान, गोपियों का भ्रम, बन्धुओं का त्याग, गोपियो की यात्रा, भगवान् कृष्ण की भेंट, वनवर्णन, गोपियों का दुख, भगवान् कृष्ण की सान्त्वना, वृन्दा-वनलीला, रासक्रीडा, जलक्रीडा, उद्यानलीला आदि विविध शीर्षको पर बडे विस्तार से वर्णनात्मक शैली मे एक प्रबधकाव्य की रचना कर डाली है।

सूर रासलीला का प्रारभ बसी-वादन मे करते है। जब कृष्ण ने बसी बजाई तो गोपिया अपने सुत, पति, कुल-मर्यादा, पुरजन आदि सब छोडकर कृष्ण की भक्ति मे निमग्न होकर कृष्ण से मिलने निकलीं। उन्हे कृष्ण के बिना कुछ भी अच्छा न लगा।[2]

मुरली के प्रभाव के सबध मे विस्तार मे लिखने के बाद सूर कहते हैं—मुरली

---

१. नान्मुखन् चोन्नाले यन्नु मानिच्चुन्ने नाथनायुन्नोरिन्निन्नेयल्लाग्नान्

× × ×

पावंपदंन सन्निभषेकमे च्चेयनिट्टु गोविन्दनेन्नोर पेरुलिट्टान्

—कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० ५८।

२ राग गुंड मलार

[illegible] मुरली [illegible] न [illegible]।

स्याम पै [illegible] पहुंचाइ [illegible] दियौ, [illegible] मधि मदन [illegible]।

[illegible] मन [illegible] पुरन करें [illegible] मर्याद [illegible]।

[illegible], [illegible] सुत पति नहीं, [illegible]।

[illegible] सुत, धन, गोकुल, [illegible], [illegible] रस [illegible] न [illegible]।

सूर प्रभु सौं प्रेम [illegible] करि कै [illegible], [illegible]।

—[illegible], भाग १, [illegible], पृ० ६०५।

नाम से सारा भुवन आकर्षित हो गया, हवा रुक गई, चन्द्रमा भ्रमण करना भूल गया, नक्षत्र-समूह लज्जित हो गए। नाग, नर, मुनि, सब थक गए। ब्रह्मा शिव समाधि से जाग पडे। नारद का ध्यान टूट गया, अनन्त का आसन चलायमान हो गया। वैकुण्ठ मे वशी की ध्वनि पहुची तो भगवान् विष्णु ने कृष्ण को देखने की इच्छा कमला से प्रकट की।[1] वे दोनो वृन्दावन पहुचे और रासलीला देखते-देखते पलके मारना भूल गए।[2] कहने का साराश यह है कि मुरली की अपार महिमा का वर्णन बडी सुन्दरता से विस्तृत रूप मे सूर ने किया। सारे लोको मे इसका प्रभाव पडा है।

मलयालम के कवियो ने इस प्रसग पर बहुत कुछ लिखा है। चेरुश्शेरी इस प्रकार लिखते हैं—श्याम मनोहर मुरलीधर वशी बजाने लगे तो चराचर पर जादू का सा प्रभाव पडा। वृन्दावन के सब प्राणी परमानन्दसागर मे डूब गए। पशु-पक्षियो पर जो प्रभाव पडा उसके बारे मे कवि कहते हैं—पुष्पो से भ्रमर रस चूस रहे थे। मुरली-गान सुनते ही उन्होने रस चूसना एकदम छोड दिया और गानरूपी मधु का आस्वादन करने के लिए चल पडे। गो-समूह गान सुनकर दग रह गया। मोर मोरनियो के सग नाचने लगे। वृक्ष मधु भरे पुष्पो को गिराना छोड अपनी डालियो को झुकाकर खडे हो रहे। कस के हृदय के समान कडा पत्थर भी उद्धव के मानस के तुल्य अद्भुत परतन्त्र हो गया। कल-कल स्वर करती हुई बडे वेग से बहने वाली यमुना भी लहरो का लहराना रोककर स्तब्ध रह गई। मछलियो के आनन्द के बारे मे क्या कहना! वे सब अपनी-अपनी पूछ के सहारे जल से स्थल मे कूदकर उछलने लगी। हिरनिया गरदन घुमाकर जहा से गान सुनाई पडा उस ओर देखने लगी। आधा चबा हुआ तृण उनके मुह मे लगा रहा। सिंह ने, जो क्रोध के मारे हाथी का मस्तक फाड रहा था, ज्यो ही मुरली-गान सुना, खडा रहा। चूहे के पीछे दौडते हुए साप ने जैसे ही उसे पकडा वैसे ही गान सुना, वह भी अवाक् स्थिर हो गया। बाघ बछडे पर हमला कर रहा था, गीत सुनते ही उसे अपने बच्चे के समान प्यार करने

---

१ राग कल्यान

हरपि मुरलीनाद स्याम कीन्हौ।
करपि मन तिहूं भुवनि सुनि, थकि रह्यौ पवन, ससिहि भूल्यौ गवन ज्ञान लीन्हौ।
तारका गन लजे, बुद्धि मन मन सजे, तनहि तनु-सुधि तजे सब्द लाग्यौ।
नाग नर मुनि थके, नभ धरनि तन तके, सारदा स्वामि, सिव ध्यान जाग्यौ।
ध्यान नारद टर्यौ, सेस आसन चल्यौ, गई वैकुठ धुनि मगन स्वामी।
कहत श्री प्रिया सौ राधिका रमन, ये सूर प्रभु स्याम के दरसकामी।

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६२७।

२ पल्प्पद मालकलरभुतमायोरु पुष्परसत्ते वेटिञ्ञुटने

× × ×

व्याघ्रवरन चेन्नङ्डेण्किकिटाविने शीघ्रतर चेन्नु वाय्ककोएटप्पोल
पाट्टङ्ङु केल्क्कयाल तन् पैतले प्पोले वाट्ट वरुत्ताते चेर्त्तुनिन्नान

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६४, ६५।

और दुलारने लगा। कवि आगे कहते हैं—मुरली-गान ब्रह्मा के लिए सामवेद समान, भक्त लोगो के लिए मन मे आनन्द उत्पन्न करने वाले मधु के तुल्य और नारियो के लिए मन्मथ मन्त्र-सा मालूम पडा।[1] विविध कामो मे लगी हुई गोपिकाएं सब कुछ भूलकर कृष्ण के पास दौडी हुई आई। वे पागल के समान दीख पडी। इस विषय मे दोनो भाषाओ के कवियो ने एक ही समान कविताए रची है। जब गोपिया रात को कृष्ण के पास आई तब उन्होंने ये वचन कहकर उन्हे लौटाने की कोशिश की—आप लोग क्यो इस अवसर पर यहा आई, यह तो भयकर वन है। यहा कई भयकर जानवर है। अब आप लोगो के पतिदेव और गुरुजन आपके विरह मे व्याकुल हो रहे होंगे। क्या आप वन की शोभा देखने के लिए निकली है? तो यहा की हरियाली, पक्षियो का कलरव आदि का आस्वादन करके जल्दी लौट जाइए। नही तो घर के लोग रूठ जाएगे। लोग क्या-क्या सोचेंगे और कहेंगे?[2] ये सुनकर गोपियो को बडा दुख हुआ और उनका चेहरा उदास हो गया। वे इस प्रकार की बातो की आशा भी नही करती थी। अन्त मे कृष्ण ने उनको सान्त्वना दी और उनके साथ रासक्रीडा की। बीच मे गोपियो के हृदय मे जरा अहकार पैदा हुआ, उसके सबध मे चेरुश्शेरी ने लिखा है—

कान्ह रूपी जगमगाता दीप बुझ गया तो दुखान्धकार चारो ओर फैल गया। गोपियो के मन मे प्रेममिश्रित क्रोध उत्पन्न हुआ।[3] कृष्ण के अन्तर्धान होने से गोपियो को अपार दुख हुआ। कृष्ण को खोजती हुई और आखो मे आसू भरे हुए वे उनकी खोज करने लगी। मार्ग मे वृक्ष, लताए, फूल, भ्रमर, पक्षी आदि से कृष्ण का पता-ठिकाना पूछती है। विरह-वेदना से उनका हृदय छटपटाने लगता है। यह दृश्य सचमुच करुणापूर्ण है। वे पेड-पौधो से पूछती है—हे अनन्नास के पौधे! तुमसे एक बात हम पूछें तो निष्कपट होकर बता देना। बता कि क्या हमारे कृष्ण इस ओर आए है? उनका रग वाले बादल

---

१ वार् मेघुम् गानत्पकन पोनिक्कु मामनिन गान नायर्मेविनिन्नु।

× × ×

वाहनमानिर् [illegible] मोहनगादिनु सोक [illegible]।
नारिमारेल्लार्क्कुं मारन् [illegible] नाग्य मन्त्रमाय् नेरेवन्नू।

—कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० ६५।

२ [illegible] मोरवक्कुं [illegible]

× × ×

[illegible] को [illegible]
[illegible]

—कृष्णगाथा, म० [illegible], पृ० [illegible]।

३. [illegible]
[illegible]
[illegible]

—कृष्णगाथा [illegible], पृ० [illegible]।

के समान है, सिर के बालो पर मोरपख खोंसे हुए है, हाथ मे मुरली है, पैरो मे नूपुर है। छाती पर माला है, पीताम्बर पहने है, भाल पर बिन्दी है, वाणी मीठी है, ललाट पर कुकुम लगा है, भुजाओ मे ककण है, स्त्रियो के हृदयो को शीतल करने वाली उनकी मीठी मुस्कान है। उस चितचोर को शायद तुमने न देखा होगा, तो भी यह मत कहना कि मैंने नही देखा। हे कोकियो! तुमने हमारे केशव को देखा है? बालको के साथ खेलते-खेलते वे इस ओर तो नही आए? यदि कही देखा है तो तुरन्त हमे बता दो। हे कोको! तुमने हमारे गोकुल-नायक को देखा?[1] इस प्रकार रोती-कलपती और हाय-हाय करती हुई गोपिया उनको खोजती है और अन्त मे शिथिल होकर उनको पुकारकर कहती है—हे भगवान्, हमारे पिता, माता सब तुम ही हो। हमारे लिए दूसरा कोई अवलब नही। हमे अभय स्थान दो। हे कृष्ण! तुम्हारी कृपा न हो तो हम कैसे जी सकती है? तुम प्रत्यक्ष होकर वचन रूपी सुधा की वर्षा कर दो। इसके पूर्व जब-जब आपत्तिया आई थी, तब तुम्हीने उन्हे दूर करके हमारी रक्षा की थी। अब हमपर प्रसन्न हो जाओ।[2]

---

१ कैते ञान निन्नोटु मेल्लोन्नु चौदिच्चाल कैतव कैविट्टु चोल्लेण नी
एङ्ङ्लु वन्नुल्लोरोमन क्कान्तने यिङ्ङु वरुन्नतु कण्टिल्लल्ली
कार मुकिल पोले यवन्नु निर तन्ने कारकुजलोट्टुएड्डु केट्टिप्पन्ने
कयि्यल कुजलुएडु कालिल् च्चिलपुएडु मेयि्यलम्पाणपुट्ट पुएणुमुएडे
मञ्ञल पिपिञ्जोरु कूरयुटुत्तुङ्ङु
मञ्जल माय मोजियुमुएटे
नेट्रिमेल त्ताण कुरु निरयुमुएड्
नेरिल्लयातोरु क्कान्तियुएटे
कुकुम कोएडु तोटुकुरि यिट्टुएड्
ककणमुएडु करङ्ङलिल
पेएणुङ्ङल् नेन्चक तन्नेप्पिलक्कुंन्न
पुन्चिरि युएडुटल कूट्क्कूटे
कण्टल्ल येन्किलु कन्टतिल्लेन्नतु
मिएटोल्ला ञङ्ङलोटङ्ङने नी
× ×
केवल कण्टल्ल येन्ने वेएडु ।।२८४।।

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० २७८ से २८५।

२ अच्छनाय् निन्नतु अम्मयाय् निन्नत्
निश्चलना किन नीनानन्रे
नायिन्नु ञङ्ङले क्कैवेटिञ्ञेंकिलो
पोटोल्लायोन्नुमे कालमिप्पोल
× × ×
चेवि तन्निल पोट्टि निरयक्कोणमेट्टमेट्ट

—कृष्णगाथा, स० श्री रामविलास प्रेस, पृ० ७८।

इस प्रकार की कातर प्रार्थना के बाद कृष्ण प्रत्यक्ष होकर गोपियों को प्रसन्न करते हैं। सच्चा भक्त अपना अहंकार जब दूर करता है तब उसे भगवान् का साक्षात्कार होता है। उसी प्रकार गोपियों के मन में अहंकार हुआ तो भगवान् कृष्ण अप्रत्यक्ष हुए। फिर आत्मसमर्पण से गोपियों का मन शुद्ध हुआ, तब भगवान् के दर्शन हुए। यद्यपि गोपियों को कुछ लोग चरित्रहीन कहते हैं तो भी कवि ने दिखा दिया है कि पश्चात्ताप और भक्ति से गोपियों के मन की मलिनता दूर होती है और योगियों के लिए भी दुर्लभ भगवान् के दर्शन उन्हें प्राप्त होते हैं।

प्रायः सभी कवियों ने सजीव, सुन्दर भाषा में लिखा है कि भगवान् कृष्ण ने दर्शन देने के बाद गोपियों के साथ रासक्रीडा की। उसे देखने के लिए अनेक देव तथा देवियां आती हैं जिसका चित्रण कृष्णगाथाकार ने विस्तार से किया है। यह उनकी मौलिक रचना है। उस प्रसंग में गाथाकार की बहुमुखी प्रतिभा असाधारण लोकज्ञान, विशेषकर स्त्रियों के स्वभाव का ज्ञान तथा कल्पना की कुशलता का परिचय पाठक को मिलता है। कवि ने लिखा है—रंभा आदि अप्सराओं ने कृष्ण की रासक्रीडा देखने के लिए सबसे पहले आकाश-गंगा में स्नान किया। फिर सुन्दर-सुन्दर साड़ियां पहन लीं। सबने निश्चय कर लिया कि अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर ही वहां जाना चाहिए। नन्दनन्दन के सामने सुन्दर रूप में ही उपस्थित होना चाहिए।[1]

फिर सब प्रकार सजकर वे निकलती हैं। कवि ने इन सब का बड़ा लंबा वर्णन किया है। स्त्रियों के स्वभाव, बातचीत, गहनों की ओर उनकी रुचि, आपस में बुरा-भला कहना, अपनी-अपनी साड़ियां और वस्त्रों के संबंध में बढ़-चढ़कर बातें करना आदि इतनी तन्मयता और सुन्दरता से शायद ही किसी कवि ने लिखा हो। उनकी बातचीत का ढंग इस प्रकार है—अरी मेनके, तू जरा आगे ही चल तो दूसरी कहती है—यदि तू देर करेगी तो मैं आगे जाऊंगी। यह तो कवि की मौलिक कल्पना है। देवस्त्रियों के नाम रखने में कवि ने अपनी प्रतिभा और भावुकता प्रदर्शित की है। गुण के अनुसार नाम भी दिए गए हैं। नाम ये हैं, कन्दर्पा, मानिका, मल्लिका, विलासिनी, लीलावती, हेमा, शृंगारमंजरी, गायनमालिनी, पेशलवादिनी, मालिनी, पंकजमालिनी, सीमन्तवेणी, आनन्दलीला, मानियलीला, कर्पूरवाणी, शंखिनी, कस्तूरमंजरी, मानियगामिनी, चन्द्रिका आदि। मूल ग्रन्थ में यह प्रसंग बहुत साधारण रीति से लिखा गया है। उस समय गन्धर्वराज उन्मुखता से अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ ले विमानों से आरूढ़ होकर चलने लगे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि सैकड़ों विमानों से आकाश भर गया। दुन्दुभियां बजने लगीं और पुष्प-वृष्टि

---

[1] नन्दसूनवे पावन नेत्रयु [illegible]
[illegible]

—कृष्णगाथा, [illegible] पृ० [illegible]।

होने लगी।[1]

सूरसागर मे सूर ने लिखा है कि रासक्रीडा के अवसर पर श्रीकृष्ण के साथ राधा का विवाह हुआ। वे कहते है—विवाह के समय देवो ने बाजे बजाए। मुनिवृन्द जयजय-कार करने लगे। नवल गिरधरलाल दूल्हे बने और दुलहिन श्री राधिका।[2] विवाह के बाद रासक्रीडा का वर्णन बडे विस्तार से सूर ने लिखा है। इस क्रीडा मे राधिका को प्रमुख भाग दिया गया है। यह सूर की मौलिक सूझ है। राधा-कृष्ण का मिलन, रति-सबधी वर्णन, राधा का रूठ जाना, उन्हे मनाने के लिए कृष्ण की उक्तिया, राधा का मान जाना, रतिलीला आदि का नग्न चित्र सूर ने खीचा है।

पनघट-प्रस्ताव के समान दानलीला सूर की मौलिक रचना है। इसके द्वारा सूर ने माधुर्य भाव की महत्ता दिखाई है। गोपियो के प्रेम की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण सूर ने दिया है। कृष्ण का अपने सखाओ के साथ गोपियो से वार्तालाप करना नाटकीय और सजीव है। इसकी सरल तथा सुबोध शैली प्रशसनीय है।

इसकी कथा यह है कि जब गोपिया दधि बेचने के लिए मथुरा जाती है तब मार्ग मे अपने सखाओ के साथ कृष्ण उनको रोककर दधिदान मागते है। गोपिया पहले उनका विरोध करती है परन्तु अन्त मे उनकी इच्छा के अनुसार वे दधि देने के लिए तैयार होती है। गोपियो की व्यग्य भरी बातो से उनका उत्कट कृष्ण-प्रेम व्यजित होता है। अन्त मे मे यहा तक हो गया है कि गोपिया कृष्ण पर पूर्ण रूप से सर्वस्व अर्पण करती है जिससे वे योगियो के लिए भी दुर्लभ सुख की अधिकारिणी बन जाती है।

दानलीला मे सूर ने लिखा है कि कृष्ण भक्तो को सुख पहुचाने वाले है, स्त्री-पुरुष भेद के बिना जो उनका भजन करते है उनके साथ समान भाव से वे व्यवहार करते है। जो जिस भावना से उनकी पूजा करते है उसी प्रकार उनको वे दर्शन देते है। कामातुर गोपियो ने उनको पति के रूप मे पाने के लिए मन-वाणी-काया से उनमे अपना चित्त लगाया। भगवान् कृष्ण ने उसी प्रकार उनकी इच्छा पूरी की। जहा-जहा गोपिया जाती थी, वहा-वहा कृष्ण ने जाकर उनका मन बहलाया और उनकी काम-व्यथा मिटाई। नव-युवतिया भिन्न-भिन्न कर्म करते समय भी कृष्ण की मनोमोहिनी सूरत का ध्यान रखती

---

१ य मन्येयरन नमस्तावद्विमान शत सकुलम
दिवौकसा स दाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्
ततो दुन्दुभयो ने दुर्निपेतु पुष्पवृष्टय
जगु गन्धर्व पतय सस्त्रीका स्यशोमलम

—दशम स्कन्ध अध्याय ३३।

२ बाजहि जु बाजन सकल सुर नभ पुहुप अजलि वरषही।
थकि रहे व्योम विमान, मुनि जन जय सबद करि हरषही।
मुनि वृन्दावनहि भयौ आनद, पूजि मन का साधिका।
श्री लाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनी श्री राधिका ॥१६९०॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६३१।

हुई सुख लूटने लगी। गोपिया गोरस बेचने के लिए निकली तब उनकी सुन्दर वेश-भूषा देखकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने सखाओ के साथ दधिदान मागकर उनको सुख पहुचाया।[1] सूर ने इस लीला के द्वारा गोपियो की मधुर भक्ति की चरम सीमा दिखाई है।

दधिदान मागते समय कृष्ण और गोपियो के सवाद बडे मनोरजक है। बातचीत के सिलसिले मे कृष्ण ने कहा कि इस त्रिभुवन मे कोई ऐसा नही जो उनके वश मे न आता हो। गोपिया कहती है—छोटे मुह बडी बात! अपने को सभालकर बात कहो। जो अनजान है उनसे ऐसी बातें करो। तीन लोक और कब कब से तुम्हारे वश मे आ गए हं? इस प्रकार की झूठी बातें क्यो कर रहे हो? हमे यह अच्छा नही लगता।[2]

बाते करते-करते कृष्ण कहते है—मैंने लडकपन मे गोवर्द्धन पर्वत को अपने कन्धो पर उठा रखा और मै बडा शक्तिशाली हू। इसपर गोपिया कहती है—तुमने अपने घर का गिरवर उठा लिया और उसपर व्यर्थ अभिमान करते हो। हमे यही मालूम है कि तुम गाय चराने वाले, पीताम्बरधारी हो। तुम्हारी कामरी और लकुटिया भी हम जानती हं।[3]

फिर कृष्ण ने अपनी बडाई करते हुए कहा कि हमने भक्तो की रक्षा करने के लिए अवतार लिया है और हम सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हं।[4] इसे सुनकर गोपिया व्यग्य करती

---

१ भक्तनि के सुखदायक स्याम। नारी पुरुष नहीं कछु काम॥
संकट मैं जिनि जन पुकार्यौ। ता प्रगटि तिनकौं उद्धार्यौ॥
×　　　　×　　　　×
अब दधि दान रच्यौ इक लीला। जुवतिनि संग करौं रस क्रीला॥
सूर स्याम मन मनसनि पुरायौ। यह लीला कहि सुख उपजायौ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ७६४-७६५।

२ छोटे मुख बडी बात, करौ जिन आपु सम्हारे।
तीन लोक अब बस कबहिं भए तुम्हारे।
×　　　　×　　　　×
झूठी सिखवत बानि, सुनत हमकौं नहिं भावत॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ७६६।

३ गिरिवर धर्यौ आपने कर कौं।
कहा कै [illegible] दान लेत हौ, रोकि रहत [illegible] दर कौं।
×　　　　×　　　　×
[illegible] कामरिया, और लकुटिया कर कौं।
—सूरसागर, भाग १, सभा-संस्करण, पृ० ७७४।

४ [illegible]
[illegible]
[illegible]
—सूरसागर, भाग १, पद सं० २१४८, पृ० ८८३।

हे अरे कृष्ण ! तुम क्या बात करते हो ? युवतियो मे इस प्रकार की बाते कहकर क्यो डरपाते हो ? यदि चाहो तो माखन-दधि ले लो परन्तु युवतियो को क्यो कष्ट पहुचाते हो ?[1]

कृष्ण ने मार्ग रोका तो गोपियो ने घरवालो को बुलाने की धमकी दी। तब कृष्ण ने कहा कि मै राजा कस का भी काम तमाम कर सकता हू ।[2] उसको मारकर छत्रपति बनने की इच्छा तुच्छ है और यह भी कहा कि जब तक कस जीता रहेगा तब तक हमारी मैत्री रहेगी। यह सुनकर गोपियो के मन मे कृष्ण के प्रति शका होने लगी।[3] कृष्ण की यह बात जानकर गोपिया अत्यन्त व्याकुल हुई । उनसे अलग होकर रहना गोपियो के लिए बिलकुल असभव मालूम पडा। तुरन्त दधिदान करने के लिए वे तैयार हो गई । कृष्ण तो दधिदान से तृप्त न होने वाले थे। वे और ही दान चाहते थे। गोपिया यह जानकर कहती है—सखाओ के साथ पराई स्त्रियो को घेरना अच्छा नही, मर्यादा भग हो जाएगी।[4] कृष्ण ने उनकी बातो पर ध्यान न दिया। अत मे प्यारी ने उनको अपने पास बुलाकर लोक-मरजाद की बात कही। सखाओ ने कहा कि तुम सब एक हो।[5] यह आध्यात्मिक तत्त्व गोपियो की समझ मे नही आया।

---

१ कान्ह कहा की बात चलावत ।
स्वर्ग पताल एक करि राखौ, जुवतिनि कहा बतावत ॥
जौ लायक तौ अपने घर को, बन भीतर डरपावत ।
कहा दान गोरस को ह्वै है, सबै न लेहु दिखावत ॥
रीती जान देहु घर हमकौ, इतनैं हीं सुख पावत ।
सूर स्याम माखन दधि लीजै, जुवतिनि कत अरुझावत ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २०८१, पृ० ७८७ ।

२ अब तुमकौं मैं जान न दैहौं ।
दान लेउ कौड़ी कौड़ी करि, बैर आपनो लैहौं ।
गोरस खाइ बच्यौ सो डार्यौ मटुकी डारीं फोरि ।
दै दै गारि नारि झकझोरीं चोली के बँद तोरि ।
हँसत सखा करतारी दै दै बन में रोकीं नारि ।
सुरत लोग घर तैं आवैंगे सकिहौ नहीं सम्हारि ।
घर के लोगनि कहा डरावति कसहि आनि बुलाइ ।
सूर सबै जुवतिनि के देखत, पूजा करौं बनाइ ।
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१६३, पृ० ७६४ ।

३ तबहि लगि यह सग तिहारौ, जब लगि जीवत कस ।
सूर स्याम के मुख यह सुनि तब मन मन कीन्हौं सस ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१६५, पृ० ७६४ ।

४ सखा लिए तुम घेरत पुनि पुनि, बन भीतर सब नारि पराई ।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै इन बातनि मरजाद नसाई ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१७२, पृ० ७६६ ।

५. सूर स्याम स्यामा तुम एकौ, कह हमहिं ससार ।
—सूरसागर, भाग १, पद स० २१७६, सभा सस्करण, पृ० ७६८ ।

अन्त मे गोपियो ने श्याम से शरण देने की याचना की। कृष्ण ने उन गोपियो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। सूरदास कहते है—कृष्ण अन्तर्यामी है, उन्होने गुप्त रूप मे ही यौवन का दान ले लिया।[1] कवि ने यहा दिखा दिया है कि गोपियो का काम-सुख केवल मानसिक है।

इसके बाद सूरदास दधिदान की पार्थिव लीला का वर्णन करते है। गोपालो के साथ कृष्ण दधि-माखन खाते है। कृष्ण तो अपने लिए माखन नही खाते है वरन् अपनी प्रेमिकाओ को तृप्ति के लिए खाते है, प्रेमवश ऐसा करते है। सभी मटकिया वैसे ही भरी रहती है। उनके एक हाथ मे दधि और दूसरे मे दधिजात है। गोपिया उन्हे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है।[2] दान-लीला का इतना सुन्दर वर्णन किसी भी पुस्तक मे और किसी भी भाषा मे नही पाया जाता।

गोपियो के साथ राधा और कृष्ण का झूला झूलने का एक प्रसग सूरसागर मे पाया जाता है। जो सूर की स्वतत्र रचना है। यह एक खण्डकाव्य के समान प्रतीत होता है। कृष्ण के सुख-विलास का चित्र इसमे खीचा गया है। गायो को चराने के लिए कान्ह वन मे जाया करते है। तब उनके रूप-सौंदर्य, मुरली-वादन आदि की चर्चा मे गोपिया अपना समय बिताती है। इन सबके बारे मे भागवत और दूसरी पुस्तको के समान सूरसागर मे भी लिखा गया है। सूर का वर्णन और भी अधिक भावात्मक है।

सुदर्शन-मोक्ष, शखचूडवध, अरिष्टासुर का वध के बाद येस्सेरी ने अपनी कृष्ण-गाथा मे नारद और कस की बातचीत का वर्णन किया है। नारद कस मे कहते है कि अरे कस! वृन्दावन मे एक लडका पैदा हुआ है, जो देवकी का आठवा पुत्र है। तुम उनसे

---

1 अन्तरजामी जानि लई।
मन मे मिले सबनि सुख दीन्हौ, तब तनु की कछु सुरति भई।
[illegible]
[illegible]
स्याम बिना [illegible]
[illegible] प्रभु अन्तरजामी, [illegible] जोबन दान लयौ।
—सूरसागर, भाग १, [illegible], पद स० [illegible], पृ० [illegible]

2 गोपिनि [illegible]
प्रेम के [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
सूर प्रभु [illegible]
—सूरसागर, भाग १, [illegible], पद स० [illegible], पृ० [illegible]

होशियार रहो। यदि तुम उसे जल्दी न मार डालोगे तो तुम्हारा नाश होगा।[1] फिर केशी और व्योमासुर का वध कृष्णगाथा मे लिखा गया है । सूर ने वे सब प्रसग बहुत सक्षिप्त करके लिखे है।

अक्रूर के आगमन के प्रसग पर सूर ने मौलिकता प्रदर्शित की है । यहा नारद कृष्ण की सलाह लेकर कस के पास जाते है और कस को उपदेश देते है—राम-कृष्ण को मथुरा मे बुलाना चाहिए । कस के दु स्वप्न और नारद के भावी कस-वध-सबधी स्वप्न सूरदास की मौलिकता के परिचायक है । गोपिया और यशोदा के करुणाभावो से ओत-प्रोत विरह-विलाप का चित्रण भी मार्मिक है।

कस की आज्ञा से अक्रूर वृन्दावन आते है और दोनो भाइयो को मथुरा ले जाते है। कृष्ण के दर्शन के लिए आने वाले भक्त अक्रूर की चिन्ताओ का चित्रण करने के बाद उनके मिलन का प्रसग सुन्दर शैली मे लिखा गया है । कृष्ण-गाथाकार ने अक्रूर की निष्कलक भक्ति का सुन्दर चित्र यो खीचा है

जब अक्रूर ने देखा कि भगवान् के पैर भूमि पर अकित है तो रथ से उतरकर दण्डवत् की और वह मिट्टी अपने शरीर पर लगा ली। अत मे कवि ने भूखे-प्यासे चातक से अक्रूर की तुलना की है।[2] यह कल्पना बडी उत्कृष्ट है।

मथुरा मे रहते समय कृष्ण का मन, माता यशोदा से विलग होने के कारण सदा उदास रहता था। मा के लिए अच्छे कपडे देने के बाद उन्होने नद को मा यशोदा को सदेश देते हुए कहा मेरे ये चार कपडे मेरी मा के हाथ मे आज ही दे देना। फिर कहना, मुझे मत भूल जाना। दूध और मक्खन न मिलने से मेरे पेट मे बडा दर्द है । यदि घर से कोई आदमी इस ओर आए तो उसके द्वारा दूध आदि पहुचा देना, नही तो मै रोऊगा ही। मैने अपनी काछनिया सदूक मे छिपाकर रखी है। मन मे दु ख है कि वे खराब न हुई हो। हल्दी से रगीले मेरे कपडे सुरक्षित रखना। मैने बच्चो के चुटकी काटी जिससे तुमने नाराज होकर मुझे मारा। तब मै बिना खाए रहा। उस समय मुझे प्रसन्न करने के लिए एक कपडा दिया था न। उसे कही तुम सुरक्षित रखो मा। मेरी किकिनिया, तीर-कमान, खिलौने, सब मेरे आने तक रखना मा।[3]

---

१ मुन्पिले नी चेन्नु कोल्लुन्नोनल्लायि्कल
तण पेट्ट मेन्नुल्लतोर्कनेण

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०६।

२ कामिच्चु निन्निट्टु केजुन्न वेजापल
कारमुकिन मालये वकाणुम्पोले।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०६।

३ अम्मयक्कु नल्कुवान चेम्मल्ल चेलकल्
नन्दन्टे कैयियले नलकि च्चोन्नान
नल् च्चेल नाटु मेन्नम्म तन् कैयियले

उद्धव के द्वारा कृष्ण ने यशोदा को जो सन्देश भेजा था उनके वर्णन मे सूर और चेरुश्शेरी मे समानता दिखाई पडती है । सूर कहते है—हे मा[1] हम और हलधर भैया दोनो चार-पाच दिन मे लौट आएगे । मेरी मुरली, बेंत, बिखान, सीग आदि को देखना, नही तो राधिका कुछ खिलौने चोरी करके ले जाएगी । जिस दिन से हम वहा से निकले उस दिन से मुझे किसीने कन्हैया नही पुकारा । यहा वसुदेव और देवकी मुझे अपना पुत्र बताते है । नन्द बाबा ने तो बडी निठुरता दिखाई है । यहा हमे पहुचा देने के बाद इस ओर आए भी नही ।[1] बच्चो का सहज स्वभाव और भोलेपन के साथ शिकायत आदि का सरल और मार्मिक चित्रण इन पदो मे किया गया है ।

अक्रूर के साथ राम और कृष्ण मथुरा मे पहुचते है । उनको देखकर मथुरा के नागरिको तथा कस पर क्या प्रभाव पडा, उसका सुन्दर चित्र सूर ने खीचा है । रजक-वध, कुब्जा की कथा, चाप-भजन, कुवलयापीड हाथी, मल्ल-वध आदि का वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है । मल्लयुद्ध का वर्णन मलयालम के कवियो ने विशेष रूप से किया है, जो सूरसागर मे नही पाया जाता । कंसवध, उग्रसेन का राज्याभिषेक, नन्द को व्रज के लिए विदा करना, इन सबकी कथाए लिखकर कृष्णगाथाकार ने अपनी कृति का प्रथम भाग समाप्त किया है । और गुरुदक्षिणा से लेकर दूसरे भाग का श्रीगणेश

यिन्दयिल नल्लेण्णिन्नु तन्ने
प्ल्लन्न तन्नोट्टु चोल्लेण्ण पिन्ने नी
येन्ने मराक्कोल्ला येन्निट्टुन्ने
× × ×
किङ्किणि [illegible] [illegible]
पावनोन्नुम् पाशादिप्पोकाने
पाशिन्नु [illegible] पारारे नी
नेगुट्टु निन्नुल्लोरोण्ण पिन्नोन्नाले
[illegible] पोकाते नुडिक्केण्ण

—कृष्णगाथा, सं० रामराज वर्मा, पृ० १२०-१२२ ।

1. [illegible] जाइ सुनि जसुदा मैया ।
आवहिंगे दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोउ भैया ।
मुरली बेंत बिषान [illegible], [illegible] सवेरौ ।
[illegible] जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेरौ ।
जा दिन तैं हम तुम तैं बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया ।
प्रात न कियौ कलेऊ काहू, साँझ न पय पियौ धैया ।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] जो [illegible] ।
अब [illegible] [illegible] देवकी, [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] नंद बाबा सौं, [illegible] [illegible] ।
सूर [illegible] [illegible] मथुरा, [illegible] न [illegible] ।

—सूरसागर, भाग २, सभा संस्करण, पद सं० ४०६१, पृ० १४३० ।।

किया है । नन्द का ब्रज-आगमन, नन्द और यशोदा का सवाद इन प्रसगो पर अनेक वात्सल्यपूर्ण तथा मार्मिक पद सूर ने लिखे है। उसी प्रसग पर गोपियो का विरह नैन-प्रस्ताबु-पद, स्वप्न-दर्शन, पावस-समय-वर्णन और चन्द्र प्रति तरक ददति लिखकर सूर ने मौलिकता दिखाई है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी ने उद्धव के आगमन, उनके उपदेश, इसी बीच मे भ्रमर का आना, उसे कृष्ण का दूत समझकर गोपियो के व्यग्यवचन आदि की कथा बहुत सक्षेप मे लिखी है। सूर ने इस प्रसग को लेकर बहुत से पद लिखे, जिनमे उनकी कवित्व-शक्ति और भक्ति-भावना का पूर्ण परिचय मिलता है । सूरसागर मे बताया गया है कि सच्ची भक्ति के सामने ज्ञान की महत्ता का कोई मूल्य नही। यही दिखाने के लिए कृष्ण ने उद्धव को भेजा था। उन्होने प्रत्यक्ष रूप से उद्धव से कहा कि तुम वृन्दावन जाकर योग की बातें सुनाकर गोपियो को ज्ञान का प्रबोध दो । तुम परब्रह्म के बारे मे अच्छी तरह जानते हो। अत उनको ज्ञान की बातें समझाओ । वास्तव मे कृष्ण ने मन मे सोचा कि उद्धव के ज्ञान का अहकार मिटाना चाहिए। इसलिए उन्हे पत्र देकर ब्रज भेज दिया।

कृष्ण के आदेश के अनुसार उद्धव गोकुल पहुचे। उन्हे प्रिय कृष्ण का सखा समझकर नद, यशोदा और गोपियो ने उनका बडा सत्कार किया और वे सब कृष्ण के सन्देश सुनने के लिए आतुर हो उठे । उद्धव ने बिना सन्देश सुनाए निर्गुण ब्रह्म के बारे मे एक लम्बा-चौडा व्याख्यान दे डाला, जो गोपियो को अच्छा न लगा। तब कही से एक भ्रमर राधिका के चरण पर बैठा। उसे देखते ही गोपियो ने उसे सबोधित करते हुए व्यग्य की बौछार करनी प्रारभ की। उन्होने निर्गुण के सिद्धान्तो का खडन युक्ति तथा अनुभव से किया। इसी प्रसग को भ्रमरगीत कहते है। इसपर हिन्दी के बहुत से कवियो ने बहुत सी सुन्दर रचनाए रची है । स्वय सूरदास ने तीन भ्रमरगीत रचे है । परमानन्ददास, नन्ददास, तुलसीदास, रहीम, मतिराम, भारतेन्दु आदि कवियो ने भी भ्रमरगीत लिखे है। हिन्दीकृष्ण-काव्य मे भ्रमरगीत का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

सूर लिखते है—नन्दनन्दन के आगमन की वार्ता सुनकर राधा को जल के लिए मरती हुई मछली के समान आनन्द हुआ।[1] केवल राधा की ही नही, सारे ब्रज-निवासियो की मूर्च्छा दूर हुई। लेकिन दु ख की बात है कि जब उन्होने जान लिया कि कृष्ण नही आए है, बल्कि उनके मित्र आए है तब तो उनके दु ख का ठिकाना नही रहा। सूर लिखते है—जब कहा गया कि स्याम नही आए तो कुछ पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पडी, कुछ स्तम्भित रह गई। यदि काटो तो खून नही।[2]

१ आए री नद सुवन राधा हरषानी।
सूर मरत मीन तुरत मिलैं अगम पानी।
—सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४०७८, पृ० १४२७।

२ जबहि कह्यौ ये स्याम नहीं।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सु तहीं।
—सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४०८६, पृ० १४२९।

उद्धव की ज्ञानचर्चा से गोपिया जरा भी प्रभावित नही होती प्रत्युत कृष्ण से मिलने की उत्कट अभिलाषा प्रकट करती है—

राग सारंग

निरखति अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावति लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती।
गोकुल बसत नंदनंदन के कबहुँ बयारि न लागी ताती।
अरु हम उती कहा कहूँ ऊधो जब सुनि बेनु नाद सँग जाती।
उनकै लाड बदति नहिं काहूँ निसि दिन रसिक राम रस राती।
प्रान-नाथ तुम कबहि मिलौगे सूरदास प्रभु बाल सघाती।[1]

परमानन्ददास की एक गोपी विनीत भाव मे प्रार्थना करती है कि कोई उसकी विरहातुर अवस्था के सबध मे नन्दकुमार को बता दे—

राग सारंग

जो पै कोउ माधो सो कहे।
टोकत कमल नैन मथुरा में एको घरी रहे।
प्रथम हमारी दशा सुनावे गोपी विरह दहे।
हा ब्रजनाथ रटत विरहातुर नैनन नीर बहे।
विनती कर बलबीर धीर सौं चरन सोज गहे।
परमानंद प्रभु इत सिधारबो ग्वालिनि बरस सहै॥[2]

मुरलीधर के मुरली-निनाद की कल्पना करके परमानन्ददास की गोपी चिन्तित तथा मूर्छित हो जाती है। वे उसका चित्र यों खींचते हैं—

राग केदारो

रैनि पपीहा बोल्यो री माई।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई।
सावन मास देखि बरषा रितु हौं उठि आंगन धाई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीव डराई।
राग मलार कियो जब काहू मुरली मधुर बजाई।
विरहिन बिकल दास परमानंद धरनि परी मुरझाई॥[3]

सूर ने लिखा है कि ब्रज की गोपिया सर्वदा हरि की चिन्ता मे लगी रहती है और हरि ने उनके साथ जिस प्रकार का प्रेमव्यवहार किया था उसकी स्मृति मे वे समय बिताती हैं—

---

1 सूरसागर, भाग २, [illegible], पद सं० ४१८५, पृ० १४८९।
2 डा० गुप्त के लिखे परमानन्द [illegible] से पद सं० १८८।
3 डा० गुप्त [illegible] परमानन्द [illegible] से पद सं० ३३३।

राग धनाश्री

हमतें हरि कबहूँ न उदास ।
रास खिलाइ पिलाइ अधर रस, क्यों विसरत व्रजवास ।
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो, मनो काटिबो घास ।
बहिरो तान स्वाद कह जानें, गूगो बात मिठास ।
सुनि री सखी बहुरि हरि ऐहें, वह सुख वहै विलास ।
सूरदास ऊधो अब हमकों, भए तेरहों मास ॥[1]

विरहावस्था की विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन सूरदास और परमानन्ददास ने बडी मार्मिकता तथा भावुकता से किया है। कृष्ण के प्रति गोपिया का तीव्र अनुराग देखकर उद्धव चकित हो जाते है और उनको अनुभव होता है कि उनके ज्ञान से गोपियो की भक्ति कही अधिक श्रेष्ठ है और उसी क्षण से वे उनके दास वन जाते हैं। अन्त मे वे मथुरा जाकर गोपियो की अनन्य भक्ति का चित्र कृष्ण के आगे प्रस्तुत करते है और कृष्ण के व्यवहार की कडी आलोचना करते हैं। यही से सूर का भ्रमरगीत समाप्त होता है।

नन्ददास आदि कवियो ने कलापक्ष और दार्शनिक पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया है। नन्ददास ने कथानक मे भी कुछ परिवर्तन कर डाला है। कृष्ण और उद्धव के पूर्व वार्तालाप के वारे मे उन्होने कुछ नही लिखा है। प्रथम भाग मे गोपी और उद्धव के सवाद का चित्र खीचा गया है। कुशलवार्ता के उपरान्त गोपियो से उद्धव कृष्ण के महत्त्व के वारे मे लवा-चौडा व्याख्यान झाडते हैं। उद्धव ने कहा—तुम लोग जिसे स्याम कहते हो उसके कोई मा-वाप नही। वह तो अखिललोकव्यापी ब्रह्म है।[2] वह तो इन्द्रियो के लिए अगोचर है। जल-थल, लोह, काष्ट आदि मे वह व्याप्त है तथा ज्योतिस्वरूप है।[3] इस प्रकार के दार्शनिक तथा धार्मिक तत्त्वो से भरे हुए गम्भीर भापण देकर वे गोपियो को अपने वश मे लाने का विफल प्रयत्न करते है। गोपिया भ्रमर को सवोधित करके उद्धव को व्यग्यवचन कहती है और कृष्ण की निष्ठुरता पर उन्हे कोसती हैं—किसीका कहना है जो रग का काला होता है वह हृदय से भी काला होता है। श्याम तो काले है और ज्ञानोपदेश रूपी काले भुजग को लाने वाले उद्धव भी काले है। यह भ्रमर जो उद्धव के उपदेश

---

१ सूरसागर खड २, सभा-सस्करण, पद स० ४५७७, पृ० १५८०।

२ जाहि कहत तुम श्याम ताहि कोउ पिता न माता।
अखिल अड ब्रह्माण्ड विश्व उनही में जाता॥
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १७५।

३ वै तुमतें नहि दूरि ग्यान की आखिन देखौ।
अखिल विस्व भर पूरि ब्रह्म सब रूप निमेखौ॥
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास।
सचर अचर बरनत सबै ज्योतिहि रूप प्रकास॥
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १७४।

को दुहराने वाला है वह भी काला है ।[1] एक श्याम के अंगस्पर्श से आज तक अंग जला रहा है इसपर यह दूसरा श्याम भ्रमर योग-रूपी काले साप को ले हमारे चरणो का स्पर्श कर हमे और भी दु:ख पहुचा रहा है। इस प्रकार कृष्ण को उपालभ देती हुई अंत मे दग्ध हृदय से गोपिया भगवान् की प्रार्थना करती है—

ता पाछे इक बार ही रुदित सकल ब्रजनारि।
हा करुणामय नाथ हा केशव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो ।[2]

यह सुनकर महाज्ञानी उद्धव बहुत प्रभावित हुए। उसके सबध मे कवि कहता है—

उमड्यो जो मोऊ सलिल सिन्धु असुवन की धारनि।
भींजत अबुज नीर कन्चुकी बहुगुन हारनि।
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधव चले बहाय।
भली ज्ञान की मेंड हो ब्रज में दीनी आय।
सकल कुल तरि गयो ।[3]

अब उद्धव को मालूम हुआ कि उनके कोरे ब्रह्मज्ञान से बढकर भोली-भाली गोपियो की प्रेमभक्ति श्रेष्ठ है और उनके मन मे यही कामना रहती है कि मैं ब्रज की धूलि बन जाऊ जिससे गोपियो के चरणारविन्द की धूलि मेरे शरीर पर पडे या वृन्दावन-वृक्ष-लतादि बन जाऊ जिससे गोपियो की परछाई मुझपर पडती रहे। किन्तु क्या करू? यदि वश होता तो मैं इन वस्तुओ का रूप धारण कर लेता। हे भगवन्, आपसे मेरी यही विनीत प्रार्थना है कि मेरी इच्छा की पूर्ति करे ।[4]

---

१ कोऊ कहै री विम्ब मान्ह जेते हैं कारे।
कपटी कुटिल कठोर परम मानस नमितारे।
एक स्याम तन परसि के जरत आज लौं अंग।
ता पाछे फिरि मधुप पठ लायो जोग भुजंग।
फज़ा इनको दया।

—भंवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पृ० १३४।

२ भंवरगीत—नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १३८।

३ भंवरगीत—नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १३८।

४ (अ) अब ह्वैहौं ब्रजभूमि की है पग मारग की धूरि।
बिचरत पद मो पै परैं सब सुख जीवन मूरि।
मुनिन हूँ दुर्लभै।

—भंवरगीत, नन्ददास शुक्ल पृ० १३६।

(ब) कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म [illegible] बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मो पै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय।
मोहन होंहि प्रसन्न जो यह वर मांगौं जाय।
कृपा करि देहु जू।

—भंवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १४०।

कबहू टकी लगि जाय कबहु आवति मुरझाई।
ह्वै गयो कछु विवरन तन छाजत यो छवि छाई।
रूप अनूपम बेलि तनक मनु धाम में आई।

कवि आगे भी रुक्मिणी की परेशानी का वर्णन करते है—

टप टप टप टप टपकि नैन सो असुआ ढरहीं।
मनु नवनील कमल दल ते मल मुतिया झरहीं।
उपजि विरह दुख दवा अवा तन ताप तये हैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि तचि लाल भये हैं।
कबहु मनहि मन सोचति मोचति स्वास ढरारे।
मोहन सोहन श्याम न ह्वै है कस हमारे।[1]

यद्यपि इस वर्णन मे अत्युक्ति है तो भी इसका सवेदनात्मक रूप ज़रा भी विगडने नही पाया है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी कृष्णगाथा मे सखियो द्वारा रुक्मिणी के विरह दु ख के वर्णन की हसी कराते है । पिजडे मे वह सारिका गाने के रूप मे यो गाती है—हे ! भगवन्, मै आपके पैरो पडती हू । मुझे मत छोडिए । मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे देवकी-नन्दन की छाती से लगने दीजिए । यह सुनते ही सखिया एक-दूसरे की ओर देखकर वोलने लगी—देखो, सारिका की वातो से ऐसा मालूम पडता है कि उसको कृष्ण पर वडा अनु-राग है।[2] इस पद के अतिम चरण मे हास्य का सुन्दर पुट है। अन्त मे कवि ने ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी की विरह-व्यथा का वर्णन कराया है—रुक्मिणी सर्वदा आखे डवडवाती रहती है। उसे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो आसुओ की बूदे पलको मे मोती हो। कमल, कोकिल, चन्द्र आदि का नाम वह सुन न सकती थी। शीतल, सुगन्धित वायु लगते ही वह पागल-सी हो जाती है। भ्रमरो का गुजन सुनकर वह कहती है कि यह यमराज के भैसे के गले की घटावलियो की ध्वनि है । सदा गोविन्द और माधव आदि नाम वह जपा करती है। उसके लिए आतप और चादनी वरावर है ।[3] विरहावस्था का ऐसा

---

१ रुक्मिणी मगल, नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १४३।

२ दैवमे निन कज़ल कैनोनाज़ुटुन्नेन
कैनेटिग्नाटोल्ला येने ये नु
देवकी नन्दनन तन्नुटे मेयथोट्
केवन चेर्क्केणमेन्नेयु नी
× × ×
शारिक पैनल्नकुमाधवन तनिले
मारमालुएटायिनेन्ने नेएदु।

—कृष्णगाथा, म० राजराज वर्मा, पृ० १३३ १३५।

३ रुग्मिणि तने जान दु खमा वारिथिल
× × ×

सजीव वर्णन दोनों भाषाओं के कवियों ने लिखा है।

नन्ददास ने द्वारिकापुरी का वर्णन दूसरे कवियों की अपेक्षा अधिक सुन्दरता से किया है। रुक्मिणी की पत्रिका पाते ही कृष्ण की अवस्था का चित्र नन्ददास ने यों खींचा है। कृष्ण भावावेश के कारण पत्र न पढ़ सके। ब्राह्मण ने पत्र पढ़कर सुनाया तो तुरन्त रथ में चढ़ बैठे। उनके हृदय की अशांति का सूक्ष्म वर्णन नंददास के शब्दों में देखिए—

तुरत चढ़े छवि मढ़े, चढ़त बानक बनि आयो।
हरबर में खसि पर्‌यो पीत पर द्विज फहरायो।
जनु कुमुदिनी पर चल्यो चन्द्रमा देन परम सुख।[1]

कृष्ण का सन्देश पाने के लिए रुक्मिणी अशान्त बैठी थी। ब्राह्मण को देख और और उनकी वाणी सुनकर उनकी क्या दशा हुई उसका वर्णन नन्ददास करते हैं—सन्देश सुनाने के लिए ब्राह्मण ने अपना मुह खोला तो उनके प्राण निकलकर मानो ब्राह्मण के वचनों में स्थित हो गए। जब उसने सुना कि हरि आए तब वह ऐसी प्रसन्न दिखाई पड़ी मानो शरीर में प्राण फिर आ गए हों।[2] [illegible] उसी प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं—नारीरत्न रुक्मिणी ब्राह्मण को देखकर वैसे ही खड़ी रही मानो चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल गई हो। मुरझाए हुए कमल से निकलकर जैसे भ्रमर कुमुद पुष्प पर बैठ जाता है वैसे ही रुक्मिणी की दृष्टि ब्राह्मण के मुख पर जम गई। शीतल-सुगन्धित मलय पवन से मल्लिका के फूल जैसे खिलते हैं वैसे ही रुक्मिणी का चेहरा प्रसन्न हो गया फिर ब्राह्मण क्या बोलेंगे, इस विचार से रुक्मिणी का दिल धड़कने लगा। तब ब्राह्मण के मुख से मधु समान यह वचन निकले कि कृष्ण सवेरे आकर तेरा पाणिग्रहण करेंगे। रुक्मिणी का सन्तोष आंसुओं और मन्द मुसकान के रूप में प्रकट हुआ।[3]

कृष्ण जब कुण्डनपुर में आए थे, उनकी अपूर्व सुन्दरता को देखकर लोगों ने दांतों तले अंगुली दबाई। सब टकटकी लगाकर खड़े रह गए। कोई उनके सिर पर शोभित पाग पर मोहित हो गए। उनकी चितवन और पीताम्बर की चमक से कुछ लोग चकित रह गए।[4] एक सुन्दर उपमा देते हुए कवि लिखते हैं कि कृष्ण के अंग-अंग के सौन्दर्य को

[illegible]
[illegible] —[illegible], स० [illegible], पृ० [illegible]।

1 रुक्मिणीमंगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १४८।

2 रुक्मिणीमंगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १४८।

3 [illegible], स० [illegible], पृ० १२८।

4 [illegible]।
[illegible]।
× × ×
[illegible]
[illegible]।
—[illegible]

देखकर प्रसन्न मन की वही दशा है जैसे रत्नो से भरे घर मे एक से एक सुन्दर रत्न को देखकर चोर की दशा होती है। वह उसी असमजस मे पड जाता है कि कौन वस्तु ले, कौन वस्तु न ले, कभी एक वस्तु को वह उठाता है और उसे रखकर दूसरी बदल लेता है।

कोउ इक नैननि अटकि गए हैं लोभ लुभारे
भरे भवन के चोर, भये बदलत ही हारे।[1]

इसी प्रकार रुक्मिणी के रूप का वर्णन भी चेरुश्शेरी के समान नन्ददास ने किया है।

सूरदास ने रुक्मिणी-मगल की कथा कवित्वपूर्ण शैली मे लिखी है। किन्तु कही-कही पुनरुक्ति-दोष आ गया है। भाषा की सरसता एव भावो की उत्कृष्टता मे नन्ददास का रुक्मिणी-मगल अद्वितीय है। मलयालम के कवियो ने भी प्रबन्ध काव्य के रूप मे इस प्रसग को लिखा है। रुक्मिणी के स्वयवर के समय राजाओ की बातचीत और राजकुमारी के अपूर्व सौष्ठव को देखकर राजाओ का भाव-परिवर्तन आदि का वर्णन बडी सुन्दरता से चेरुश्शेरी और कुचन नप्यार आदि कवियो ने किया है। उनकी शृगार तथा हास्यप्रधान कविताओ का मलयालम-साहित्य-प्रेमियो मे बडा सम्मान है।

मलयालम भाषा के चपू ग्रन्थो मे 'रुक्मिणी स्वयवर चपू' प्रमुख है। इसमे रुक्मिणी के वयस्क होने पर उसका अपूर्व सौन्दर्य तथा विवाह के सम्बन्ध मे पिता की चिन्ता आदि का बडा ही हृदयग्राही वर्णन है। जब रुक्मिणी के पिता ने निश्चय कर लिया कि रुक्मिणी का ब्याह कृष्ण के साथ किया जाएगा तब भाई रुक्मी आपे से बाहर हो जाता है। कवि लिखते है—पिताजी के वचन सुनते ही रुक्मी तिलमिला उठा। उसकी आखे अगुजा के समान अत्यन्त लाल हो गई। चेहरे पर पसीने की बूदे दिखाई पडने लगी। और धिक्कार-भरे वचन उसके मुह से निकले।[2] रुक्मिणी का सन्देश भी करुणाजनक है—हे दीनबन्धो! मेरे लिए दूसरा कोई अवलब नही। विष्णु भगवान् जैसे लक्ष्मी को स्वीकार कर लेते है वैसे ही मुझे स्वीकार कर लीजिए। मुझे इस दु ख से छुडाइए।[3] इस गन्थ के कर्ता के सबध मे कुछ भी पता न लग पाया है। यह एक बडा लम्बा गन्थ है।

---

१ रुक्मिणीमगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १५१।

२ अच्छन ताने परञ्जाटिन वचनमिद केट्टु कोप मुत्तुत्ति
टट्टुच्चैरवकण्णु रण्डु नृपसदसि चुवप्पिच्चु म चाटिपोले
स्वच्छ तन्नानत्तिल श्रम जल कणिका वृन्दवु चेत्तु मेन्मे
तुलच्चेर सर्व गर्व तटविन वचन घोपयामास रुक्मी
—रुक्मिणी-स्वयवर चपू, स० उल्लूर, भाप-साहित्य-चरित्रम्, भाग २, पृ० १६४।

३ मट्टारमिल्ल शरण मम दानबन्धो
वट्टावेजिन्टे करुणामय तोय सिन्धो
चुट्टत्तिल वन्नु दयिना तव कोण्डुपोमा
पट्टु रमा भगवनी हरि येन्टे पोले।
—रुक्मिणी स्वयवर चपू, स० उल्लूर, भाषा साहित्य चरित्रम, भाग २, पृ० १९०।

पहले लिखा जा चुका है कि मलयालम भाषा के पद्य साहित्य में कथकलि का स्थान प्रमुख है। करीब एक सौ ग्यारह ग्रन्थ कथकलि साहित्य में पाए जाते हैं। रुक्मिणी का मंगल भी कथकलि में लिखा गया है। रुक्मिणी के पिताजी के गुणों का वर्णन करते हुए कवि ने ग्रन्थ आरम्भ किया है। राजा धर्मधुरंधर और अशेष धरणीपति 'चक्र-चक्र विक्रान्त विश्रुत' हैं।[1] वे अपनी चंचलाक्षी तरुणी रानियों से अपनी प्यारी बेटी के ब्याह के संबंध में परामर्श करने लगे। एक दिन नारद मुनि वहाँ आते हैं और सलाह देते हैं कि रुक्मिणी के लिए योग्य वर श्री कृष्ण हैं। राजा मान लेते हैं। यह समाचार रुक्मिणी के भाई ने सुना तो आपे से बाहर हो गया। अपने पिताजी से कहता है कि एक गोप बालक के साथ आपकी बेटी का ब्याह करना ज़रा भी उचित नहीं। उसका कोई भी कुल या वंश नहीं। स्त्री पूतना का वध करने वाला पापी है वह।[2] पिता पुत्र को समझा देता है कि हमारे लिए कृष्ण के साथ वैर ठानना ज़रा भी अच्छा नहीं। सज्जनों की निन्दा मत करो। उनकी निन्दा करना सबसे बुरा है।[3] किन्तु रुक्मी अपने पिता भीष्मक की बातों में नहीं आता है और शिशुपाल नृप के साथ रुक्मिणी का विवाह करने का निश्चय कर लेता है। यह समाचार पाकर रुक्मिणी बहुत दुःखी होती है और एक ब्राह्मण के द्वारा वह अपनी इच्छा कृष्ण को जता देती है। कृष्ण ने वादा किया कि तरुणी 'मणि मेरी रमणी' को स्वयंवर के दिन ले जाएँगे। प्रतिज्ञा के अनुसार कृष्ण कुण्डिनपुरी में आए। भीष्मक ने उनका सत्कार किया। राजा लोग भी वहाँ आ पहुँचे थे। उनको मालूम हुआ कि कृष्ण बलपूर्वक रुक्मिणी को ले जाएँगे तो वे सब क्षुभित हो उठे और शिशुपाल राजा के नेतृत्व में उन लोगों ने कृष्ण का सामना किया। रुक्मी ने भी बड़े आवेश के साथ युद्ध किया। कृष्ण ज्यों ही रुक्मी को मारने लगे कि रुक्मिणी ने रोक दिया। युद्ध का वर्णन, राजाओं की बातचीत, कृष्ण-आगमन की वार्ता, ब्राह्मणों की आलोचना आदि सब पद्यात्मक शैली में लिखे गए हैं। शृंगार और रौद्र रस-प्रधान कई पद इसमें पाए जाते हैं। अश्विनि नक्षत्रज नामक एक सहृदय इसके कर्ता हैं। राजघराने से संबंध होने के कारण इनको लोग अश्विनि नक्षत्रज राजकुमार कहकर पुकारते हैं।

प्रद्युम्नजन्म और शंबरवध की कथा सूरदास और नेवाजी ने बहुत संक्षेप में लिखी है। कथकलि-साहित्य में शंबर की कथा बड़ी सुन्दरता से किसी पंडित ने लिखी है। इसके कर्ता के संबंध में मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि कुंचन नंबियार की यह कृति

---

1 [illegible], म० दे० [illegible] [illegible], पृ० १,७२।

2 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
—[illegible]—[illegible], पृ० १,२४।

3 [illegible]—[illegible], पृ० [illegible]।

है। दूसरे कुछ विद्वानो की राय है कि कुचन नप्यार के मामा केलक्कत नप्यार ने इसे लिखा है।[१]

कवि ने ग्रन्थ का प्रारभ करते हुए लिखा है कि कृष्ण अपनी स्त्रियो के साथ वडे सुख से दिन विता रहे थे। एक दिन रुक्मिणी कृष्ण मे वरदान के रूप मे एक पुत्र मागती है। कृष्ण आशीर्वाद देते है कि शिव की कृपा से तेरे एक पुत्र पैदा हो जाएगा।

नारद मुनि शवर के पास जाकर वोले—देव, दानव, मानव, सव आपका आदर करते है। आपकी आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने की किसीको शक्ति नही। आपके रूप-सौन्दर्य की वात सुनकर सुन्दरी तरुणिया आपपर निछावर होती है। सव कही आपकी धाक जम गई है। किन्तु याद रखे कि आज रुक्मिणी के एक पुत्र पैदा होगा जो आपका वडा शत्रु निकलेगा।[२] कवि आगे लिखते है—वह पुत्र कामदेव का अवतार है। शीघ्र ही उसका वध करने का उपाय करे।[३] शवर ने अपनी माया के प्रभाव से रुक्मिणी के वच्चे को सागर मे फेक दिया। रुक्मिणी तथा उनके सवधियो मे दुःख का ठिकाना न रहा। यह सव कवि ने अत्यन्त निपुणता से लिखा है।

वालक को एक मछली ने निगल लिया। वह मछली एक मछुए के जाल मे फस गई। उसको मारने पर उसके पेट से एक सुन्दर शिशु निकला। वह शवर के यहा ले जाया गया। शवर ने वच्चे का पालन-पोपण करने का भार मायावती को सौंप दिया। नारद के वचन के अनुसार रतिदेवी ने दूसरा अवतार लिया। उसका नाम है माया-देवी। वह शिशु का पालन-पोपण वडे प्रेम से करने लगी। जब शिशु जवान हुआ तो मायावती ने अपनी पूर्व-कथा उससे सुनाई और उसमे पति, पत्नी के समान जीवन विताने की प्रार्थना की। मायावती की प्रार्थना, वालक प्रद्युम्न का उत्तर आदि का वर्णन वडी सुन्दरता से लिखा गया है। अपनी पूर्व-कथा जानकर प्रद्युम्न शवर के पास जाता है और उसे युद्ध मे मार डालता है। इसी समय रुक्मिणी तथा कृष्ण ने जान लिया कि शवर का वध करने वाला व्यक्ति उनका पुत्र है। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। पुत्र को पुनः प्राप्त करके रुक्मिणी का जीवन हरा-भरा हो उठा। शवरवध नामक कथकलि का स्थान मलयालम साहित्य मे प्रमुख है। उसकी गीत तथा प्रवन्धात्मक शैली मे लोग अधिक आकृष्ट होते है। शृगार तथा वीररस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है। अहंकार वुरा है, भाग्य के आगे किसीका वश नही, आदि शिक्षाए उस काव्य से हमें मिलती हैं।

सूरदास ने जामवन्ती और सत्यभामा का विवाह वहुत सक्षेप मे लिखा है। मलया-लम के कवि चेरश्शेरी और कुचन नप्यार आदि ने प्रस्तुत कथाए स्यमन्तक के शीर्पक मे वडे विस्तार से कवित्वपूर्ण शैली मे लिखी है। कृष्णगाथा मे चेरश्शेरी लिखते है—

---

१ केरलभाषा साहित्य चरित्रम्—भाग ३, ने० नारायण पणिक्कर, पृ० २८४।
२ आट्टकथाम्—स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३९८ ३९९।
३ आट्टकथाम्—स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३९८ ३९९।

स्यमन्तक नामक मणि की प्राप्ति से यादव सत्राजित को अपार धन मिलने लगा। वह केवल धन कमा लेता था। अच्छे काम के लिए उनका उपयोग नहीं किया जाता था। कृपण के यहाँ धन की राशि रहने से कोई लाभ नहीं होता। अतः कृष्ण ने जाकर उनसे कहा स्यमन्तक मुझे दे। दो कृपण सत्राजित ने उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया। एक दिन स्यमन्तक को लेकर सत्राजित का भाई आखेट करने गया। उसकी अपूर्व शोभा देखकर एक सिंह ने सत्राजित के भाई प्रसेन को मार डाला और स्यमन्तक को लेकर भाग गया। रास्ते मे जामवान ने उसे देखा और सिंह को मारकर स्यमन्तक को अपनी बेटी को खेलने के लिए दे दिया।

सत्राजित के भाई के निधन का समाचार बिजली के समान सब कहीं फैल गया। उसने चारों ओर यह प्रचार करा दिया कि स्यमन्तक के प्रलोभन मे पड़कर कृष्ण ने प्रसेन को मरवा डाला है। अफवाह सर्वत्र फैल गई। लोगों ने आपस मे जो कुछ कहा उसके बारे मे चेरुश्शेरी लिखते हैं—देखो! कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्मरण करो। उसने क्या-क्या नहीं किया? बेचारी गोपियों के वस्त्रों को चुरा ले जाने वाला अवसर के आने पर अमूल्य रत्न स्यमन्तक को पाने मे कोई घृणित काम करने को तैयार न होगा। कवि आगे कहते हैं—कृष्ण ने अपने सम्बन्ध मे वे बातें सुनी जो यादवी लोग अपने बच्चों से कहते थे[1] 'कृष्ण के पास मत जाओ।' उसका इतना प्रभाव पड़ा कि बच्चे जब कृष्ण को देखते हैं तो डर के मारे इधर-उधर भागने लगते हैं। कृष्ण ने केले दिखाकर बालकों को आकृष्ट करना चाहा। सब घर के लोग कहने लगे देखो! यदि तुम लोग उसके पास जाओगे तो वह तुम्हारे गहने चुरा ले जाएगा।[2] अपने सम्बन्ध मे फैले हुए इस अपवाद को मिटाने के लिए कृष्ण स्वयं स्यमन्तक की खोज मे निकलते हैं। खोजते-खोजते जामवंत की गुफा मे पहुँचे। उनको कोई चोर जानकर जामवंत बिना सोचे-समझे उनके साथ विकट युद्ध करता है। तुमुल युद्ध हुआ। तीस दिन के लगकर युद्ध के बाद महाप्रतापी जामवंत को अनुभव हुआ कि उसका दुश्मन एक शक्तिशाली व्यक्ति है। आँखें खोलकर देखा तो मालूम हुआ उसके उपास्यदेव सामने खड़े हैं। उनके पैरों पर पड़कर उसने क्षमा-याचना की। उसने अन्त मे स्यमन्तक रत्न के साथ-साथ अपनी कन्या को भी उन्हें समर्पित कर दिया।

इधर कृष्ण के विरह से द्वारिका-निवासी छटपटाने लगे। सब लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कृष्ण के आगमन के लिए मन्दिरों मे जाकर होम, पूजा आदि करने में

---

1. [illegible]
[illegible]
× × ×
2. [illegible]
[illegible]

—[illegible] पृ० १४८।

लग गए ।[1] कृष्ण स्यमन्तक तथा जामवती के साथ लौट आए । लोगो का सशय दूर हुआ। सत्राजित स्यमन्तक पाकर प्रसन्न दिखाई पडा । उसे कृष्ण पर लोकापवाद का अपराध लगाने का बडा पछतावा हुआ । कुछ दिन बाद उसने कृष्ण के पास जाकर विनीत प्रार्थना की कि आप मेरी पुत्री और रत्न स्यमन्तक को स्वीकार करने की कृपा करे । कृष्ण ने पुत्री सत्यभामा को स्वीकार कर लिया और स्यमन्तक को लौटा दिया ।

सत्राजित की मृत्यु, सुफलकसुत को स्यमन्तक की प्राप्ति की कथा दोनो भाषा के कवियो ने समान रूप से लिखी । श्री कुचन नम्प्यार ने इस कथा के द्वारा कई लोक-तत्त्व लोगो को समझाए है । जैसे देखते ही किसी चीज की याचना करने वाला क्या अवसर आने पर उसे चुराएगा नही ? बाल्यकाल का स्वभाव कभी नही बदलेगा । नीम के फल दूध मे कई दिन रखे जाए तो भी वे मीठे नही होगे ।

श्री कुचन नम्प्यार ने स्यमन्तक-कथा तुल्लल-पद्धति मे प्रबन्ध काव्य के तौर पर बडे रोचक ढग से लिखी है ।

आरम्भ मे उपास्य देवो और गुरु की स्तुति वे सरल भाषा मे करते है । जन-साधारण के विविध दोषो और अभावो का चित्रण वे खीचते है—अभी शिक्षित लोग बहुत कम है । जो शिक्षित है उनमे अधिकाश लोग सभा-समाजो मे अपना आशय प्रकट करने मे पीछे रह जाते है ।[2] फिर सत्राजित का तप, सूर्यदेव का प्रत्यक्ष होना, वरदान आदि का वर्णन वे करते है । उसके बाद वरदान पाए हुए सत्राजित का आगमन देखने के लिए साधा-रण जनता का उत्साह-वर्णन कवि ने किया है । भगवान् कृष्ण को यह समाचार पहुचाया जाता है । कृष्ण और सत्राजित की बात, अमूल्य रत्न को सुरक्षित रखने का भार उठाने के लिए भगवान् का तैयार होना, सत्राजित का प्रत्युत्तर, प्रसेन का आखेट, आखेट करने वाले लोगो का स्वभाव, आखेट की तैयारी, वन-गमन, सिंह से मुठभेड, प्रसेन की मृत्यु, मृत्यु का समाचार पाकर लोगो का भिन्न-भिन्न प्रकार वार्तालाप, कृष्ण के सबध मे लोका-पवाद आदि का सुन्दर चित्र कवि ने खीचा है । लोकापवाद को दूर करने के लिए कृष्ण

---

१ कण्टालिरक्कुन्न जनङ्ङळुण्डो
कप्पान मटिक्कुन्नु तर वरुम्पोल
चेरप्प कालङ्ङलिलुल्ल शील
मरक्कुमो मानुषनुल्ल काल
कारस्करत्तिन कुरु पालिलिट्टाल
कालान्तरे कय्पु शमिप्पतुण्टो ।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्—ले० कुचन नम्प्यार, पृ० ७९ ।

२ कुरविल्लातुल्लवर विद्यक
लरिवानमात्र बुद्धियुमिल्ल
अरिवुल्लतिने सभयिल चेन्नाल
परवान वाक्किनु कौशल मिल्ल

—ओट्टेन तुल्लल, ले० नम्प्यार, म० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ३०५ ।

का प्रस्थान और जामवत की गुहा मे पहुचना केवल साधारण रूप से कवि ने लिखा है। गुहा मे प्रवेश करके उन्हें उसकी दीवारो पर रामायण की सारी कथाए चित्रो मे अकित दिखाई पडी । अन्य किसी कवि ने इतनी सुन्दरता से रामायण को सक्षेप मे कथा नही लिखी है। कृष्ण को देखकर जामवत का लडका डर जाता है और चिल्लाने लगता है। उसी दम जामवत बाहर आकर नवागत से भयकर सघर्ष करने लगता है। युद्ध का वर्णन बडी सजीवता से कवि ने किया है। अन्त मे कृष्ण को पहचानकर जामवत हृदयहारी प्रार्थना करता है । जाववती का परिणय, स्यमन्तक को लेकर सत्राजित को देना आदि कथाए लिखने के बाद कवि ने विवाह की धूमधाम के बारे मे बडे विस्तार से लिखा है । केरल प्रान्त के विवाह की रीति का चित्र उसमे पाया जाता है। उनकी विविध भाषाओ मे की हुई बात सरल भाषा मे लिखी है। हिन्दीभाषा-भाषी लोग भी उसमे निमत्रण के अनुसार आते थे। उनकी बातचीत का नमूना मलयालम लिपि मे दिया गया है। वे कहते हैं—'जय जय राम राम सीता राम राम तुम्हारा मुलक कौन मुलक ? हमारा मुलक कासी है · अच्छा पानी लाओ।'[1] इनसे हम कह सकते है कि नम्प्यार जी हिन्दी जैसी उत्तर भारत की भाषाए भी जानते थे।

स्यमन्तक नामक एक चपू ग्रन्थ किसी कवि ने लिखा । उसका बडा मान होता है। लोगो की बातचीत का सुन्दर नमूना उसमे भी पाया जाता है। कवि का परिचय अब तक नही मिल सका है।

काचलि के रूप मे भी स्यमन्तक की कथा का वर्णन सरल भाषा और कवित्वपूर्ण शैली मे किया गया है। करय वेट्टत्तु सुकुमार पिल्ला ने इसकी रचना की।[2] सत्राजित से कृष्ण ने स्यो स्यमन्तक देने के लिए कहा, उसके सबध मे कवि कहते हैं—धन की वृद्धि के साथ अहकार बढेगा । उससे अविवेकी लोग आफत मे पड जाएगे।[3] प्रसेन की मृत्यु, जामवत-युद्ध, जामवती का परिणय केवल थोडे पदो मे वर्णित है । सत्यभामा कृष्ण के प्रथम दर्शन से अनुराग-परवश हो जाती है। और उनको पति के रूप मे पाने के लिए

---

१ जै जै राम सीता राम
जै जै राम कोदण्ड राम
तुम्हारा मुलुक कौन मुलुक
हमारा मुलुक कासि मुलुक
× ×
अच्छा पानी [illegible] [illegible]
[illegible]

—[illegible], डा० [illegible] नारायण [illegible], पृ० [illegible]।

२ [illegible], म० [illegible] पृ० ५१

३ [illegible]
[illegible]

—[illegible], पृ० ७३।

हृदय-विदारक प्रार्थना करती है। ये सब कवि की मौलिक रचनाए है। भक्तिरस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है। भौमासुर-वध प्रद्युम्न-विवाह और रुक्म-वध विस्तार रूप से किसी कवि ने नही लिखा है।

कृष्ण की भक्ति की महत्ता दिखाने के लिए वाण-वध और उपा-अनिरुद्ध-विवाह का वर्णन सूर ने दो पदो मे लिखा है। मलयालम के कवि चेरुश्शेरी, कुचन नप्यार आदि ने उसी प्रसग पर कई सुन्दर कविताए रची है। चेरुश्शेरी ने उपा का स्वप्न, स्वप्न मे उसका अनुराग-परवश होना, नायक को देखने के लिए उपा की सखी का तूलिका-चित्रण, अपने प्रेमी को पहचानकर उपा का प्रसन्न होना, योगिनी सखी की सहायता से अनिरुद्ध का आगमन, अनिरुद्ध के साथ उपा का प्रेममय जीवन आदि विपयो पर क्रमानुगत रूप से पद लिखे है। प्रेममय जीवन विताने से उपा मे जो परिवर्तन हुए उन्हे देखकर चतुर सखिया सब कुछ ताड लेती है और जाचने के वाद सारी कथाए वाण को सुना देती है। यह प्रसग वडी मार्मिकता से कवि ने लिखा है वे आपस मे कहती है—अरी सखी! उपा आजकल बहुत शर्मीली दिखाई पडती है। उसके चेहरे पर एक विशेप छवि छाई हुई है। मालूम पडता है, उसका कोई प्रेमी अवश्य होगा।[1] सखियो से यह रहस्य ज्ञात होने पर वाण अन्त पुर मे जाता है और कपट द्वारा अनिरुद्ध को कैद कर लेता है। विरह-विधुरा उपा का विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। इस प्रसग पर मलयालम भाषा के आधुनिक कवि वल्लत्तोल ने करुणापूर्ण रचना रची है। कृष्ण का आगमन, वाण के साथ उनका युद्ध, अन्त मे विवश होकर वाण का पराजित होना आदि कथाए गीतात्मक शैली मे चेरुश्शेरी ने लिखी है।

वाण युद्ध कथकलि मे लेखक वालकवि राम शास्त्री कृष्ण की स्तुति सरल सस्कृत भाषा मे इस प्रकार करते है

भजत सदा यदुनायकम् भजत सदा यदुनायकम्
करतल विलसित मुरली कलरव तरलित
पशुपालककमनीकम् (भजत)
कुटिल चिकुर भर जटिल निटिलतट घटित तिलक
रुचिकमनीयम् (भजत)
स्मितरुचिकुल विलसित मृदु तनु विहसित सजल
जलद जालम् (भजत)

---

[1] नम्मुटे चारत्तु वन्नडडु मेवुम्पोल नाणतु मुखिटुन्नु काणाकुन्नु

× × ×

इनिवन्न नमुटे कामुकनायोर धन्यनुण्टेन्नोर्त्तु निणय तान

—कृष्णगाथा, म० गनराज वर्मा, पृ० १५७।

चटुल घन पटल विलसित तटियाम पुरट काञ्ची
भूषित कटीतटम्।[1]

इनके बाद वसन्त काल का सुन्दर वर्णन है। अपने सखियों के साथ उषा के विवाह के विषय मे बाण के परामर्श का प्रसग भी बडा रोचक है । कथकलि का अधिकाश भाग वर्णनो मे भरा हुआ है। शृगार, वीर तथा रौद्ररस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते हैं।

श्री कुचन नम्प्यार ने तुल्लल-पद्धति के अनुसार बाण-युद्ध की कथा लिखी है। उन्होंने प्रस्तुत कृति मे बाण का जन्म, यौवन काल की चेष्टाए, तप, वर-प्राप्ति, उषा का स्वप्न, स्वप्न मे कामपीडित होना अपने प्रेमी मे मिलने के लिए सखी चित्रलेखा से कातर प्रार्थना करना आदि कथाए पूर्वकथाओ के आधार पर लिखी गई है । स्वप्न-पुरुष को पहचानने के लिए सखी ने जो मौलिकता दिखाई है उसमे कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। बाण के युद्ध के अवसर पर देशवासी डर के मारे भाग जाते हैं। उनके वार्तालाप द्वारा युद्ध के समय जनता को मिलने वाले अपार कष्टो का विशेष विवरण दिया गया है। नम्प्यार लिखते है—सेनाओ के आगमन की वार्ता सुनते ही सब जानी जान लेकर भागने लगे। कुछ अपने बच्चों को छोडकर भाग गए और कुछ अपनी प्यारी स्त्री को बिना बुलाए चल दिए। एक स्त्री कहने लगी—मैं अपने चार-पाच बच्चों को लेकर कैसे भाग सकूगी। हाय भगवन्! कुछ वीरो की हसी उडाते हुए कवि लिखते हैं—अपने को वीर कहने वाले वीर पुरुष सेना को देखते ही वन की ओर चपत हुए ।[2] शेष कथाए मूल कथाओ के समान है। कुचन नम्प्यार की सरल-कोमल-कान्त पदावली मे लिखी बाण-युद्ध की कृति घटना, काव्य-व्यापार, नाटकीय तत्त्व और व्यंजनापूर्ण सलाप, कथा-विकास, भाव-चित्रण और पर्यवसान आदि सभी की दृष्टि से उत्तम मानी गई है। उनकी प्रत्येक कृति मे सामाजिक स्थितियों का चित्रण हमे मिलता है।

सूर ने नृग के उद्धार को कथा एक स्तुति-गीत के रूप मे लिखकर भगवान् की कृपा की अपार महिमा का वर्णन करके समाप्त कर दी है। उसमे उन्होंने उपदेश दिया है कि 'सब तजि हरि भजिए'।[3]

---

1. बाणयुद्ध महाकाव्य, सं० डॉ० एन० गोपाल पिल्लै, पृ० २६७।
2. पट वन्निटुटु परेरे नम्मुटे [illegible]

× ×

[illegible]

[illegible]

× ×

[illegible]

[illegible]

—[illegible]

3. [illegible]

चेरुश्शेरी नपूतिरि ने नृग की कथा भागवत के अनुसार ही लिखी है । कुचन नप्यार ने कई प्रसगो पर मौलिकता दिखाई है। प्रारम्भ मे कृष्ण के पुत्रो की वाल-क्रीडाओ का वर्णन स्वाभाविक रूप से किया है । एक दिन सब वालक एकत्र होकर शिकार खेलते है। शिकार खेलते-खेलते एक अन्धे कूप के किनारे जाकर उन्होने देखा कि एक वडा गिरगिट वहा पडा है। उसे ऊपर उठाने का व्यर्थ प्रयास वे करते है। फिर कृष्ण के पास जाकर कथा सुनाते है। कृष्ण ने आकर ज्यो ही उसका स्पर्श किया, गिरगिट अपना वह रूप तजकर एक जाज्वल्यमान मूर्ति के रूप मे प्रत्यक्ष हुआ और कृष्ण मे अपनी पूर्व-कथा सुनाई । मलयालम कवि ने दान-कर्म की कथा भागवत से अधिक वढा-चढाकर लिखी है और अन्त मे उपदेश देने के वाद उन्होने कहा है—विप्र लोगो को अप्रसन्न किया जाएगा तो नृग नृप के समान कष्ट झेलना पडेगा ।[1] फिर विविध प्रकार के लोगो के स्वभाव के विषय मे कृष्ण अपने पुत्रो को वताते है—अधिकाश लोग स्वार्थी होते है। अपनी इच्छा से यदि कोई काम नही करता तो उसके साथ लोग बुरा व्यवहार करने लगते है। देखो, ऐसे भी लोग है जो भोजन न पाने पर अपनी स्त्रियो को कष्ट पहुचाने लगते है। लूट-खसोट करने वाले लोग भी वहुत होते है। दूसरो को वहकाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने वाले लोग कम नही। इस प्रकार के अवगुणो को दूर करना चाहिए। साराश यह है कि नृग-मोक्ष-कथा के साथ नप्यार ने सामाजिक अवस्था का सुन्दर चित्र खीचा है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि समाज को इन दोषो मे मुक्त करने के लिए ब्राह्मणो को प्रसन्न करना आवश्यक है।

सूर और चेरुश्शेरी नपूतिरि ने वलराम के व्रज आगमन के प्रसग पर समान रूप से लिखा है । यशोदा के पैर पकडना, प्यारी वाते करना, गोपस्त्रियो को प्रसन्न करना आदि यह सब दोनो कवियो ने थोडे पदो मे लिख डाला है । सूर ने चेरुश्शेरी के समान वारुणी और कालिन्दी को मानवी के रूप मे चित्रित किया है। जाते समय वलराम ने यह कहकर सान्त्वना दी कि श्याम मनोहर से तुम लोगो की भेट हो जाएगी।[2]

---

१ विप्रनोटप्रिय चेय्युन्नमानुषन
दिप्र नशिनक्रमनोत्तु कोल्लेणमे ।
—तुल्लाल कथकल, म० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० १४५ ।

२ काट्टिल पशुक्कले मेच्चु नटक्कुन्न
कट्टिन्नेक्कु प्रधानि यायुल्ल ना
× ×
वेण्णयु पालु कव र्नु भक्षिक्कय
पेण्णुङ्ङलोटटि कोण्डु किटक्कय
× ×
प्राणाभिलाष मुण्टेन्किल मरिक्कम
तेण्णन्निमार पतिनारायिरत्तेट ट
—कल्यिन्च्चयन्चितु वपना पाटकन ओट्टन तुल्लाल, पृ० १५६ ।

पौंड्रक की कथा सूरदास ने थोड़े शब्दों में निपटा दी है पर मलयालम के कवियों ने इस प्रसंग पर सरस एवं गंभीर कृतियां रची हैं। एजुत्तच्छन और चेरुश्शेरी, नंपूतिरि ने मूल कथा के अनुसार ही इस विषय पर रचनाएं की हैं। कुंचन नम्प्यार नाटकीय ढंग से लिखते हैं—एक दिन पौंड्रक ने अपने दूत के द्वारा कृष्ण को सन्देश भेजा कि यदि तुम जीना चाहते हो अपनी सारी स्त्रियों और अमूल्य वस्तुओं को मुझे सौंप दो। कृष्ण की निन्दा करते हुए उसने कहा—तुम माखन चुराने वाले, दस पन्द्रह गायों के चराने वाले, गोपियों की मटिया भर छाछ के लिए नाचने वाले, और अपने मातुल का वध करने वाले हो। यदि तुममें साहस हो तो मेरा सामना करो। देखो! स्वर्ग की सुन्दरी स्त्रियां भी मुझपर मुग्ध होकर मुझे पति के रूप में पाने की प्रार्थना करती हैं।[1] इस प्रकार निन्दा के वचन सुनकर कृष्ण निरुत्तर हो बैठे और अपने भक्त सात्यकी की ओर देखा। तुरन्त सात्यकी ने आवेश में आकर पौंड्रक की हंसी उड़ाते हुए कहा—अरे दुष्ट! तू अपने स्वामी के पास जाकर कह कि कृष्ण उपहार लेकर अविलम्ब आने वाले हैं। देखो पौंड्रक का सिर फोड़ डालूंगा। उसको भगवान् का रूप धारण करने में लाज नहीं। यदि भूखे कुत्ते के नकली दाढ़ी लगाकर और सिंह का वेष रचकर पर्वत के ऊपर खड़ाकर दिया जाए तो उसके कंठ से असली सिंह की गर्जन-ध्वनि तो न निकलेगी। वह केवल भूंक सकता है। क्या तितलियां गरुड़ के समान उड़ सकेंगी? गोविन्द की सौगन्ध खाकर मैं कहता हूं, तेरे स्वामी को बिना मारे मैं लौटने वाला नहीं हूं।

दूत जाकर सारा समाचार सुना देता है। पौंड्रक युद्ध की तैयारी करने लगा। उसका बड़ा सुन्दर वर्णन नम्प्यार ने दिया है। आगे वे लिखते हैं—कृष्ण की सेनाओं ने शिवालय, गजालय, मित्रालय, छात्रालय, विद्यालय, मद्यालय, उद्यान, वाटिकाएं, क्षेत्रालय आदि का नामो-निशान मिटा दिया है।[2] अंत में अपने चक्रायुध से कृष्ण ने पौंड्रक का वध किया। उसका मस्तक उसकी स्त्रियों के सम्मुख जा गिरा। अपने पतिदेव को मरते देखकर वे हाय-हाय करके चिल्लाने लगती हैं। उनका विलाप करुणरस से ओत-प्रोत है। पौंड्रक का पुत्र सुदक्षिण पिता के वध का बदला लेने के लिए ब्राह्मणों की सलाह लेकर

1 पट्टिकु [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
× ×
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] गोविन्दनाणे

—पौंड्रकवधम्, [illegible] कुंचन नम्प्यार, पृ० [illegible]।

2 [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
× ×
[illegible] [illegible]

—पौंड्रकवधम्, [illegible] कुंचन नम्प्यार, पृ० [illegible]।

शिव की पूजा करता है। होमकुण्ड से एक भयकर भूत निकलता है, जिसका वर्णन कवि करते हैं। उस भूत के वाल ताम्र वर्ण के है, दाढी, मूछ, विशाल मुह, लवे दात, लाल आखे, अत्यन्त भयानक है। जगल की वढती हुई अग्नि के समान शरीर, ताड वृक्ष सदृश लबे हाथ और हाथो मे त्रिशूल भी दिखाई पडते है। उसके चारो ओर भूतगण गर्जते है।[1] इस प्रकार भयकर भूत ने अपने गणो के साथ द्वारिकापुरी पर हमला किया और थोडे क्षणो मे सारे मकान, किले आदि चकनाचूर कर दिए। खवर पाकर भगवान् कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। उसकी अपार शक्ति के सामने भूत और गण खडे न रह पाए। अन्त मे सुदर्शन चक्र ने शत्रुओ का सहार किया और लौट आया। कवि इस घटना के द्वारा समझाते है कि बुरे काम के लिए तपस्या करके सचित शक्ति का प्रभाव अन्त मे क्षीण हो जाता है। वह शक्ति अपने लिए ही घातक सिद्ध होती है।

पौड्रक-वध की कथा कथकलि के रूप मे अश्विनी नक्षत्रज राज ने कवितापूर्ण शैली मे लिखी है। पुराण-कथा के आधार पर इस भावपूर्ण रचना का उन्होंने निर्माण किया। कथकलि-साहित्य मे इसका उच्च स्थान है। सहृदय लोग इस सरस कृति का अध्ययन वार-वार करके आनद लूटते है।

होमाग्नि से भूत का आगमन देखकर ब्राह्मण लोग डर के मारे आपस मे कहते है अरे देखो, कौन आता है। ऐसा मालूम पडता है मानो काल-प्रभजन सवको हिलाता हुआ चला आ रहा हो, क्योकि असमय मे ही वडे-वडे वृक्ष गिरे पडते है, सागर मे उत्तुग लहरे उठ रही है, मगरमच्छ आदि परेशान होकर इधर-उधर चक्कर काट रहे है। धूलि-जाल से सारा जगत् अन्धकारमय दिखाई पडता है। शिव के नेत्र से अग्निज्वाला निक-लती है या यह धूमकेतु का आगमन है। निस्सन्देह इसके पहले ऐसी एक भी घटना न हुई थी।[2] आर्तवन्धु कृष्ण के अतिरिक्त हमारा कोई आश्रय नही। इतना कहकर ब्राह्मणो का

---

१ चेंपिच्च केशवु ताटियु मीशयु
वपिच्च वक्त्रवु वक्र दन्तड्डलु
चेंपरत्ति क्कुसुम पोले कण्णुकल
पंचिटाभारवु घोर नादड्ङलु
काट्टुनपट्टि ज्वलिनक्क महाद्रिये
क्काट्टिल किल्लनोर देह विस्तारवु
तालडडल पोले नेट्टु करड्डलिल
× × ×
रूपमीवण्ण प्रकाशिच्चु वाह्वयिल

—ओट्टन तुल्लल, कुचन नप्यार, पृ० १६२-१६३।

२ एन्तहो ! भूसुरन्मारे एन्तहो
चण्टमारुतन वलन्नु जग
न्ण्टमाके इलकुन्नु सग
× ×

सवाद समाप्त किया जाता है। उत्सव के अवसर पर यह कथकलि देखने के लिए लोग बडी सख्या मे आया करते हैं। साव विवाह और नारद-सशय की कथा की ओर सकेत मात्र करके सूर आगे बढ जाते हैं। मलयालम के कवियो ने भी मूल कथा के अनुसार दो प्रसग लिखे हैं। भावुक कुचन नय्यार लिखते है एक घर से दूसरे घर मे जाकर मुनि ने देखा। वहा एक रमणी कृष्ण को पान दे रही है। वहा से दूसरे घर मे गए तो देखा, कृष्ण एक स्त्री के साथ शतरज खेल रहे हैं। एक घर मे कृष्ण नही दिखाई पडे। झाककर देखा तब मालूम हुआ कि कृष्ण उसी घर मे अपनी रमणी के साथ वशी बजा रहे है, एक घर मे कृष्ण सुन्दरी के साथ गाना गा रहे है।[1]

नारद-परीक्षा के द्वारा कवियो ने कृष्ण की योग-महिमा का वर्णन किया है। योगी एक ही समय मे कई कार्य कई स्थानो मे रहकर कर सकते हैं, यह दिखाया है। इसके बाद चेरुश्शेरी नपूतिरि ने खाण्डवदाह और राजसूय की कथा अपनी सरल कोमल-कान्त पदावली मे लिखी है। ये प्रसग सूरसागर मे नही पाए जाते। भागवत मे बडे विस्तार से मूल कथा के आधार पर एजुत्तच्छन ने इन कथाओ का वर्णन अपनी गभीर शैली मे किया है। शिशुपाल-वध, जरासन्ध-वध आदि कथाओ पर सूरदास ने बहुत थोडे पद लिखे हैं। मलयालम के कवियो ने आदि से अन्त तक वे कथाए क्रमानुगत रूप से लिखकर साहित्य की सेवा की है। राजसूय की कथा कथकलि के रूप मे तिरुवितांकूर राज्य के राजा कार्तिक नक्षत्रज ने सुन्दर ढग से लिखी। यह एक प्रमुख रचना मानी जाती है।

इसके पश्चात् सूर ने सुदामाचरित लिखा है। सुदामाचरित के प्रसग पर बहुत से कवियो ने अपनी लेखनी का अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार प्रयोग किया। केवल सुदामाचरित लिखकर हिन्दी के कवि नरोत्तमदास अमर हो गए। उसी प्रकार मलयालम के कवि रामपुरत्तु वारियर ने महाकवि का पद पाया। सूर ने सुदामाचरित मे करुण तथा भक्तिरस-प्रधान पद लिखे हैं। सुदामा का चरित्रवर्णन द्वारकाधीश भगवान् कृष्ण का मित्र-प्रेम और उदारता प्रदर्शित करने के लिए ऐसा ही किया गया है। उसके साथ ही सुदामा की सरलता, सहृदयता, और उस समय की उनकी दीनावस्था आदि का हृदयस्पर्शी चित्रण सूर के सुदामाचरित्र मे हमको मिलता है। मलयालम मे सबसे पहले चेरुश्शेरी ने ही सुदामाचरित पर भावनाप्रधान पद लिखे। इसे मलयालम मे कुचेलवृत्त कहा जाता है।

[illegible]
[illegible]

—[illegible]

[1] [illegible]
[illegible]
× ×
[illegible]

—[illegible]

करने के लिए पतिदेव जाएगे ही। ऐसा ही हुआ। पति ने पत्नी की बाते मान ली। अन्त मे पति ने कहा—प्रिये, तुमने जो कहा वही करूगा। आधी रात हो गई है। जरा कुछ देर के लिए मै सो जाऊ। सर्वव्यापी भगवान् को देखने के लिए मै बडे सवेरे उठूगा। भेट के रूप मे उन्हे देने के लिए कुछ दे देना।[1] सुदामा की सती-साध्वी पत्नी ने पिछले दिन भीख मे जो अनाज पाया था उसे कूटकर उसने चिउडा बनाया। चिउडा बनाते समय जो ककड उसमे मिले थे उनकी चिन्ता न करके उसे अपने पतिदेव को दे दिया। नरोत्तमदास अपनी पुस्तक मे पति-पत्नी के वार्तालाप के प्रसग मे लिखते है। भगवान् की स्तुति करते हुए सुदामा की स्त्री कहती है—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल, स्रवननि कुण्डल
मुकुट घरे माथ हूं।
ओढे पीत बसन गरे में बैजयन्ती माल, सख चक्र गदा और
पद्म घरे हाथ है।[2]

इस प्रकार का सुन्दर वर्णन करने वाले कवि बहुत कम पाए जाते है।

नरोत्तमदास ने लिखा है कि वाद-विवाद के पश्चात् सुदामा श्री कृष्ण के पास जाने को तैयार होते है।

वारियर के सुदामा की स्त्री उतनी चतुरा है कि उसके कुछ शब्द सुनकर ही सुदामा श्री कृष्ण के पास जाने को तैयार हो जाते है। भेट के सबध मे नरोत्तमदास लिखते है—

यहि सुनिके तव ब्राह्मनी, गई परोसिन पास।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास॥[3]

वारियर के सुदामा चिउडा लेकर जिस समय द्वारिका की ओर प्रस्थान करते है उस समय मार्ग के प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन कवि ने बहुत ही अच्छा किया है। बडे कुतूहल के साथ छतरी ले वे पत्नी से विदा होकर श्री कृष्ण का नाम जपते हुए रवाना हुए। उस समय बाल रवि की किरणे चारो ओर फैलने लगी थी। दाहिनी ओर मुडकर चकोर आदि पक्षियो का चहचहाना सुनते हुए वे जा रहे थे। जाते समय वे भक्तिरस मे तल्लीन हो रहे थे।[4] इस प्रसग मे नरोत्तमदास ने केवल इतना ही लिखा है कि गणपति का स्मरण करते हुए दुपट्टी बाधकर सुदामा चल दिए।

---

१ परन्नतइड नेतन्ने पातिरावायल्लो पत्नी
कुरन्नोन्नुरङ्ङट्टे आनुलर्कारेज
निरन्न कृष्णने वकाय्‌मान पुलरकाले पुरप्पेटा
अरिन्‌नु वल्लतु कृटे तन्नयय्क्केण

—कुचेलवृत्तम्, स० कुन्ञन पिल्ला, पृ० १२।

२ सुदामाचरित, स० श्री ललिताप्रसाद सुकुल, पद स० ६।

३ सुदामाचरित, स० ललिताप्रसाद सुकुल पद स० २५।

४ कानपु कुलन्न। पुट्पुमेट्त्तिरनु

वारियर के सुदामा भक्तिसागर में डूबते-डूबते कई शहर-गाव पार करते हैं। सुदामा श्री कृष्ण की याद करते-करते कभी पुलकित होते हैं और कभी सकोच होने के कारण सोचते हैं—कल जाऊ, कल जाऊ, इस प्रकार विचार करके बहुत दिन टल गए। अभी जाऊ तो उनके मन में मेरे प्रति न जाने क्या भाव उठेंगे। जैसे ताड वृक्ष पर कमल के फूल फेंकने से उसपर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता, वैसे ही कही मेरा जाना भी बेकार न हो जाए। परन्तु यह सन्देह पैदा होते ही फिर मिट गया, क्योंकि श्री कृष्ण तो सबके नाथ हैं। वे सोचने लगे—अकिंचन व्यक्ति पर भी अनुग्रहों की वर्षा करने वाले भगवान् मुझ ब्राह्मण पर कृपा करेंगे ही। पूर्ण विश्वास है कि मुझे देखते ही भगवान् प्रसन्न हो जाएगे और बडी आवभगत करके मेरा स्वागत करेंगे।[1]

इस प्रकार स्वय शका-समाधान करके सुदामा द्वारिका पहुचे। द्वारिका के विविध मार्गों का वर्णन करते हुए अन्त में सक्षेप रूप से वारियर ने यों लिखा है—ठीक समय पर भोजन न पा सकने के कारण निर्बल सुदामा की भूख-प्यास द्वारिका को देखते ही मिट गई। केवल भूख और प्यास ही नही बल्कि वह भव-बाधा भी मिटी जिसका नाश भक्ति के सिवा और किसीसे नही हो सकता। श्री कृष्ण की राजधानी ने बडे आदर के साथ उन्हें रोमाच रूपी कुर्ता भेंट में दिया जो पहनते ही पसीने से भीग गया, आनन्दाश्रु से भीगने के कारण वह कुर्ता सुदामा को भारी प्रतीत होने लगा। उनकी आखें खुशी से भर आई।[2] इस प्रकार सुदामा श्रद्धाभक्ति-युक्त हो द्वारिका पहुचे। यह भाव कवि ने आलकारिक भाषा में व्यक्त किया है भक्ति रूपी हवा के सहारे रूपी पारावार को पार करके भगवान् के

कुलपाव पन्निपोग पाग्रगु चोल्गि
वा गानिल वेः दुदञ्चिग नेर कृपानाल
जान्ने आरिपूत्तु नेयु कुचेलन्
गान्पगरोणेजिनन नशोदि पग्गिरे
कोनाहन परट्ट कोण्डु विनिगमिन्चु
नालिक तोर याम मलि नक्कु गान्लना
गालिपि रक्कनुन गुरुकुकु
गानुवलुलोरयु पेलन् पान मन्न पोन्
—कुचेलोपाख्यानमु, सं० कुष्णन मिश्र, पृ० १४।

[1] [illegible] नेमालम पररलनेत्ने ब्राह्मणेन
मनोविक्कु मन्नु[illegible]दुरापुं नेरु
—कुचेलोपाख्यानमु, सं० कृष्णन मिश्र, पृ० १५।

[2] दर्शित्तु कोरक्कुतेल्लि [illegible] पतित्तनु कुलमर्ना
पहर्न [illegible]तोष्टे विलेन्नु दारम
पेलनावु[illegible] मंजि बे [illegible] नेदे पदि
× × ×
जोरलानि ररुमुन्नदि पलनुग

ार मे सुदामा ने प्रवेश किया।[1]

नरोत्तमदास ने केवल दो ही पक्तियो मे यह बात लिखी है—

भाल तिलक घसिके दियो गहो सुमिरनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयो अनाथ सनाथ॥[2]

वारियर के वर्णन से समझा जा सकता है कि उन्होंने अनेक विषयो की उद्भावना की जिन्हे अन्य किसी कवि ने नही लिखा। वाह्य प्रकृति का वर्णन जिस कुशलता से उन्होने किया है वैसी ही निपुणता रस तथा भाव का चित्रण करने मे भी दिखाई है। द्वारिका नगर के दर्शन करते ही सुदामा के हृदय मे जो आनददायक सात्त्विक भाव अकुरित हुआ, वह पसीने से तर उनके शरीर मे रोगटे के रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई पडता है और अनुकूल वायु की सहायता से जैसे नाव प्रबल तरगो को काटती हुई आगे वढकर किनारे पर पहुचती है वैसे ही भक्ति रूपी पवन की सहायता से शरीर रूपी नाव भाग्य-सागर की तरगो से टकराकर द्वारिका रूपी किनारे पर पहुचती है। इस भाव की व्यजना वडी सुन्दरता से वारियर ने अपनी कविता मे की है। इतने से ही उनकी कविता की श्रेष्ठता समझी जा सकती है।

सुदामा का चित्र वारियर यो खीचते है—उन्होने पुराना वस्त्र पहना है, कन्धे पर एक उत्तरीय पडा है। पोटली तथा धर्मग्रन्थ काख मे दवी है। छाती पर भस्म लगा है। फटा-पुराना छाता लेकर रुद्राक्ष की माला फेरते और भगवान् का ध्यान करते हुए वे चले जा रहे है।[3] ऐसे भक्त को सातवी मजिल से भगवान् ने देखा तो तुरन्त दौडे हुए आए और आसू वहाते हुए अपने मित्र को छाती से लगाया। उस दृश्य का वर्णन वारियर इस प्रकार करते है—मित्र को देखकर श्री कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु उनकी दीनावस्था देख उनको वहुत दु ख हुआ। वे रोने लगे। शूरवीर भगवान् को दु खी होते कव देखा है[4], कभी नही। उनके जीवनकाल मे वहुत सी ऐसी रोमाचकारी घटनाए हुई,

---

१ शाङ्गियुटे पुरद्वार पूकिक्कप्पेट्टु

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १७।

२ सुदामाचरित्र, स० सुकुल, पद स० ३०।

३ कण्डालेअकष्ट मेत्रयु पुपिजन जीर्ण्ण वस्त्र
कोण्डु तटट्टेत्तिट्टुत्तरीयव इट्टु
मुरिण्टल् पोत्तिन्न पोतियु मुख्यमाय पुस्तकवु
× × ×
चित्र पत्तिन्कालुरच्चु चेन्चम्मे चेल्लु

—कुचेलवृत्तम्, म० कुञ्जन पिल्ला, पृ० १८।

४ अन्नण्ने वकण्डिट्ट् सन्तोप कोण्टो तस्य दैन्य
× × ×
चेन्नामर वकण्णुण्टो करञ्ञिनट्टुल्लु ?

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १८।

परन्तु उनका मन पत्थर-सा कठोर बना रहा। आखिर अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रोने के कारण भक्तों की ओर उनकी अनुकंपा तथा सहानुभूति प्रकट होती है। इस प्रकार भगवान् को भक्तानुग्रहव्यग्र सिद्ध करके कवि आगे बढ़ते हैं—श्री कृष्ण अपनी कोमल शय्या से उठकर नीचे आए। उस समय सारे परिजन और पौरजन भगवान् की वन्दना करते हुए खड़े थे। टिड्डी-दल के समान अपने भक्तों के साथ कृष्ण ने उत्तम भक्त सुदामा का स्वागत बड़े तपाक से किया। इस समय कवि पूछता है कि श्री कृष्ण के अतिरिक्त क्या किसी अन्य में इस प्रकार की संवेदना तथा सहानुभूति है ?[1]

श्री कृष्ण ने अपने मित्र का स्वागत ही नहीं किया, बल्कि पसीने से तर होने के कारण दुर्गन्धित शरीर वाले अपने सखा को छाती से भी लगाया और बड़े प्यार से सुदामा का हाथ पकड़कर भगवान् ने उन्हें अपनी शय्या पर बिठाया। लक्ष्मीदेवी ने जल से उनका अभिषेक किया और भगवान् ने स्वयं उनके पैर धोए। पश्चात् जिस जल से अपने भक्त के चरणारविन्दों को श्री कृष्ण ने धोया था उस परिपावन जल को एक भी बूंद बिना गिराए अपने तथा दूसरों के शरीर पर छिड़का।[2]

साधारणतः लक्ष्मीजी धनवान् पर ही प्रसन्न हो जाती हैं। किन्तु यहां भगवान् को दीन दुःखी ब्राह्मण पर अत्यन्त प्रसन्न देखकर लक्ष्मीजी को अपना स्वभाव छोड़कर गरीब सुदामा पर प्रसन्न होना पड़ा।

नरोत्तमदास ने भी इस प्रसंग का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। सुदामा का चित्र बड़ी सुन्दरता से नरोत्तमदास ने खींचा है। द्वारपाल श्री कृष्ण को सुदामा के आगमन की सूचना इन शब्दों में देता है

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु ! जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पांय उपानह को नहीं सामा।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।[3]

---

१ [illegible]
[illegible]
× × ×
[illegible]

—[illegible], पृ० १८।

२ [illegible]
[illegible]
× × ×
[illegible]

—[illegible], १९।

३. सुदामाचरित, सं० [illegible], १४।

यह वर्णन बहुत सजीव और स्वाभाविक है। सुदामा का नाम सुनते ही दौडे हुए भगवान् का आना, सत्कार करना आदि पर दोनो भाषाओ के कवियो ने बडी कुशलता से लिखा है। अतएव कहा जा सकता है कि दोनो कवियो के काव्य का यह अश एक-दूसरे से बढकर है।

वारियर लिखते है—घर से निकलते ही सुदामा को सन्देह हुआ था कि कही भगवान् मुझे भूल न गए हो। जब भगवान् के मुह से निम्नलिखित वाक्य निकले तो उनका सन्देह दूर हो गया। "कितने दिनो से तुम्हे देखने के लिए मै लालायित हो रहा हू। इतने दिन बाद तुमने मेरे यहा पधारने का निश्चय किया, यह मेरे लिए बडे सौभाग्य की बात है।[1] यह कहकर श्री कृष्ण ने बहुत सी पूर्व-घटनाओ की याद दिलाई। अन्त मे भाभी की दी हुई भेंट निस्सकोच देने की प्रार्थना वे करते है—भाभी ने जो पोटली दी है उसे जल्दी ही मुझे दो। सकोच की आवश्यकता नही है। गोपिकाए भी मुझे लालची कहती है।[2] नरोत्तमदास ने यह प्रसग बडी सरसता से लिखा है। महावैभवशाली कृष्ण के सामने अपनी स्त्री की दी हुई पोटली को उठा लेने मे सुदामा सकोच करते है। यह जानकर सरस तथा व्यग्य भरे शब्दो मे श्री कृष्ण कहते है—

आगे चना गुरुमातु दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसिकाय सुदामा सों, चोरी की बान में हो जू प्रवीने।
पोटरी काख में चापि रहे तुम, खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजो तुम, तैसई भाभी के तन्दुल कीने।

जब श्री कृष्ण ने चिउडा खाना आरभ किया उस समय का वर्णन[3] नरोत्तमदास करते है—

कापि उठी कमला मन सोचत, मोसों कहा हरि को मन औंको।
ऋद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपी बम्हना यह धौंको।
सोच भयो सुरनायक के, जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्यो बकसे जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको।

भगवान् की सत्ता पर विश्वास करने वाले भक्त लोगो[4] से प्रकृति-शक्तियो का इस प्रकार भयभीत होना यथार्थ ही प्रतीत होता है।

---

१ एन्न नालुएडु ञान काणाञ्ञिनट्टु चित्ते कोतिक्कुन्नु
अन्न तन्ने पोन्नु वन्नतम्मात्र भाग्य।
—कुचेलवृत्तम् म० कुञ्जन पिल्ला, पृ० २०।

२ पोतियिड्डोट्टु तन्नालु लज्जिक्केन्ट गोपिमार
कोतियनेन्निज्जनत्ते परखु ञाय।
—कुचेलवृत्तम्, पृ० २१।

३ सुदामाचरित—स० ललिताप्रसाद, पृ० १८।

४ सुदामाचरित—स० ललिताप्रसाद, पृ० १६।

वारियर इसी प्रसंग मे लिखते हैं कि जब श्री कृष्ण ने सुदामा के हाथ से चिउड़े का दोना ले लिया तब उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। ककड और भूसी मिला हुआ चिउडा एक मुट्ठी अपने मुह मे उन्होंने रखा। दूसरी बार भी लेने के लिए उन्होंने हाथ बढाया तो लक्ष्मीदेवी ने रोककर कहा—हे नाथ ! बस कीजिए, बस कीजिए। सबको सर्वदा कितनी भी मात्रा मे कोई भी वस्तु देने की शक्ति रखने वाली मैं अब इस ब्राह्मण को सब कुछ दे चुकी हू। और कोई भी वस्तु देने के लिए नही रह गई है। मै जन्म से ही आपकी सह-चारिणी हू और अब ऐसा मालूम होता है, आपने मुझे इस ब्राह्मण की पत्नी की दासी बनाने का निश्चय कर लिया है। हे नाथ, आप क्यो ऐसा करते हैं।[1]

नरोत्तमदास इस घटना का वर्णन संक्षेप मे करते है—

> मुठी तीसरी भरत ही, रुक्मिनि पकरी बाह।
> ऐसी तुम्हैं कहा भई, सम्पति की अनचाह।
> कह्यो रुक्मिनी कान में, यह धौं कौन मिलापु।
> करत सुदामा आपु सौं, होत सुदामा आपु।[2]

रुक्मिणी की घबराहट दूर करते हुए वारियर के भगवान् इस प्रकार कहते हैं—हे प्रिये ! घबराओ मत। तुमने जो किया वह बहुत अच्छा किया है। किन्तु खेद की बात है कि यद्यपि तुम मेरे पास हमेशा से रहती हो, फिर भी मेरे स्वभाव से बिलकुल अनजान हो। मेरा स्वभाव है कि अपने भक्तो के सामने मैं अपने को बिलकुल भूल जाता हू और उनकी भलाई के लिए सदा प्रस्तुत रहता हू। क्या यह बात तुमने अभी तक नही जानी ? अपने भक्त ने जो दिया उसमे से ही मुट्ठी भर खाने से मैं बहुत तृप्त हो गया हू।[3] आशय यह कि अनगिनती ब्राह्मणो को अपने जठर मे रखने वाले भगवान् ब्राह्मण-पत्नी का भेजा हुआ ककड-भूसी मिला मुट्ठी भर चिउडा खाने से तृप्त हो गए हैं। अपनी प्रिया की बातें समझने के बाद भगवान् सुदामा से कहते हैं—

कुछ वर्ष पहले द्रौपदी का दिया हुआ शाकान्न मैंने खाया। उस दिन और आज

---

1. [illegible]।
[illegible]
× × ×
[illegible]
[illegible]
—कुचेलवृत्तम्—सं० [illegible], पृ० [illegible]।

2. सुदामाचरित—सं० [illegible], पृ० २०-२१।

3. [illegible]
× × ×
[illegible]
—कुचेलवृत्तम्—पृ० २३।

ाुझे जो तृप्ति हुई वह अपने जीवन मे कभी नही हुई। मेरे भक्त भक्ति से मुझे जो कुछ .ते है वह चाहे खट्टा, कडवा, कैसा भी हो, मेरे लिए पीयूष समान होता है। इसके विप- ीत, भक्तिहीन मनुष्य का दिया हुआ अमृत भी मुझे नीम के समान कडवा मालूम होता ३। आप जैसे गर्वहीन भक्त मुझे कोई और कैसी भी वस्तु अणुमात्र भी दे वह मेरे लिए ार्वत समान बहुत अधिक है।[1] कवि आगे लिखते है—हम दोनो के शरीर यद्यपि दो है तो ी मन एक है। शरीर के विनाश के बाद भी हमारा सबंध बना रहेगा। आप अपनी धर्म- ात्नी से कह दे कि लक्ष्मीदेवी तथा आपकी स्त्री का स्थान एक है।[2]

भगवान् के ये वचन सुनकर सुदामा उचित उत्तर देते है—हे मुक्ति, मुक्ति देने वाले ुवननाथ, भक्त सच्ची भक्ति से आपको प्राप्त कर लेता है। आप इतने प्रतापी है कि ासन्नचित्त सामन्त उपहार लेकर आपके दर्शन करने की अभिलाषा मे खडे है। ऐसे आप मुझ बेचारे की इस प्रकार सेवा करते है। यह सब मैने न पहले देखा था न सुना था। बच- ान मे मैने आपका जो रूप देखा था उसकी पूजा मै अपने मनोमन्दिर मे करता आ रहा ३। अब वह रूप मै सामने देख सका। इससे मै अतीव प्रसन्न हो गया हू। भवन के सातवे ाड पर लक्ष्मी देवी की शय्या मे आपने मुझे विश्राम करने दिया जिससे मै सोचता हू कि मेरे समान इन चौदह लोको मे कोई भी सौभाग्यवान् नही है।[3]

नरोत्तमदास भगवान् के सत्कार के बारे मे कहकर अन्त मे लिखते है—

सात दिवस यहि बिधि रहे दिन दिन आदर भाव।
चित्त चल्यो घर चलन को, ताको सुनहु बनाव॥[4]

---

१ पएटोरिक्कन पाएटव महिषियुटे शाकोदन
मुएड नामिन्नु भवान्टे पृथुक तिन्नु
× × ×
सर्व तत्व वित्ते ! भवानरियामल्लो

—कुचेलवृत्तम्—पृ० २१।

२ कायभेद मुएटेन्किल् रए्ल्लानामुभौ जीवन
पोयाल् मिरि वकुम्पोल् मेन्नरिमजाल्।
परञ्ञाल् ममवचन।

—कुचेलवृत्तम, पृ० २१।

३ मुक्ति मुक्ति दाताने ! भुवननाथ ! भगवाने !
भक्ति कोएडु भाननारु लिन्नालत्भुत
शान्ति कोएडु शनननारु जयिक्क प्पेटुन्ननिनाल
भुवन रएडु जिनारय्क्कु मन्नर वेएट
× × ×
मन्परना धन्यनिल्लोमन्नोरेसिल्

—कुचेलवृत्तम्, स० कचन पिल्ला, पृ० २१ २५।

४ सुदामाचरित, स० सुगुन, पद्य स० ५६, पृ० २१।

वारियर यह नही बताते कि सुदामा श्री कृष्ण के यहा कितने दिन ठहरे। उन्होंने यह लिखा—धनहीन ब्राह्मण सुदामा भगवान् कृष्ण को अपने मन मे लेकर विदा हुए।[1] कितनी सुन्दर युक्ति है यह!

रास्ते मे सुदामा कृष्ण भगवान् की आवभगत के विषय मे सोचते हैं—भगवान् का काम देखकर अचरज ही अचरज मालूम होता है। कहा मुझ-जैसा तुच्छ-अकिंचन मनुष्य और कहा ईश्वर के भी ईश्वर श्री कृष्ण। तो भी हम दोनो की मित्रता का दूसरा उदाहरण कहा मिलेगा? तैंतीस करोड देवों और त्रिमूर्तियों के स्वामी भगवान् मुझे देखते ही नीचे दौडे और पसीने से तर मुझ जैसे गन्दे को कामदेव के पिता भगवान् ने अपनी छाती से लगाया। फिर सौध मे ले जाकर लक्ष्मीदेवी की शय्या पर बिठाकर मेरी पूजा करने लगे। रात के समय रमा के साथ के सुप्ति-सुख को छोडकर मेरे लिए पखा झलते रहे। इस हास्यास्पद ब्राह्मण की जो सेवा अखिलेश्वर ने बडी लगन से की, उसके बारे मे क्या कहना! शब्द नही मिलते। मेरे कृष्ण भगवान् ने भेंट का वह चिउडा बडे प्रेम से खाया जिसे साधारण नौकर-चाकर भी नही खाते।[2]

इस प्रकार सोचते-सोचते मार्ग का क्लेश बिना जाने वे जा रहे थे कि अपनी स्त्री की बात उन्हें याद आ गई जिसके लिए उसने उन्हें श्री कृष्ण के पास भेजा था। वह बात भगवान् के सामने कहना वे बिलकुल भूल गए। वारियर कहते हैं—'मेरी राह देखती तथा आंखें डबडबाती बैठी हुई अपनी पत्नी से मैं क्या कहूगा! हाय! अपनी पतिव्रता पत्नी को मेरे कारण इतने दिन उपवास करना पडा होगा। धिक्, मेरा जीवन! मुझ पापी की क्या गति होगी?[3]

नरोत्तमदास ने सुदामा के पश्चात्ताप का चित्र बडी कुशलता और भावुकता से खींचा है। जब बहुत बडी आशा बाधकर एक आदमी आता है लेकिन अन्त मे उसे निराश होकर लौटना पडता है उस समय की मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है।

---

१ कुचेलवृत्तम्—पृ० २५।

२ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

× × ×

[illegible]
[illegible]

—कुचेलवृत्तम्, म० कृष्ण पिल्ल, पृ० २६।

३ [illegible]
[illegible]

—कुचेलवृत्तम्, म० कृष्ण पिल्ल, पृ० २६।

वडी आशा से सुदामा कृष्ण के पास आए किन्तु कुछ नही पा सके। वे खीझते हुए कृष्ण की कडी आलोचना करते है—

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की वात।
यह पठवनि गोपाल की, कछु ना जानी जात॥
घर घर कर ओडत फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अव भयो, हरि को राज समाज॥
हौं आवत नाहीं हुतौ, वाहि पठायो ठेलि।
अव कहिहौं समुझाय कैं, वहु धन धरौ सकेलि॥
बालापन के मित्र हैं, कहा देऊ मैं साप।
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइहैं आप॥[१]

वारियर लिखते है कि सुदामा अपने को धिक्कारते जा रहे है। वे नही जान पाए कि अव वे स्वय भगवान् कृष्ण के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी हो गए हैं। अन्त मे अपने निवास-स्थान के समीप पहुचकर उन्होने देखा कि द्वारिका के समान किसी दूसरी नगरी मे वे आ गए हैं। उन्हे भ्रम हुआ कि शायद मैं रास्ता भूल गया हू और घूम फिरकर भगवान् के ही धाम पर आ पहुचा हू। उस समय सुदामा की पत्नी आकर उनका स्वागत वडे समारोह से करती है। उसके सवध मे कवि कहते है—सुदामा की पत्नी ने गाते-वजाते पतिदेव का स्वागत किया और सूर्य जैसे प्रकाशमान सुदामा-नगरी को दिखाया। विविध प्रकार के महल, मण्डप, किले आदि के दिखाने के वाद उसने उन्हे शय्या पर विठाया। चवर, तावूल, पात्र आदि लेकर रमणिया चारो ओर घेरने लगी। पकजाक्ष के कृपा-भार से दवकर सुदामा अपनी पत्नी से सारा वृत्तान्त पूछने लगे।[२] इस प्रसग पर नरोत्तमदास और वारियर दोनो ने वडी सुन्दरता और निपुणता से अपनी रचनाए लिखी हैं।

सारा समाचार जानकर सुदामा की भक्ति दसगुनी वढ गई। वारियर लिखते है—द्वारिका, सुदामा की नगरी तथा धर्मपुत्र की नगरी हस्तिनापुरी मे एक ही रीति से धर्म के अनुसार काम चलने लगे। यद्यपि सुदामा तथा उनकी स्त्री को अटूट सपत्ति मिली तो भी भगवान् को उनका ही ऋणी होना पडा, क्योकि ज्यो-ज्यो सपत्ति वढी त्यो-त्यो उनकी

---

१ सुदामाचरित—स० शुक्ल, पृ० २४ २५।

२ नल् पुरवामिकलोटु नाना वाद्य घोषत्तोटु
केल्पोटष्ट मगलदादि माकल्यत्तोटु

× × ×

स प्रमाद निज पत्नियोटु चोदिच्चु।

—कुचेलवृत्तम्, स० कृष्णन पिल्ला, पृ० २८।

भक्ति भी सौगुनी बढने लगी।[1] अत कवि कहते है कि महा-महिमाशाली सत्ताधारी भगवान् दीन-हीन गरीब सुदामा तथा उनकी पतिव्रता, सती, साध्वी स्त्री के ऋणी हो गए, इस प्रकार की उद्भावना सभवत किसी अन्य कवि को नही सूझी। कवि की यह उद्भावना निश्चय ही सुन्दर है। अत जो सहृदय है वे यदि एक बार वारियर तथा नरोत्तमदास की कृतिया पढे तो निस्सकोच कहेगे कि वे दोनो कृतिया कविता-कामिनी के गले के चन्द्रहार है। कुचन नम्प्यार ने भी सुदामा के चरित पर सुन्दर पद लिखे है। सुदामा की निर्धनता का वर्णन करते हुए लोगो की कृपणता तथा अनुदारता का चित्र सुदामा की स्त्री के द्वारा कवि ने प्रस्तुत कराया है। घर-घर मे भीख मागने पर ज्ञात हुआ कि भीख न देने वालो की सख्या अधिक है। यदि कुछ लोग देते भी है तो कुछ चावल या धान और वह भी सध्या के समय मे।[2]

कृष्णगाथा और वारियर की कविताओ मे लिखा है कि सुदामा की पत्नी भूख और प्यास से अत्यन्त परेशान होकर उनसे सदा के लिए छुटकारा पाने के उद्देश्य से अपने पति से कृष्ण के पास जाने की प्रार्थना करती है, किन्तु नम्प्यारजी भक्तश्रेष्ठ सुदामा की स्त्री से ऐसी प्रार्थना नही कराते है। बच्चो का दुख देखकर वह व्याकुल हो उठती है और शकित हृदय से अपने पतिदेव से सारी बाते कहकर उनको द्वारिका जाने के लिए प्रेरित करती है। वह कहती है—ससारी लोग अपने बच्चो के पालन-पोषण करने के लिए सब कुछ करते है। परन्तु हे स्वामी! आप अपने बच्चो का पालन करने की ओर बिलकुल ध्यान नही देते।[3] इस प्रकार अवसर के अनुसार तर्क देकर वह उनके बाल्यकाल के सखा मनमोहन कृष्ण के पास जाने की नम्र प्रार्थना करती है।

---

१. निर्मला कनक स्थली पुर्गतिनु [illegible]
निर्गमनमाके कुचेल [illegible]
धर्म पुत्रतिरिक्कुन्न [illegible]
धर्म मोर पोले यामि दिवन्नो
× × ×
इत्यादि [illegible]।

—[illegible]

२ [illegible] नेन्नु [illegible]—
[illegible] चोल्लुन्न [illegible]
[illegible] आयरवि [illegible]
[illegible] [illegible]।

—[illegible]

३ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]।

—[illegible]

इसी अवसर पर त्यागी भक्त सुदामा भी सारगर्भित वाते कहने मे पीछे नही देखाई पडते। अन्त मे अपनी सुशीला पत्नी का अनुरोध मानकर अपने उपास्यदेव की सुन्दर मूर्ति को देखने की इच्छा से वे जाने के लिए तैयार हो जाते हैं और कहते हैं—तो तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं जाऊगा और जो कुछ मिलेगा उसे लाऊगा। इसी बहाने नन्दनन्दन का कमल-मुख देखने का अवसर भी मिलेगा।[1]

सुदामा भगवान् के यहा से लौटते हैं। रास्ते मे भगवान् की चेष्टाओ का स्मरण करते हुए कहते हैं। यदि मुरारि से धन मागता तो वे जरूर देते किन्तु उनके सत्कारो से दबकर मागना भूल गया। मेरी स्त्री ने उसीके लिए मुझे भेजा था।[2]

यह सोचकर उनको अपार दु ख हुआ। उसी दम वह दु ख मिट भी गया और स्वर्ग सदृश अपने नगर को देखकर उनको भ्रम हुआ, पर त्रिकालज्ञाता सुदामा को बोध हुआ कि यह भगवान् की करामात है और वे कहते हैं—मुझे मालूम हुआ कि यह सब भगवान की लीला है। भगवान् ने जो विभूतिया दया करके दी उन्हे देखकर बडा आश्चर्य होता है।[3] इतना कहकर कवि लिखते हैं कि सुदामा नि सग होकर जीवन बिताने लगे। कृष्णगाथा मे सुदामा को एक बडे निर्धन के रूप मे और वारियर ने उनको निर्धन पडित और भक्त के रूप मे चित्रित किया है। कुचन नप्यार का सुदामा परम भक्त और निर्धनता से अप्रभावित व्यक्ति है।

इन तीनो कवियो के अतिरिक्त एक अज्ञात कवि ने सुदामा के चरित पर सुन्दर कविताए रची हैं। इन्होने सुदामा को केरलदेशवासी के रूप मे चित्रित किया है। वे सबसे पहले द्वारिकापुरी का सुन्दर वर्णन करके राजधानी के विविध व्यापारो का चित्र खीचते

---

१ एन्नाकिलु ञानिह चेन्नु पोरा
तन्नाकिलो ञानतु कोण्डु पोरा
नन्दात्मजन् तन्टे मुखारविन्द
मन्दस्मिताद्र वत कण्डु पोरा

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० १०८।

२ मुरारियाटर्थमिरन्नताकिल
तरातिरिक्किल्लवनत्रमात्र
परञ्जु मोदिच्चु वमिक्कयाल ञान
मरन्नु पोयेन् गृहणी नियोग।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० १०९।

३ उण्टायि तत्व मम कण्टनेल्लाम्
तण्टारिल् मानिन कण्वन्टे लील-
मिण्टाने तन्नोरु विभूतियेल्लाम्
कण्टाल् आश्चर्यमहो विचित्र।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० ११०।

हैं। उसके बाद सुदामा के संबंध में कहते हैं। कवि कुचेल[1] नाम कहकर पुकारने में संकोच करते हैं। कुशल कुचेल नाम कवि ने सुदामा को दिया है। प्रस्तुत कवि पाठक की सहानुभूति को जागरित करते हुए आगे कहते हैं। दूसरे कवियों के समान यह भी भूखी-प्यासी कुचेल पत्नी से इस प्रकार शिकायत कराते हैं। क्या आपको भूख नहीं लगती, जिसकी पूजा आप इस प्रकार करते हैं? यदि आप कुछ उपहार लेकर भगवान् के पास जाएं तो वे जरूर प्रसन्न हो जाएंगे और हमारा दुःख दूर करेंगे।

सुदामा सोचते हैं, संस्कारहीन व्यक्ति (पत्नी) को उत्तर देने से क्या लाभ? इस प्रकार विचार कर वे कहते हैं—तुम घृणा मत करो। क्षमा करो। अभी तो जाओ। कल सवेरे जाऊंगा। पोटली और छत्र लेकर जाते हुए ब्राह्मण को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानो केरलवासी हो। इस ब्राह्मण की विशेषता यह है कि जाते समय वह लोगों से पूछता जाता है सदावर्त कहां मिलेगा।

फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाले सुदामा ब्राह्मण का स्वागत श्री कृष्ण उसी प्रकार करते हैं जैसे नवोढा के आगमन पर उसका प्रिय स्वागत करता है।[2] सुदामा को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कराया गया। बातचीत के समय दारिद्र्य की महिमा का वर्णन भी किया गया है। पुरानी कथाओं का स्मरण कराके एक दिन जंगल में उन्हें जो कष्ट उठाना पड़ा उसका सुन्दर वर्णन श्री कृष्ण के मुख से कवि ने कराया है। अन्त में निराश होकर सुदामा अपने धाम पर पहुंचते हैं। वहां का परिवर्तन देखकर उनको बड़ा आश्चर्य होता है। कवि कहते हैं—थोड़े चिउड़े भेंट के रूप में देने के बदले में वैसा फल मिला जैसे ग्रीष्म के तप्त समय में बड़ी वर्षा होती हो।[3] नये घरों को देखकर सुदामा को बड़ा भ्रम होता है। खाने की बहुमूल्य चीजें परोसते समय केरल देश में प्रचलित खीर का नाम देने में कवि ने भूल नहीं की। प्रसंग के अनुसार सुन्दर शब्दों के प्रयोग में कवि की कुशलता प्रशंसनीय है। संक्षेप में कहा जाए तो यह कृति आदि से लेकर अन्त तक मधुर है।

कथकलि के रूप में भी सुदामाचरित मलयालम में लिखा गया है। मलयालम साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। शंकरन पोट्टि नामक एक ब्राह्मण इसके रचयिता

---

१ मलयालम में भी सुदामा को कुचेल कहते हैं।

२ [illegible]
[illegible]

—[illegible]

३ [illegible]
× × ×
[illegible]
[illegible]

—[illegible]

है। वसतकाल का वर्णन इसमे वहुत सुन्दर ढग से किया गया है। निर्धनता का नग्न चित्र दूसरे कवियो के समान इन्होने भी खीचा है। पत्नी के वचन सुनकर नरोत्तमदास के सुदामा के समान प्रस्तुत कवि के सुदामा कुपित होते नही दिखाई पडते। अपनी विदुपी धर्मपत्नी की प्रार्थना सुनकर उन्होने यही कहा कि जव तक शरीर रहेगा तव तक शरीरधारियो की इच्छा कम होती नही। किसी वात के प्रलोभन मे पडना अच्छा नही। शेप कथा मे कवि ने मौलिकता नही दिखाई है। इसकी सस्कृतमिश्रित शैली साधारण जनता के लिए वोधगम्य नही है। राजधानी तथा सुदामापुरी का वर्णन सुन्दर है। भक्तिरस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है।

सुदामाचरित के वाद सूर ने सुभद्रा के विवाह का प्रसग एक ही पद मे सक्षेप मे लिख डाला है। परन्तु कृष्णगाथा मे वडे विस्तार से यह कथा लिखी गई है। सुभद्रा के रूप-लावण्य की प्रशसा सुनकर अर्जुन पहले ही उसपर मुग्ध हुआ था। उसी प्रकार सुभद्रा भी अर्जुन के वीरोचित गुणो के विषय मे सुनकर उसपर अनुरक्त हो गई। अर्जुन कपट-सन्यासी का वेप धारण कर आता है। श्री कृष्ण रहस्य समझकर वलराम की सलाह से युवा मन्यासी की सेवा-शुश्रूषा का भार अपनी वहन को सौंपते है।

कपटयोगी को देखकर सुभद्रा का मन चचल हो गया। वह पहले ही से अर्जुन को प्यार करती आ रही थी। अव अपना मन एक दूसरे योगी की ओर आकृष्ट होने से उसे वडा दु ख और पछतावा होता है। कृष्णगाथाकार के अनुसार सुभद्रा विचारती है—दु ख की वात है कि इस सन्यासी मे मेरा चित्त लग गया है। उत्तम वश मे मेरा जन्म हुआ। ऐसी अवस्था मे इस सन्यासी मे अनुरक्त होने के कारण क्या है? मेरा मन तो अर्जुन पर लट्टू हो गया था। इस परिवर्तन का क्या कारण है? इस प्रकार का दुष्कर्म मैं करू तो लोग क्या सोचेंगे। क्या मै कृष्ण की वहन नही हू।[1] कुलीन नारियो के सस्कार का सच्चा प्रतिविव यहा देखने को मिलता है। अन्त मे सोचने-विचारने के वाद सुभद्रा ने निश्चय कर लिया कि मै अर्जुन के अतिरिक्त और किसीसे प्रेम नही करूगी। सुभद्रा की इस प्रकार की चिन्ता का वर्णन मूल ग्रन्थ या सूरसागर मे कही भी नही दिया गया है। इस प्रसग के

---

१ योग्यनल्लातोरु भिद्द तमेलल्लो
भाग्यमिल्लात येन् जाल्य मिप्पोल
उत्तम माय कलत्तिल मुल्च्चेनि
यि्रकत्तर तोन्नुवानेन्तु जाय
पायनिल्लोर मानम मिन्निनि
त्तार्यकन तन्कनेयायि क्कृटि
आन्नु निन्नाटिलिग्मन्मय निन्नेने
× × ×
यउज्ननन् न ने जानेशि नकोल्क

—कृष्णगाथा, म० पा० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५८२-५८३।

द्वारा भारतीय नारीरत्न की चारित्रिक शुद्धि का दिग्दर्शन कराना कवि को अभीष्ट है।

एक दूसरे स्थल पर इस कपटी सन्यासी के विषय मे नगरनिवासियो का वार्तालाप सुनने योग्य है। सन्यासी के दर्शन के लिए लोग आते है। उस समय वे आपस मे कहते है। हमने इसके पहले इस प्रकार के किसी श्रेष्ठ सन्यासी को नही देखा। सन्यासी का मन ऐसे स्थान पर ही रमता है जहा मान, अभिमान, अपमान आदि का चिह्न भी जरा न हो। उनकी इन्द्रिया स्पन्दनविहीन होने के कारण ढीली दिखाई पडती है। किसीमे ध्यान लगने के कारण वे सामने खडे हुए हमको देख नही सकते। ठीक है, जिनको आन्तरिक ज्ञान मिला है उनकी स्थिति ऐसी होती है।[1]

सन्यासी का आन्तरिक उद्देश्य लोगो ने समझा, यह इस वार्तालाप से स्पष्ट है। उनके चुभते हुए वचन कितने अर्थगर्भित है। ऐसे सुन्दर सन्यासी को इसके पहले नही देखा, स्त्री के लोभ मे पडकर इस प्रकार इससे पूर्व कोई सन्यासी नही हुआ, यह है प्रथम पदो का सकेत। और किसीपर ध्यान लगा है, यह ध्यान सुभद्रा का निरन्तर विचार है।

सुभद्रा का चावल परोसना, केले का अन्तर्भाग बिना खाए अर्जुन का छिलका खाना आदि हास्यरस-प्रधान दृश्य भी इसी प्रसग के अन्तर्गत है।

कथकलि के रूप मे स्थानीय राज्य के राजा कार्तिक तिरुनाल राम वर्मा ने सुभद्राहरण की कथा गीतात्मक तथा प्रबन्धात्मक शैली मे लिखी है। अर्जुन तीर्थाटन करने के लिए सन्यासी का वेष धारण किए हुए पाचाली के पास जाते है। अपनी प्रिया से विदा लेने का प्रसग करुणरस-प्रधान भाषा मे कवि ने लिखा है। पाचाली कहती है—हे प्राणनाथ करुणानिधे! आपके वचन सुनकर मुझे अपार दुख होता है। आपको बिना देखे एक निमिष भी मै चैन से रह नही सकती। मेरे कारण आपको इस प्रकार का कष्ट झेलना पडता है। यह सोचकर मेरा मन दग्ध हो जाता है। भगवान् की कृपा से आप कृतकार्य होकर लौट आए।[2] कई पुण्य-स्थानो के दर्शन के बाद अर्जुन द्वारिका पहुचे

---

१ इङ्ङने [illegible] सन्यासि [illegible]
[illegible]
मानम् [illegible]
मानस [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
—[illegible]

२ [illegible]
[illegible]
[illegible]

है। सारा समाचार तथा भेद जानकर श्री कृष्ण सन्यासी की सेवा-शुश्रूषा करने का भार अपनी वहन सुभद्रा को सौपते है। शेष कथाए मूल कथा के अनुसार है। सरस कोमल-कान्त पदावलि मे यह कृति रची गई है।

श्री कुचन नम्प्यार ने भी अपनी भक्ति-भावना के अनुसार तुलल पद्धति मे यह कथा लिखी है जिसका वडा प्रचार केरल प्रान्त मे हुआ है। चेरुश्शेरी नपूतिरि के अनुसार इनकी कविताओ मे हास्य तथा शृगार-रस-प्रधान कई पद है।

वृकासुर या भस्मासुर की कथा सूरसागर मे वहुत सक्षेप मे लिखी गई है। मलयालम के कवियो ने विशेषत कृष्णगाथाकार ने वह कथा वर्णनात्मक शैली मे लिखी है। शिवजी के वर के वल की परीक्षा शिवजी पर करने के विचार से भस्मासुर उनके सिर पर हाथ रखने लगा। वे डर के मारे भागने लगे। उनका वह दौडना वडे स्वाभाविक ढग से कृष्णगाथा मे लिखा है। कवि लिखते है—तेज़ी से दौडने के कारण पहना हुआ शिवजी का शार्दूल चर्म नीचे गिरने लगा। उसे अपने हाथ मे पकडे हुए वे भागने लगे। उस समय गले से साप काप-कापकर एक-एक करके गिरने लगे। हड्डियो की मालाए छाती पर हिलने-डोलने लगी। हाथ के फरसे का प्रकाश चारो ओर फैल गया। कान मे कुडल रूपी सापो के शीत्कार से ललाट की आख की आग भभक उठी। सिर मे शोभित आकाश-गगा मे लहरें उठने लगी। पृथ्वी पर गिरे हुए वालचन्द्र को उठाते हुए और थर-थर कापती और विलपती हुई पार्वतीदेवी को सान्त्वना देते हुए शिवजी भागे जा रहे थे।[1]

इस प्रकार का सर्वांगपूर्ण वर्णन प्रतिभासपन्न कवि ही कर सकते है। शिवजी का कष्ट देखकर सवको बडा दु ख हुआ। किन्तु कोई उनकी सहायता नही कर सकता। अब भगवान् विष्णु एक ब्रह्मचारी का वेप धारण करके भस्मासुर के सामने आ जाते है और

प्राण नाथ ! नि नेरियन्नु काणिक नेर पोलु
काणाते ञान मरिक्कुमो
आण चेयूतीटेण मेन्ने नी कान्ता निप्निनिधे
एनमूल मायुवन्नु वल्लो निनुटे गमन
मन्मानस अतिनाले कलमप तेटीटुन्नधिक
निन्कल नेर्वेदन, भवान पन्कजाक्ष कृपया
सकट मेन्निये चेन्नु माधिच्चु वारिक कार्य

—आट्टकथ सुभद्रहरण, म० के० गोपाल पिल्ला, पृ० १६।

१ चार्त्ति निनीटुन्न शादूल चर्म्मव
दोरतल कोण्टड्डु ताटिट ताटिट
वेगत्ते प्पृण्ड विरन्चु निनाटुन्न
नागड्ङलोन्नोन्ने वाजे वाजे
× × ×
दानवन पि नाले चेलयोे

—कृष्णगाथा, म० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५६२।

मधुर तथा पीयूषमयी वाणी से अपने घर आने का निमंत्रण देते हैं। ब्रह्मचारी पूछते हैं—कहा से आपका आगमन हुआ? आपको देखकर मैं अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली समझता हूं। वृकासुर आपका नाम तो नहीं है? सज्जन लोग आपके गुणों की प्रशंसा का पुल बांधा करते हैं। मैं आपके दर्शन करने की लालसा से घूमता फिरता हूं। आप मेरे घर पधारिए और यात्रा का श्रम-क्लेश दूर करिए। आप क्यों दौड़े हुए आते हैं? आपका शरीर सूख गया है। आप आराम कर लें।[1]

कुरुक्षेत्र में तीर्थ-यात्रा के लिए कृष्ण का आगमन, ब्रजनिवासियों से उनकी भेंट होना, रुक्मिणी और राधा का परिचय आदि घटनाएं सूरदास ने बड़ी तन्मयता से लिखी हैं। वे कहते हैं—एक बाप की बिछुड़ी हुई बेटियों में आपस में मिलते समय जैसा आनन्द उत्साह और सतुष्टि होती है वैसा ही उन दोनों को अनुभव हुआ।[2] कृष्ण ने सबसे अभिन्नता का बर्ताव किया जिससे सब प्रसन्न हुए।

उन्होंने ब्रजवासियों से कहा—यद्यपि मैं दूर रहता हूं तो भी तुम्हारे पास ही हूं। जो जिस प्रकार मेरा भजन करता है उसी प्रकार मैं भी उसका भजन करता हूं—उसी भांति जैसे दर्पण में स्वयं अपना ही रूप दिखाई देता है।[3] अन्त में वृन्दावन के सारे लोगों ने प्रेम, कृतज्ञता, दीनता और सन्तोष प्रकट करते हुए कृष्ण की लीलाओं की याद करते और प्रेमसागर में गोते लगाते हुए उनसे विदा ली। यद्यपि इन कथाओं का विषय भागवत के अनुसार है तो भी कुरुक्षेत्र में कृष्ण, रुक्मिणी, राधा, यशोदा आदि के मिलन तथा वार्तालाप में सूर ने अपूर्व मौलिकता दिखाई है।

मलयालम के कवियों ने कृष्ण के जीवनकाल में हुई और कुछ घटनाओं के आधार पर सुन्दर कृतियां रची हैं। सन्तानगोपालम् की कथा और कृष्णार्जुनयुद्ध उनमें प्रमुख हैं।

सन्तानगोपालम् की कथा पर पून्तानम नम्पूतिरि और कुंचन नम्प्यार ने स्वतन्त्र कृतियां रची हैं। कथकलि में भी यह कथा लिखी गई है। पून्तानम नम्पूतिरि की कृति के

---

१. एट्टु निन्निड्डने वन्नु चोन्नुन्निनमोल
भगवन् भाग्यवन्तु वन्नतोर
नन्न वृकासुरनेन्नत्रुल्लोर
× × ×
आदि निन्नाडुन्नु मेनियेल्ला।

—[illegible], म० वि० के० [illegible], पृ० ४ [illegible]।

२. [illegible]
जैसे बहुत दिननि की बिछुरीं, एक बाप की बेटी।

—सूरसागर, [illegible] पद सं० [illegible], पृ० [illegible]।

३. [illegible]
[illegible]
[illegible]

—सूरसागर, [illegible]।

सबध मे 'कवियो के परिचय' नामक अध्याय मे लिखा गया है। कुचन नप्यार ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा इसकी रचना की। भागवत की कथा के आधार पर ही इसकी रचना की गई है। एक ब्राह्मण अपने मृत बालक को लेकर श्रीकृष्ण के पास जाते हैं और उनकी बडी निन्दा करते हैं। निन्दा-वचनो से कवि की मौलिकता प्रदर्शित होती है। वे कहते हैं—मेरे दु खो के सबध मे तू कैसे जान सकता है? तेरी हज़ारो स्त्रिया हैं और रोज कम से कम पचास या साठ बच्चे पैदा होते हैं। अरे, कैसे तू निस्सन्तान व्यक्तियो का दु ख समझ सकता है। यदि तू और भी आगे बढे तो मैं तुझे शाप दे दूगा। वशी बजाने, सखियो के साथ चलने, गोपियो के वस्त्रो की चोरी करने और स्त्रियो को धोखा देने मे तू समर्थ है। हाय भगवान्! तुझे यहा से भगाने के लिए कोई नही है?[1] यह वचन सुनकर कृष्ण निरुत्तर हो बैठे। तब अर्जुन गरम हो उठे और ब्राह्मण के भावी बालक की रक्षा करने का वचन दिया। ब्राह्मण ने उन्हे भी खूब बुरा-भला कहा। अत मे वह शान्त होकर चला गया। शेष कथाए भागवत के अनुसार हैं। अर्जुन अग्नि मे कूदने के लिए खडे हैं। लोग उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। उसका चित्रण बहुत सुन्दर है। विष्णु-लोक का वर्णन और ब्राह्मण बालको की चेष्टाए आदि प्रसग बडी कुशलता से नप्यार ने लिखे हैं। इट्टिरारिश्श मेनोन नामक महाशय ने प्रस्तुत कथा कथकलि के रूप मे वर्णनप्रधान शैली मे लिखी है। कहा जाता है कि उनकी उत्तम कृतियो से प्रसन्न होकर राजा ने बहुत-सी ज़मीनें जागीर मे दी थी।

कृष्ण और अर्जुन का सवाद सरस है। कृष्ण पूछते हैं—हे मेरे मित्र, स्वागत है। तेरा मुखपकज देखकर मैं धन्य हो गया हू। आज मेरे लिए पुण्यदिन है। धीर, सुकृती, विनयशील उदारधर्म पुत्र और धीर-वीर भीम कुशल से रहते हैं कि नही? तुम्हारे गुण-सपन्न छोटे भाई नकुल, सहदेव कैसे हैं? अर्जुन उत्तर देते हैं—नाथ! हम आपके चरण-सेवक हैं। हमें कोई कष्ट हो सकता है? नि सशय हम सब आनद से रहते हैं। हे कमल-नयन, आपके पैरो पडता हू। कृष्ण फिर भी कहते हैं—कुरुकुलवशावतस! तुम मेरे पास सदा रहो। नलिनी के दल के मध्य मे शोभित जलबिन्दु के समान क्षणभगुर नरजन्म मे

---

१ पार परवशमा मेन पीइकल नेर पोक्काय तीन्नु निनक्कु
× × ×
कण्टातपतु मरपतु भोर दिन मुण्डाकुन्नु निनक्कु सुतनमार
कोण्टाटिक्कोण्टनेर परिचोटु कण्डु रमिच्चु कैकलिलानिक
कुण्ठन तान्नुं वमिन्नीटु वैकुण्ठा निन्नुटे नाट्य कोल्ला
× × ×
नाट्टिनिर नोरो गोष्ठिकल काटट् निन्ने आट्टिकल
वानुमो नाट्टिलारमिल्ललो
—ओट्टन तुल्लल मनाल गोपालम्, पृ० ३६५।

कोई सुख की वस्तु है तो वह मित्रों के साथ रहना है।[1] यदि वैकुण्ठ का वर्णन यों करते हैं—अरे विजय ! तुम महाविष्णु का मन्दिर देखो। क्षीर सागर के मध्य में यह अद्‌भुत लोक स्थित है। ब्रह्मलोक और देवलोक को मात कराने वाला यही वैकुण्ठ है। यह सूर्य की किरणों के समान शोभित रत्नसमूह की शोभा से युक्त है। लक्ष्मीदेवी का केलिमंदिर देखो। जहां दुःख का नाम-निशान तक नहीं। सुख-निमग्न सकल जनों को स्फूर्ति देने वाली शीतल सुगंधित वायु वह प्रदान करता है। कान्त कनकमणि हरित वन है। ब्रह्मा, इन्द्र देव आदि भी यहां तक नहीं पहुंच सकते। बाल सूर्य के समान शोभित किरीट मकराकृति कुण्डल, चारों हाथ, कंबु समान गला, छाती पर मालाएं, श्यामल शरीर और पीताम्बर आदि से युक्त विष्णु को तुम देखो। उनके चरण सरोज के समान हैं।[2] इस प्रकार के वर्णनप्रधान कई पद इसमें पाए जाते हैं।

---

१ श्रीकृष्ण श्रीमन ! माते विजय श्रीमन
सकल गुण धामन, स्वागतमो सुधामन
सोमन मिगण्भिगलन वक्ष्ड्रॊट्ट
× × ×
द्यिनापि न कुम्वर
अर्जुन नाथ भनन्नरम्म दामग मिज्ज्नाना
मेना विनु यम्नो बाधा ?
× × ×
मुरगुरेश गिरिगादि वन्द्य !
श्री कुम्कनुटे मुकुटे मुक्कि रत्नमे नंदिर
× × ×
न्नोर सुग मेन्नु सुन्दा मद् मुग्गुर
—[illegible], म० के० गोपाल पिल्लै, पृ० ३४५।

२ [illegible] विजय [illegible] मोहान
[illegible] टे मन्दिर
दुग्धनदस्न्नाग्नु परिलस्य पीयूषाब्धि
× × ×
[illegible] नदुविगेलरुग मर लोकं
× × ×
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
× × ×
[illegible]
—[illegible], पृ० [illegible]।

'कृष्णार्जुन-युद्ध' या 'कृष्णार्जुन-विजय' नप्यार की मौलिक रचना है। एक दिन शाम के समय श्री कृष्ण हाथ मे पानी लेकर जप कर रहे थे। उसी समय आकाशमार्ग से एक घमण्डी गधर्व घोडे पर सवार होकर जा रहा था। सयोग मे उसके घोडे के मुह से थूक भगवान् कृष्ण के हाथ मे गिर गया। जल अशुद्ध हो गया। उसे फेककर ऊपर की ओर देखा तो मालूम हुआ इन्द्र का मित्र गय किसीकी परवाह किए बिना घोडे को दौडाता हुआ जा रहा है। आपे से बाहर होकर श्री कृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि जिस अहकारी गन्धर्व के कारण मेरे जपकार्य मे भग हुआ उसे बिना मारे मै दम नही लूगा। देखू, कौन इसकी रक्षा करेगा! भगवान् की कठोर प्रतिज्ञा सुनकर गय हाफता हुए इन्द्र के पास पहुचा और उनसे रक्षा करने की कातर प्रार्थना की। जब इन्द्र ने जान लिया कि कृष्ण उसके शत्रु है तब उन्होने अपनी लाचारी प्रकट की। जय ने ब्रह्मा और शिव आदि के पास जाकर अपनी विपत्ति की कथा सुनाई। उन्होने भी अपनी-अपनी असमर्थता प्रकट की। क्योकि वे भगवान् से सामना करके पहले कई बार पराजित हो चुके थे।

लाचार होकर गय इधर-उधर घूमने फिरने लगा। उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि उसकी मृत्यु पास आ गई है। उसी समय नारद मुनि उसी ओर आए। उनसे अपनी कहानी गय ने सुनाई। नारद ने मन मे सोचा 'एक अच्छा तमाशा आ गया है। मै इस गन्धर्व द्वारा एक ऐसा कार्य करा लूगा जिससे कृष्ण और अर्जुन मे भयकर युद्ध हो।' गय से उन्होने कहा, 'अरे दु ख मत करो। तुम द्वैतवन मे जाओ। वहा अर्जुन से कसम खिलाओ। वहा अर्जुन अपने भाइयो के साथ रहता है। कसम खिलाने के बाद अपनी कथा सुनाओ। यदि वह वचन देगा तो तुम्हारे प्राण बच जाएगे।'

गय नारद के आदेशानुसार पाण्डवो के पास पहुचा और 'हाय-हाय' करके चिल्लाकर उसने वचन ले लिया। अन्त मे जब उनको मालूम हुआ कि पाण्डवो के रक्षक श्रीकृष्ण ही गन्धर्व के भक्षक है तो उनके दु ख का ठिकाना नही रहा। उस समय उन लोगो की अवस्था का वर्णन करते हुए भावुक कवि कहते है—जय के वचन सुनते ही अर्जुन स्तम्भित रह गए। काटो तो खून नही, उनके हाथ से तीर कमान गिर गया। धर्म-पुत्र बेहोश होकर गिर पडे। भीम अस्तप्रज्ञ हो गए। नकुल और सहदेव चिल्लाने लगे। द्रौपदी भी टाहे मारकर रोने लगी।[1] अन्त मे वचन पर अटल रहना चाहिए, यह

---

१ एन्नु गयोक्तिकन्न केट्टु किरीटि ओन्नु नटुडि्ड निलत्तु पतिच्चान
विल्लु शरु पोयितु दूरे उत्तामडङ्ङुमोट्टु कुरञ्ञु
जेष्ठनाकिय धमात्मजनु नेट्टि विरच्चु धरित्रियिल वाणान
भीमनु मोन्नु पकर्न्नितु भाव कोमलनाकिय नकुलन तानु
मह्दवनुमनि माहममोटे हा! हा! येन्नु निनाद
द्रोपद तानु मुरविट्टि दट्टि दव विरोध वन्मेन्नोत्तु
शुद्धनाकिय धमात्मजनु बुद्धि पकर्न्नु करञ्ञु तुटङ्ङि
—ओट्टन्तुल्लल श्रीकृष्णार्जुनविजय म० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ७७७।

निश्चय किया गया। इसी समय नारद वहाँ आकर उनको सान्त्वना देते हैं। फिर वे सुयोधन, कर्ण, द्रोण, भीष्म आदि के पास जाकर पाण्डवों की कथा सुनाते हैं। वे सब अर्जुन की सहायता करने के लिए निकले। दुर्योधन का विचार था, यदि अर्जुन और श्रीकृष्ण में युद्ध छिड़ जाएगा तो अर्जुन अवश्य मारे जाएंगे जिससे वह निष्कण्टक राज्य कर सकेगा।

इधर श्री कृष्ण गय की खोज में हैं। नारद ने कहा कि गय की रक्षा करने का भार अर्जुन ने अपने ऊपर ले लिया है, युद्ध करना व्यर्थ है। ये वचन सुनते ही कृष्ण की आँखें लाल हो गईं। उसी दम अपनी बहन सुभद्रा को अर्जुन के पास भेजा और कहलाया कि उनके लिए इस कार्य से विरत होना अच्छा है। दुःखकातरा सुभद्रा अपने पतिदेव के पास जाकर अपने भाई का सन्देश सुना देती है और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करती है कि कृष्ण से युद्ध करना हम सबके लिए नाशकारक है। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा भंग करना नहीं स्वीकार करते। भयंकर युद्ध होता है। युद्ध का सजीव वर्णन बड़े विस्तार से कवि ने किया है। परिणाम यह निकला कि कृष्ण के अस्त्रों से क्षत-विक्षत होकर अर्जुन बेहोश हो जाते हैं। उसी दम भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु आदि से भयंकर युद्ध होता है। जब अर्जुन की बेहोशी दूर हुई तो उन्होंने अपना पाशुपतास्त्र प्रयुक्त किया। कृष्ण ने भी अपने चक्रास्त्र का प्रयोग किया। सब कहीं अग्नि ही अग्नि दिखाई पड़ने लगी। इन्द्र और ब्रह्मा सारे जगत् का विनाश होता हुआ देखकर बड़े चिंतित हुए। वे घबराते हुए उन दोनों से प्रार्थना करने लगे कि यदि युद्ध नहीं बन्द किया जाएगा तो सृष्टि नष्ट हो जाएगी। तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा—तुम गय को मुझे सौंप दो। अर्जुन ने नहीं माना। ब्रह्मा अर्जुन से बोले—तुम निमिष भर अपने अस्त्र बन्द करके रखो। मैं गय को सुरक्षित रखूंगा। जब अर्जुन ने अस्त्र बन्द कर ली तो कृष्ण ने गय को अपने चक्र से मार डाला और अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। उसी दम ब्रह्मा ने उसे जिलाकर अर्जुन को सौंप दिया और कहा, 'अरे! अर्जुन अब तुम्हारा गय अमर हो गया है और कोई भी उसे मार न सकेगा।' इस प्रकार कृष्ण और अर्जुन में संधि हुई। यह देखकर सब गण निराश होकर लौटे। दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ। धर्मराज आदि ने कृष्ण के पैरों पर पड़कर क्षमा मांगी। नारद ने आकर उनको आशीर्वाद दिया। इस काव्य की वीर तथा प्रकृत्यात्मक शैली की प्रशंसा सभी साहित्य प्रेमी मुक्त कंठ से करते हैं। यह वीर तथा करुण-रस-प्रधान है।

इसी कथा के आधार पर उद्दिमालू नामक एक ईसाई ने [illegible] में एक सुन्दर रचना की है। उसमें शृंगार-रस [illegible] पद मिलते हैं। [illegible] वीर और [illegible] के पदों की कमी नहीं। इन पदों से [illegible] में लिखा गया है कि श्री कृष्ण बलराम और रुक्मिणी [illegible] [illegible] में [illegible] से [illegible]। [illegible] उनके दर्शन करने [illegible]। [illegible] और [illegible] से [illegible]। यह प्रसंग [illegible] है। श्री कृष्ण [illegible] [illegible] इसी प्रकार [illegible] है। [illegible] कृष्ण के [illegible]

पर जो काले धब्बे दिखाई पडे उन्हे देखकर वह कहती है—शरारत करने के कारण रस्सी से मैने अपने नन्हे का शरीर वाध लिया था। उसीसे तो यह धब्बा नही पड गया ?[1] वह आगे कहती है—जिसे मै अपनी गोद मे विठाकर दुलारती थी और उस समय जो मेरा मुह देखकर मुस्कराता था, उसका मुख मै देख लू।[2]

ऐसा कहकर वह कृष्ण का चुवन करने लगती है। फिर कहती है कि मुस्कराते हुए मेरी गोद मे वैठकर पयपान करते समय जिन हाथो ने मेरी छाती पर हलकी मार मारी वे हाथ तो मै देखू।[3] यह कहकर उनके कोमल हाथो पर माता अपना हाथ फेरने लगी। फिर कहा कि मेरे आचल पर जिन पैरो से कीचड लगा था वे पैर मै देखू।[4] ऐसा कहकर उसने उनपर हाथ फेरा। यह दृश्य सचमुच वडा मर्मस्पर्शी है।

तीर्थों मे स्नान करने के वाद भगवान् द्वारिका लौटे और कलत्र-पुत्र समेत वडे आनद से दिन विताने लगे। इसी वीच उनके कई पुत्र तथा पौत्र हुए। अपने ऐश्वर्य पर उन्मत्त होकर यादवगण परस्पर झगडने लगे और एक दिन आपस मे घोर युद्ध हुआ। उसमे सव मारे गए। आत्मीय जनो की यह दशा देखकर वलराम ने सोचा कि शरीर का त्याग करना ही अच्छा है। इस विचार से सागर के किनारे जाकर उन्होने सदा के लिए समाधि ले ली। श्री कृष्ण सवसे विदा लेकर एक घने जगल मे गए और समाधिस्थ हुए। उनके पैरों का हिलना देखकर एक व्याध ने पक्षी समझकर उनपर तीर मारा। अन्त मे उसको मालूम हुआ कि मैने कृष्ण भगवान् को तीर से मारा। उसने वडा पश्चात्ताप किया। भगवान् कृष्ण ने उसे सात्वना देकर अपना पचभूतमय शरीर छोड दिया। अपने प्यारे पुत्र के शरीर-त्याग की वार्ता सुनकर देवकी का विलाप अत्यन्त हृदयस्पर्शी भाषा मे कृष्णगाथाकार ने लिखा है। वे कहते हैं—वारह सूर्यों को एकसाथ मिलाकर उसे प्रलयाग्नि

---

१ पारिच्चु निन्नुल्ल पाशायम चेय्कयाल
पाशत्ते कोण्डु पिटिच्चु केट्टि
तिण्ण वलिच्चु मुरविक ञान निलक्कया
लुण्णिप्पूमेनियिल पुण्णल्लल्लो ?

२ रान्मटि तन्निल ञान नन्नायि वच्चु को
ण्टेन्मकन वाज्केन्नु चोल्लुन्नेर
एन्मुख नोक्काट्टु पुन्चिरि तूकुन्न
नन्मुख काण्ट्टे येन्नु चोल्लि

३ नमयु तूकि नि नेन्मटि तन्निलाय
नन्मुल युण्डु चिरिक्कुन्नेर
तिण्ण मेन्मारि ललच्चु नि नाट्टुन्नो
रण्णि कके काण्ट्टे येन्नु चोल्लि

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५५८।

४ एनुटे चेलयिल चेरनेर्च्चीटनो
रुण्णि वकालेड्टु चोल्लेन्नु चोल्लि

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५५८।

मे डाल दे, उसके बाद कल्पान्त काल की प्रबल आंधी ने उस अग्नि को और भी प्रज्ज्वलित कर दे ?—ऐसी अग्नि से तपाए हुए लोहे के टुकडे की गरमी देवकी की दुःखाग्नि के सामने क्या चीज है !¹ इस कथन से देवकी के दुःख का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रतिभाशाली कवि ही ऐसी कल्पना कर सकते हैं।

कृष्ण की कथा सुनकर पाडव लोग अत्यन्त दुःखी हुए और तुरन्त धर्मपुत्र ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया। उनका अनुकरण दूसरे भाइयो और द्रौपदी ने किया। जाते-जाते एक-एक करके वे मरने लगे। धर्मपुत्र ही रह गए। तब एक देवदूत विमान लेकर वहा आया और उनसे उसमे चढने की प्रार्थना की। तब धर्मपुत्र बोले—जब मै निकला था तब मेरे भाई, स्त्री और एक कुत्ता साथ था। अब मै और कुत्ता केवल दो ही बचे है। उस कुत्ते को बिना साथ लिए मै कही नही जाऊगा। कुत्ते का नाम सुनते ही जो देवदूत उनको लेने के लिए आए थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगे। किन्तु धर्मपुत्र अपनी जिद पर अटल रहे और कहा—यह कुत्ता सबसे पहले मेरी शरण मे आया था। अत मेरे चढने से पहले इसे विमान पर चढाना चाहिए।² इस वाक्य से आश्रितो की रक्षा करना हमारा धर्म है, यह आशय कवि ने समझाया है।

कृष्णगाथा मे कवि ने यह पद लिखकर अपनी मस्त कृति समाप्त करते हुए कहा है—पाडव लोग स्वर्ग मे जाकर विविध सुखो का भोग कर दिन बिताने लगे।³ अन्त मे एक स्तुतिगीत है जिसमे श्री कृष्ण के अवतारो की कथाए वर्णित है। मूल कथा के आधार पर अपनी-अपनी प्रतिभा तथा कल्पनाशक्ति के अनुसार दोनो भाषाओ के कवियो ने कविताए लिखी है।

---

१. [illegible]

× × ×

[illegible]

—कृष्ण[illegible], पृ० [illegible]।

२. [illegible]

—कृष्ण[illegible], पृ० [illegible]।

३. [illegible]

—कृष्ण[illegible], पृ० [illegible]।

१ विधावता भागवते परा ग—राजराज वर्मा द्वारा लिखित अप्रकाशित निबन्ध से।

छठा परिच्छेद

काव्य-कला का तुलनात्मक अध्ययन

रस

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्ण-काव्य रस-सागर है। जिस काव्य में रस नहीं वह शब्दाडम्बर-मात्र है। रस काव्य की आत्मा है। इन दोनों भाषाओं के ग्रन्थों के रसप्रधान भागों का उद्धरण देना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

मध्ययुग के हिन्दी और मलयालम भाषाओं के साहित्य में केवल भक्ति की धारा ही प्रधान नहीं थी, इस समय दो अन्य धाराएं भी बल प्राप्त कर चुकी थीं। इनका संबंध धर्म से नहीं, साहित्य से था। ये शृंगार रस और रीति की धाराएं थीं जिन्होंने भक्तिकाल के बाद प्राधान्य प्राप्त कर लिया था और जिनके फलस्वरूप रीतिकाल का प्रादुर्भाव हुआ। सूर, परमानददास, एजुत्तच्छन, कुञ्चन नम्प्यार आदि कवियों के काव्यविषय (कृष्णभक्ति) को इन साहित्य-धाराओं और उनके अतिरिक्त युग की सामान्य प्रवृत्ति (विलासप्रियता और शृंगारप्रियता) ने भी प्रभावित किया। यही कारण है कि सूर जैसे कृष्ण-भक्त के साहित्य के भावपक्ष में हमें भक्ति और शृंगार के दर्शन होते हैं और कला-पक्ष में रीति के। हिन्दी के सूर और मलयालम के कृष्णगाथाकार के साहित्य पर, दास्य और आत्मनिवेदन और मधुर-भक्ति आदि के अनेक प्रभाव पड़े हैं।

कृष्णकाव्यों में वात्सल्य-रस-प्रधान कविताएं लिखने में सूरदास और परमानन्ददास का स्थान बेजोड़ है। बाल्यकाल की चेष्टाओं का सूक्ष्म निरीक्षण इन्होंने किया है। मलयालम के कवि भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे परन्तु हिन्दी के कवियों ने वात्सल्य रस-पूर्ण अधिक पद लिखे हैं और वे अधिक प्रभावशाली हैं।

वात्सल्य रस

वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल-स्नेह होता है और उसका आलंबन (विभाव) बालक या शिशु है। उसके उद्दीपन (विभाव) के अन्तर्गत बालक की चेष्टाएं जैसे तोतली बोली, गिरते-पड़ते चलना, हठ करना आदि उसकी क्रीड़ा, खिलना, उसकी बोली उसके कार्य इत्यादि आ जाते हैं।

अनुभाव हंसना, पुलकित होना, सिर से सूंघना, हृदय से लगाना, चुम्बन, गोद में

लेना, पालने मे झुलाना, बाते कराना, खेलना, रोना, विलाप करना, प्यार करना आदि है। सचारी हर्ष, आवेग, जडता, मोह, शका, चिन्ता, विषाद, गर्व, उन्माद, ग्लानि, औत्सुक्य आदि है। शृगार की भाति वात्सल्य रस के भी दो पक्ष है—सयोग और वियोग।

उदाहरण मा यशोदा अपने प्यारे पुत्र को पालने मे लिटाकर झुला रही है, बीच मे वे गा रही है, थपकी दे रही है। उसका सुन्दर चित्रण सूरदास यो करते है

सयोग-वात्सल्य

हिन्दी के उदाहरण—

राग धनाश्री

१ जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ, निदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै॥[1]

मा अपने बच्चे को किस प्रकार चलना सिखाती है, मा के हाथ पकडकर बच्चे का चलना, कभी-कभी गिर पडना, अपने बच्चे को कुशल रखने की प्रार्थना आदि का सूरदास वर्णन करते है

राग बिलावल

२ सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुँक सुदर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया।[2]

सूरदास द्वारा वर्णित कृष्ण का बाल-लीला-वर्णन तो वात्सल्य रस से ओतप्रोत है

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं-मनहिं रिझावत।
बाह उठाइ काजरी धौरी गैयनि टेरि बुलावत।

---

१ सूरसागर—खण्ड एक, सभा सस्करण, पद स० ६६१, पृ० २७६।
२ सूरसागर—खण्ड एक, सभा सस्करण, पद स० ७३३, पृ० ३००।

कबहुंक बाबा नंद पुकारत, कबहुंक घर में आवत।
माखन तनक आपनें कर लै, तनक बदन में नावत।
कबहुं चितै प्रतिबिंब खंभ में, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूरस्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत ॥[1]

ज्यों-ज्यों कृष्ण की आयु बढ़ने लगी त्यों-त्यों उनकी चालाकी और चतुरता भी बढ़ गई। माखनचोरी के लिए एक गोपी के घर में कृष्ण ने घुसकर दही में हाथ डाला कि उस गोपी ने पकड़ लिया। गोपी के साथ कृष्ण का वाद-विवाद बहुत स्वाभाविक है।

राग गौरी

स्याम कहा चाहत से डोलत।
पूछें तें तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत।
पाए आइ अकेले घर में दधि भाजन में हाथ।
अब तुम काको नाउ लेउगे, नाहिन कोऊ साथ।
मैं जान्यौ यह मेरो घर है, ता धोखें मैं आयो।
देखत हौं गोरस में चींटी काढ़न कौं कर नायो।
सुनि मृदु बचन, निरखि मुख सोभा, ग्वालिनि मुरि मुसुकानी।
सूर स्याम तुम हौ अति नागर बात तिहारी जानी ॥[2]

एक दिन राम और कृष्ण में झगड़ा हो गया। तब राम ने कहा, तुम्हें तो यशोदा ने दाई को दो पैसे देकर खरीद लिया। इसे सुनते ही कृष्ण रोते-तनपते मां के पास गए और शिकायत करने लगे :

राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हो, तू जसुमति कब जायो ?
कहा करौं इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात।
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥[3]

इस पद के अंतिम चरण मे माता के हृदय की अभिलाषा बडे सुन्दर ढग से [illegible] हुई है। कृष्ण की तोतली बाते और शिकायते उद्दीपन का काम करती है। यशोदा का खीझना और गोधन की कसम खाकर कृष्ण को अपना पुत्र कहना अनुभाव है। सूरदास के समान ही परमानददास भी वात्सल्य रस पर सुन्दर पद लिखने मे सिद्धहस्त है। एक दिन एक काछिन नन्द के घर बेर बेचने आई। उसका नाम सुनते ही कृष्ण अजलि मे सूखा धान भरकर ठुमुक-ठुमुककर दौडते चले आए। माता यशोदा ने अपने प्यारे पुत्र को गोद मे लेकर चुबन कर लिया। कृष्ण को जब बेर मिले तब वे फूले न समाए। उसका चित्रण परमानन्ददास देते है

राग सारग

फोउ मैया बेर बेचन आई
सुनत ही टेरि नद रावरि मे लई भीतर बुलाई
सूकत धान परे आगन में कर अजुली बनाई
ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रंग गोपी जन बलि जाई
लीए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बत न अघाई
परमानंद स्वामी आनन्दे बहुत बेरि जब पाई।[1]

कृष्ण के उत्पातो से तग आकर गोपिया यशोदा से शिकायत करती है। उसे सुनकर यशोदा अपने पुत्र का पक्ष लेकर उनको सात्वना देती है। यशोदा के वचनो मे माता का प्रेम स्पष्ट परिलक्षित होता है। उसका चित्र बडी सुन्दरता से परमानददास खीचते है

राग सारग

छोटा रचक माखन खायौ
काहे कोह रहि होत ग्वालिनी सब व्रज गाजि हलायौ
जाको जितनो तुम जानति हो दूनो मोपे लेहु
मेरो कान्ह इहै इकलौती सबै असीस मिलि देहु
कमल नैन मेरी अँखियन तारो कुलदीपकु व्रजगेहु
परमानन्द कहति नंदरानी सुत प्रति अधिक सनेहु।[2]

मलयालम के उदाहरण—

दधि को मथते समय मक्खन पाने के प्रलोभन मे पडकर बालक कृष्ण मा के पास बैठ जाते है। और उनके शरीर पर दही की बूदे पड जाती है। उसकी परवाह न करके कृष्ण अपनी मा के निकट बैठे रहते है। उसका चित्रण पून्तानम नपूतिरि देते है

मायत्तिनाल मानुषनाय नायन
मोहत्तिनाल वेण्ण लभिप्पतिन्नाय

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद स० २७, अष्टछाप, पृ० ७०१।
२ डा० गुप्त के परमानन्ददास पद-सग्रह से, पद न० ८७, अष्टछाप, पृ० ७०४।

मानिच्चु मातावोटु चेन्नु नन्नाय
मारत्तु तेरत्तु ल्लियुमे ट्टिटन्नान।[1]

कृष्ण आइने में अपना रूप देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं और वह रूप देख उसे अपना साथी समझकर वे उससे आलिंगन करते हैं

कण्णटियिल कण्डुकलाय रम्य
कणिणल तेलिञ्ञोरु मुरारविंद
चङ्डाति येन्निट्टु चिरिच्चु कण्णन
कण्णटि पूणुन्नतु कण्डिताय्[2]

मलयालम भाषा के एक अज्ञात कवि ने कृष्ण की लीलाओं का चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया है।

कण्णनन्नेर कण्णन चिरट्टयिल
मण्णु कोरि निरच्चु विटिच्चुटन
कण्णु कुत्तित्तु लच्चाननिल कूटे
मण्णु वीजुन्न कण्डु रसिक्कयु
पूञ्चिच्चोरु कयिक्लु मुण्टाक्कि
घोयिच्चोरो सग्र कलिक्कयु
पच्च प्पोलकलकोण्टु पलतर
पिच्च युण्डाकि पट्ट तिरियक्कयु
मुट्टत्तोरो रूप वरक्कयु
पट्टत्ताणुटन चाटि मकनिरक्कयु
मुट्ट तान चेन्नोरेटत्तु ओलिक्कयु
कोट्टप्पाल तिरिञ्ञोट्टु नेरमोरेटत्तिरिक्कयु
उण्णि तानोरु मद्दल चेण्डयु
उण्णित्तण्डकोण्डुण्डाकि मेन्नपे
कोट्टित्ताने ललयु कुलुयिच पण्णिट्टिटल तोरं नटन्नु कलिक्कयु
मनयायिट्टोरत्तने ककलिपच्चु
तानतिन्मेल करेरि इरिक्कयु
आनप्पायनायिट्टोर वालण्न
ताग मे योरनेन्नु नटिक्कयु
अञ्चि तन्नियिरुटन्नु पन्निरकदाल
पूञ्चिपान्नोरोतिकार मुत्तु

1. [illegible]

पोन्नुटञ्ञाणु पोन्निन्मणि कलु
मिन्नु तालियु मालयु शोलयु
एन्नितेल्लामञ्जि किजिञ्ञुटन
तम्मिल चुट्टि प्पिण्णञ्ञतु काणकयाल
अम्मवेगेन चेट्टदुत्तादराल
अम्मिञ्ञयु फोदुत्तु पतुक्कवे
नीलक्कार कून्तल केट्टि युरप्पिच्चु
पीलि नालञ्चेदुत्तु तिरुकिच्चु
वाल कृष्णन्टे नल्ल तिरुमेनि
शील कोण्डु तुटच्चु विलड्डिच्चु
किडिङणि मणि मोतिरमेन्निव
मगियोटे यणियिच्चेशोदयु
अडिङनतन्ने रामनेयु तथा
मगलागि चमयिचचु चोल्लिनाल ।[1]

—अर्थात् कान्ह खेलते है, साथ गोप-बालक भी है। उन्होने नारियल का छिलका लेकर उसमे मिट्टी भरी और एक सुपिर बनाया सुपिर से मिट्टी जाते देखकर सब हस पडते है। फिर कृष्ण मिट्टी को भात और शाक-भाजी कहकर सबको भोजन के लिए आमन्त्रित करते है।

केले के पौधे की छाल से विविध प्रकार के खिलौने बनाकर वे खेलते है और आगन मे तस्वीर खीचते है। कभी-कभी वे उछलते-कूदते है और कभी भागते है। तभी दूसरे साथी उन्हे ढूढ लेते है। कभी वे भ्रमण करते है। भ्रमण करते समय सिर मे चक्कर आने के कारण बैठते है, कभी स्वय ढोल बजाते-बजाते घर-घर जाते है। कभी अपने साथी के शरीर को हाथी के समान झुकाकर उसपर बैठते है और अपने को बडा वीर मानते है। पृथ्वी पर लोटने के कारण, मोरपख, जो बालो पर खोसे हुए है, कमरबन्द और उसपर लगाई छोटी घटिकाए, पीताम्बर, छाती पर की मालाए आदि शिथिल पडते देखकर माता यशोदा दौडकर आई। उन्हे गोद मे उठा लिया धीरे-धीरे पयपान कराया, मोरपख सिर पर ठीक से लगाया, कपडे से शरीर की धूल को दूर किया, अगूठी आदि गहने अच्छी तरह पहनाये। बलराम को भी उसी प्रकार धूल पोछकर सुन्दर वस्त्र तथा आभूपण पहनाए।

इसमे कृष्ण का खेलना, मारे-मारे फिरना, चक्कर खाकर गिर पडना आदि उद्दीपन विभाव है। गोद मे उठाना, चुबन करना, आभूपण पहनाना आदि अनुभाव है।

१ श्रीकृष्णविलासम्—स० डा० अच्युत मैनोन।

वियोग-वात्सल्य

हिन्दी के उदाहरण—

अपने प्यारे पुत्र कृष्ण के विरह से व्याकुल यशोदा का विलाप वात्सल्य रस के वियोग-पक्ष का सुन्दर उदाहरण है। सूर लिखते हैं

राग सोरठ

जसोदा बार बार यों भाषै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो, चलत गुपालहिं राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौं, नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौं, काल रूप ह्वै आयौ।
वरु यह गोधन हरौ कंस सब, मोहिं बंदि लै मेलौ।
इतनोई सुख कमल नयन मेरी अँखियनि आगे खेलौ।
बासर वदन विलोकत जीवों, निसि निज अंकम लाऊँ।
तिहिं बिछुरत जौ जियौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ।
कमलनयन गुन टेरत टेरत, अधर वदन कुम्हिलानी।
सूर कहा लगि प्रगटि जनाऊँ, दुखित नंद जु की रानी॥[1]

यद्यपि बहुत से लोग सान्त्वना देते हैं तो भी पुत्रविरह से पीड़ित यशोदा के दुःख का अंत नहीं। उसके सम्बन्ध में सूर लिखते हैं

राग बिलावल

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।
निसि बासर छतिया लै लाऊँ, बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वैहैं, मोहन मोद खवाऊँ।
जा कारन मुनि ध्यान धरैं, सिव अंग विभूति लगावैं।
सो बालक-लीला धरि गोकुल-ऊखल साथ बँधावैं।
बिदरत नहीं बज्र को हिरदै, हरि-वियोग क्यों सहिऐ।
सूरदास प्रभु कमलनयन बिनु कौने बिधि ब्रज रहिऐ॥[2]

वात्सल्य-रस प्रधान अन्य पद सूरसागर में मिलते हैं:

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।
प्रात काल उठि माखन रोटी को बिनु माँगे दैहै।
को मेरे बा कान्ह कुँवर को, छिनु छिनु अंकम लैहै।

---

१. सूरसागर—ना० प्र० स० [illegible]
२. सूरसागर—ना० प्र० स० [illegible]

संयोग और विप्रलंभ दो पक्ष होते है। हिन्दी भाषा के सूर जैसे सहृदय कवियों ने दोनों प्रकार के शृंगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक मे विचरण करने लगता है।

संभोग शृंगार

हिन्दी के उदाहरण--

आगन मे माता, पिता, स्वजन, पारिवारिक बन्धु आदि विद्यमान है। लोक-लज्जा और वेदमर्यादा के प्रतीहार और द्वारपाल पहरा दे रहे है। पलक रूपी कपाट बन्द कर कुलप्रतिष्ठा की ताली मे धैर्य रूपी ताला भी द्वार पर लगा दिया है। पर अन्तस्तल के गुह्य से गुह्य कोने मे छिपा हुआ राधा का मन घन कृष्ण ने नेत्रमार्ग से उर-पुर मे प्रविष्ट होकर चुरा ही तो लिया! चोर-जार-शिखामणि कृष्ण की इस अद्भुत चोरी का चित्रण सूर कितनी विचित्रता के साथ करते है--

राग अडानौ

मेरौ मन गोपाल हरचौ री।
चितवत हीं उर पैठि नैन मग, ना जानौं धौं कहा करचौ री।
मातु पिता पति बंधु सजन जन, सखि आँगन सब भवन भरचौ री।
लोक-वेद प्रतिहार, पहरुआ, तिनहू पै राख्यौ न परचौ री।
धर्म धीर, कुलकानि कुँजी करि, तिहिं तारौ दै, दूरि धरचौ री।
पलक कपाट कठिन उर अंतर, इतेहुँ जतन कछुवै न सरचौ री।
बुधि विवेक बल सहित सँच्यौ पचि, सुधन अटल कबहू न टरचौ री।
लियौ चुराइ चितै चित सजनी, सूर सोच तनु जात जरचौ री॥[1]

राधा और कृष्ण के मिलन पर सूर लिखते है--

राग कन्हरौ

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपनै उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया।
उपमा काहि देउ, को लायक मन्मथ कोटि वारनै करिया।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद कुँवर वृषभानु कुवरिया॥[2]

कृष्ण का अपूर्व सौंदर्य और वंशी की मीठी ध्वनि से गोपिया उनकी ओर आकर्षित हो जाती है। एक गोपी का वचन है

---

१ सूरसागर, खंड दो, सभा संस्करण, पद सं० २८६०, पृ० ९००।
२ सूरसागर, खंड एक, पद सं० १३०६, पृ० ५०१-५०२।

राग धनाश्री

भावे मोहि माधो बेनु बजावनि।
मदन गुपाल देखि हम रीझीं मोहन की मटकावनि।
कुंडल लोल कपोल लोल मधु लोचन चाव चलावनि।
कुंतल कुटिल मनोहर आनन मीठे बैन बुलावनि।
स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर कर अंग नचावनि।
परमानन्द ठगी नँद नंदन दसन मृदु मुसकावनि।[1]

प्रेम-परीक्षा के बाद कृष्ण को मालूम हुआ कि उनके प्रति गोपियों का प्रेम अटूट है। तब वे गोपियों के साथ प्रेम-लीला करने लगते हैं जिसका चित्रण नन्ददास के शब्दों में देखिए—

परिरंभन मुख चुंबन, कच कुच नीवी परसत
सरसत प्रेम अनंग रंग नवघन ज्यों बरसत।[1]

होली के दिन अपने पतिदेव कृष्ण के आगमन के अवसर पर मीरा उनके साथ होली खेलती है। उसके संबंध में वे स्वयं गाती हैं

राग होरी सिन्दूरा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे। टेक
बिनि करताल पखावज बाजै, अनहद की झनकार रे।
बिनि सुर राग छत्तीसूं गावै, रोम रोम रंग सार रे।
सील संतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घर के सब पट खोल दिए हैं, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आए, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार रे।[2]

मलयालम के उदाहरण

गोपियों की कातर प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण प्रकट होते हैं और उनके साथ वे रास-क्रीड़ा करते हैं। तब वहाँ मन्मथ का प्रभाव दिखाई देता। [illegible] काम-देव से पीड़ित हो गए। कृष्णगाथा में कवि गाते हैं —

[illegible]

अंचित मायोर पन्नु पुरत्तने
यन्चान्ते मेल्लने चायणकोण् तुन्टन
आनन ताजत्, मर्यत्तियुमनगोदु
वीनत कैविट्टु कूकि मकूकि
एणङ्ङल तङ्ङलित कूटि मकतन्नुं तग
प्राणङ्ङलाकिन कान्तयोर
कोम्बु कणेङनमित कजुत्तिलुगम्मीटटु
चुबिच्चु निन्नु तुटङ्ङीतेङ्ङु
वण्डिण्ड तङ्ङलत कूटि मकलन्निट्टु
मण्डि नटन्नोरो पूवुतोर
कान्तनु तानुमायोन्नतु कूटीट्टु
पून्तेन नुकर्न्नु तुटङ्ङीतेङ्ङु ।[1]

अर्थात् कबूतर अपनी कबूतरियों के साथ खेलने लगे, कबूतरी अपने प्रिय के पास जाकर अपनी चोंच प्रिय की चोंचों से मिलाने लगी और कूक मारने लगी। हरिणों ने हरिणियों के गले से अपनी सींगों को छुलाकर चुम्बन कर लिया और उनके पास वे खड़े हुए। भ्रमर भ्रमरियों से मिलकर फूलों का मधु चूसने लगे।

मलयालम-साहित्य के कथकलि ग्रन्थों में संभोग शृंगार के हजारों पद मिलते हैं। नरकासुर-वध के प्रसंग पर कार्तिक नक्षत्रजराम वर्मा लिखते हैं कृष्ण अपनी स्त्रियों से कहते हैं—

चंचलाक्षिमारे ! वरिक सामोद मे सविधे
पन्च शर केलि तन्निल वान्छ मे वलर्न्नीटुन्नु
फुल्ल कुन्द मन्दारादि पुष्प जालङ्ङल कण्डितो
कल्याण शीलमाराकु कामिनिमारे सरस
कण्ड तण्डलर तन्मधु वुण्डुटन मद कलर्न्नु
वणडुकल मुरणडीटुन्नु तण्डार शरन विलसुन्नु
मन्दमारुत किशोरन मन्द मन्द वन्नीटुन्नु
सुन्दर कोकिल नाद मन्देतर केलयुकमिल्ले
आनन चन्द्र सुधये सानन्द तरिक निङङल
सूनशर विलासङ्ङल मानिनिमारे चेय्येण।[2]

अर्थात् अरी चंचल नेत्रों वाली कामिनियो ! तुम लोग मेरे पास आओ। काम-केलि करने की बड़ी इच्छा हो रही है। कमल, माधवी, कुन्द आदि पुष्पों की ओर देखो। भ्रमर गुंजाते हुए मकरंद-पान करके उन्मत्त हो गए हैं। मन्द शीतल सुगंधित वायु वह

१ कृष्णगाथा—सं० राजराज वर्मा, पृष्ठ ७८।
२ आट्टकथा—सं० के० गोपाल पिल्ला, पृ० ६।

रही है। कोयल का सुहावना स्वर क्या तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता? तुम मुख-चन्द्रसुधा का पान मुझे कराओ।

वियोग-शृंगार

हिन्दी के उदाहरण

विप्रलम्भ-शृंगार के अनेक पद हिन्दी भाषा के कवियों ने लिखे हैं। अपने प्रिय कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा में एक गोपी आत्मविस्मृत रहती है। उसका चित्र सूर खींचते हैं :

राग सारंग

निरखति अंक स्याम सुन्दर के बार-बार लावति छाती
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम, स्याम जू की पाती
गोकुल बसत नंदनंदन के, कबहु बयारि न लागति ताती
अरु हम उती कहा कहैं ऊधो, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती
प्रभु के लाड़ बदति नहिं काहूँ, निसि दिन रसिक रास रस राती
प्रान नाथ तुम कबहिं मिलोगे, सूरदास प्रभु बाल सँघाती ।।[१]

संयोग के अवसर पर जो वस्तुएँ सुखदायी होती हैं वही वियोग के अवसर पर दुःखदायी होती हैं। अब वर्षा ऋतु और चाँदनी नायिका को दुःखद प्रतीत होती है। सूर लिखते हैं

राग सोरठ

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि-मुरि लहरैं खात ।।[२]

यहाँ काली रात्रि नायिका को काली नागिन के समान प्रतीत होती है। कृष्ण के विरह में पीड़ित गोपियाँ उनके गुणों का वर्णन करती रहती हैं .

राग सारंग

इहिं बिरियाँ बन तैं ब्रज आवत।
दूरिहिं तैं वह बेनु अधर धरि, बारंबार बजावत।
कबहुँक काहूँ भाँति चतुर चित, अति ऊँचे सुर गावत।
कबहुँक लै लै नाम मनोहर, धौरी धेनु बुलावत।

---

१. सूरसागर—[illegible]
२. सूरसागर—[illegible]

इहि विधि वचन सुनाइ स्याम घन मुरले मदन जगावत।
आगम सुख उपचार विरह-जुर, वासर ताप नसावत।
रचि रुचि प्रेम पियासे नैननि, क्रम क्रम बलहि बढ़ावत।
सूर सकल रस निधि सुंदर घन, आनँद प्रगट फगावत।[1]

एक नायिका के उद्वेग का चित्र सूर खींचते हैं

राग मलार

हमारे माई मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहि मानत, त्यों त्यों रटत खरे।
करि करि प्रगट पख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तें न बदत बिरहिनि कों, मोहन ढीठ करे।
को जानै काहे तें सजनी, हम सों रहत अरे।
सूरदास परदेस बसे हरि, ये बन तें न टरे।[2]

कृष्ण की चिन्ता करते-करते गोपिया व्याकुल होती हैं और जब उनको मालूम हुआ कि कृष्ण नही आए तब वे बेहोश होकर गिर पडती है। सूर लिखते हैं—

राग बिलावल

जबहि कह्यौ ये स्याम नहीं।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सुताही।
सपने की रजधानी ह्वै गइ, जो जागीं कछु नाहीं।
बार बार रथ ओर निहारहि स्याम बिना अकुलाहीं।
कहा आइ करिहैं ब्रज मोहन मिली कूबरी नारी।
सूर कहत सब ऊधौ आए, गईं काम-सर मारी॥[3]

सूरदास के समान परमानन्ददास ने विरह-विधुरा गोपियो की विविध दशाओ के सुन्दर तथा सरस चित्र खीचे हैं। परमानन्ददास की एक गोपी प्रिय से मिलने की अभिलाषा से चिन्तित दिखाई पडती है। रात को नीद ज़रा भी नही आती। पपीहा 'पीऊ पीऊ' पुकारता है जिसे सुनकर गोपी को अपने प्रिय का स्मरण होता है। मुरली नाम का स्मरण करते ही गोपी मूर्छित होकर गिर पडती है, उसका वर्णन परमानन्ददास करते हैं—

राग केदारो

रैनि पपीहा बोल्यौ री माई।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई।
सावन मास देखि बरषा रितु हो उठि आगन धाई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीउ उडाई।

---

१ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ३८१९, पृ० १३५१।
२ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ३९४७, पृ० १३८९।
३ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ४०८६, पृ० १४२१।

राग मलार कियो जब काह्न मुरली मधुर बजाई।
विरहिन विकल दास परमानंद धरनि परी मुरझाई।[1]

गोपियां आसपास बैठकर कृष्ण के प्रेम-व्यवहार की बातें करके उनके गुण-गान करती हैं। एक स्थल पर परमानन्ददास जी लिखते हैं—

राग सारंग

यह बिरिया बनते आवते,
दूरहि ते वर बेनु अधर धर बारबार बजावते।
कबहुंक काहू भांति चतुर चित अति ऊंचे सुर गावते।
कबहुंक लै लै नाउ मनोहर धौरी धेनु बुलावते।
यह मिस नाउ सुनाय स्याम घन मुरछे मनहिं जगावते।
आगम सुख उपचार विरह ज्वर बासर अन्त नसावते।
रचि रचि प्रेम पिया सेन दे स्रम मग बनिहिं बढ़ावते।
परमानंद प्रभु गुन निधि दरसनु पुनि पय प्रगट करावते।[2]

विरह के समय की चरमावस्था 'मृत्यु' कही जाती है उसका चित्रण परमानन्ददास के शब्दों में देखिए—

ऊधो यह दुख छीन भई।
बालक दसा नंदनंदन सों बहुरि न भेंट भई।
नैननैन सो नैन मिलाये बयनि बयनि सो बात।
बहुरि अंग को संग न पायो यह करी दूर विधात।
बहुरि कयो कान्ह न गोकुल आए मधुबन हम न छुनाई।
परमानंद स्वामी के बिछुरे दसमी अवस्था आई॥[3]

नन्ददास अपनी पुस्तक 'विरहमंजरी' में कृष्ण के विरह से व्याकुल एक गोपी की दशा का वर्णन करते हैं—

रही हुती रजनी कछु थोरी, जाग परी सहजहिं ब्रज गोरी।
द्वारावति लीला सुधि भई, ताही छिन सों बिरह हुई गई।
दृष्टि परि गयो चंदा गैन, लागी ताहि संदेसो दैन।
द्वादस मास विरह की कथा, बिरहिनी की दुखदायक व्यथा।
छिनक माझ बरनी यह गाथा, महा बिरहिनी ह्वै निहि साथा॥[4]

प्रस्तुत पद में गोपी अपनी दशा चन्द्र से मानो प्रकट करके उसे दूत बनाकर कहती

१. ना० प्र० स० के परमानन्ददास पद-संग्रह से, [illegible]
२. ना० प्र० स० के परमानन्ददास पद-संग्रह से, [illegible] पृ० ३२४।
३. ना० प्र० स० के परमानन्ददास पद-संग्रह से, [illegible]
४. [illegible]

प्रिय कृष्ण के पास भेज देती है। क्वार के महीने मे वियोगिनी की वेदना का कितना मार्मिक चित्रण कवि ने किया है—

कहियो उडुप उदार, सुन्दर नद किसोर सो।
अस कृस कीनी गवार, हार भार तें डार दिय।
खजन प्रकट भए दुख देना, सजोगिनि तिय के से नैना।
निर्मल जल अबुज तह फूले, तिन पर लपट अलि कुल भूले।
सुधि आवत वा मोहन मुख की, कुटिल अलक युत सीमा सुग की।
मोरन नूतन चदवा डारे, देखि देखि दृग होत दुखारे।
साझ समय बन ते वन आओ, गोरज मडित वदन दिखाओ।
वा छवि बिन ये नैन हमारे, जरत है महा विरह के जारे।
और ठौर की आगि पिय, पानी लागि बुझाय।
पानी में की आगि बलि, काहे लागि सिराय।।[1]

इस पद मे वियोगिनी की अभिलाषा, स्मृति, प्रिय के गुण-कथन आदि सचारी भावो का भी मार्मिक चित्रण कवि ने किया है।

मीरा अपनी विरह-यातना का वर्णन स्वय करती है—

राग पीलू

रमइया बिनि रह्योइ न जाय ।।टेक।।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाय।
बार बार मै अरज करत हू, रैण गई दिन जाय।
मीरा कहै हरि तुम मिलिया विनि, तरस तरस तन जाय।[2]

जैसे चातक बादल के लिए रटता है या जैसे मछली पानी के लिए छटपटाती है, वैसे ही, वे भी सुध-बुध विसराकर 'पिव पिव' करती रह जाती हैं—

राग आनन्द भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पथ निहारत, सिगरी रैण विहानी हो ।।टेक।।
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्या कल नहीं पडत, जिय ऐसी ठानी हो।
अगि अगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड न जानी हो।
ज्यू चातक घन कू रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहणी सुध बुध विसरानी हो ।।[3]

---

१ विरहमजरी—बलदेवदास करसनदास, छन्द स० १०८—११८।
२ मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३७।
३ मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम, चतुर्वेदी, पृ० ३३।

पिय के दरस न पाने के कारण रात भर सिसक-सिसक कर पड़े रहना पड़ा, इस सम्बन्ध में मीरा कहती है—

राग होली

होली पिया बिन मोहि न भावै, घर आगण न सुहावै ।टेक।
दीपक जोय कहा करू हेली, पिय परदेस रहावै ।
सूनी सेज जहर ज्यू लागे सुसक सुसक जिय जावै ।
नींद नहि आवै ।
कब की ठाढी मैं मग जोऊ, निस दिन बिरह सतावै ।
कहा कहू कछु कहत न आवै, हिवड़ो अति अकुलावै ।
पिया कब दरस दिखावै ।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरत सदेसा लावै ।
वा बिरिया कब होसी मोकू, हँस कर निकट बुलावै ।
मीरा मिल होली गावै ।[1]

मलयालम के उदाहरण—

कृष्ण के विरह से अत्यन्त व्याकुल होकर गोपियां वन-वन में उनकी खोज करती हुई विलाप करती हैं। उनकी दशा का वर्णन कृष्णगाथा में बड़े विस्तार से किया गया है। गोपियां कातर स्वर से कृष्ण को पुकारती हैं—

कान्वर्ण्णा कण्णा कटल वर्ण्णा कारुण्यो
कारुण्यमाण्डोरु कारवर्णने
एङ्ङलिलुळ्ळोरु कारुण्य मिन्निप्पो-
ळेङ्ङानु पोयतरिञ्ञायो नी
कारवर्ण्णन तम्मुटे मानस मिन्निन्नु
कारुण्य मिल्लाते पोयिनल्लो
मालोकरल्लारं निन्ने कण्डिट्टने
पालेप्परयुमारायिरुन्नोने
घन्नन्नु निन्नु कोण्डाराम नोक्करोट्टु.
कन्नु नोक्कोल मेल्ले मेल्ले
वेन्नु पिटक्कुन्न पैदाम्पल पोलेयाय
पोन्नु मन्नुन्नेडक्कल्लो
नोक्केटु धरावि पाडपम्मेरोट्टु
निन्नुडे मानक्कनेक पोले ।[1]

अर्थात् हे कृष्ण ! श्याममनोहर ! हमारे प्रति आप इतने दयाशून्य हो गए ? जैसे चातक घन के दर्शन न पाने से परेशान होता है, मछलियां स्थल से जल की ओर जाने के लिए छटपटाती रहती है, वैसी दशा हमारी हो गई है। आप हमपर कृपा करें।

कुचन नम्प्यार की गोपियां कहती है—

कण्डायो कनिवोदु चूत, वृक्षमे नी
कण्डालङड जकोटयोरु चारु रूप
तण्डार वाणनु भवनोदु तुल्यनल्ले
नुण्डामे मनसि तवापि कण्डताकिल ?[1]

अर्थात् हे चूत वृक्ष ! तूने हमारे मनोहर कान्हा को देखा हो तो बता दे। यदि तू देखता तो समझता कि उसके समान मन्मथ भी नहीं।

कृष्ण के गुणगान करते-करते गोपियां थक जाती है। सुअवसर पाकर कामदेव अपने वाणों का प्रयोग करने लगते है। उस समय गोपियां प्रलाप करने लगती है—

मा पापी कोल्लल्ला[2]

अर्थात् अरे पापी ! हमें मत मार। इतना कहकर गोपियां मूर्छित हो जाती है।

कवि कहते है—

त्वीर्त्तुतजच्चुल्लोरात्ति पिणञ्जुल्ल
तात्तेन मोजिकलङ्ल्लिलेङ
मुत्तुल्ल मन्मथ वाणङलेट्टु
मूर्च्चन पूङ्ङु तुटडिडनारे[3]

अर्थात् काम-व्याधि से पीडित मधुर भाषण करने वाली गोपियां कामदेव के वाणों से घायल हो मूर्छित होकर गिर पड़ी। उसी समय वनदेवियां प्रत्यक्ष होकर चन्दनादि सुगन्धित पुष्पों से उनकी सेवा-शुश्रूषा करती है। गोपियों को ऐसा लगा मानो आग की चिनगारियां डाली जा रही हो। उनकी वह दशा देखकर वनदेवियों ने आपस में कहा कि ये वेचारी मन्मथ के वाणों से पीडित हो रही है। मन्मथ का नाम सुनते ही गोपियां कामदेव को सम्बोधित करते हुए वकने लगती है जिससे उनकी विरह-वेदना का पता चलता है। कवि कहते है—

निन्नुटे वाणङल मुन्नमे यिडिडने
तन्नेयो युल्लु चोल तारम्पा नी
एन्निये जङले षक्कोन्नु मुटिप्पाना
यिन्नितु निरम्मिच्चङ्ङ ण्डाक्कायो
तारन्पेनन्नल्लो चोल्लुन्नू तेल्लारु

1. श्री कृष्णचरित मणिप्रवालम—पद सं० २३।
2. कृष्णगाथा—सं० राजराज वर्मा, पृ० ८०।
3. कृष्णगाथा—सं० राजराज वर्मा, पृ० ८०।

तारम्पनल्लोट्टु कूरम्पन नी
वज्रडट्टलल्ल निन वाणट्टल पूवेन्किल

. .

विल्लालि माराय पेगकुल चेटिवल्ले
न्मुटलतु निन्नुल्लि तिल्लयो तान ।[1]

अर्थात् मन्मथ का नाम सुनते ही विरहिणी गोपियां कातर स्वर से कहने लगीं—हे भगवान्! तुमने हमारी जान लेने के लिए ही ये तीर बनाए हैं? तुम तो पुष्प-बाण वाले नहीं वरन् क्रूर तीर वाले हो। यदि तुम्हारे तीर वज्र समान न हों तो भी हमें अच्छी तरह मालूम है कि ये पुष्पों के बाण तो नहीं। मल्लिका, चूत, अरविन्द आदि के पुष्पों से बने तुम्हारे बाण कदापि नहीं। यह वृक्ष-विष की बूंदें गिराते हुए बाण हैं। ऐसे वृक्षों के पुष्पों के बाणों से हमारे प्राण निकल जाएंगे ही। हम अबलाओं पर तुम क्यों आक्रमण करते हो? क्या तुम नहीं सोचते कि जो शूरवीर हैं वे स्त्रियों की हत्या नहीं करते।

अपने प्रिय के वियोग में सुख देने वाली सारी वस्तुएं दुखदायी प्रतीत होती हैं। सुहावनी चांदनी गोपियों को किस प्रकार मालूम पड़ती है, उसके सम्बन्ध में कृष्ण-गाथा-कार कहते हैं—

नट्टुच्च नेरत्तु पेट्टोरु वेयलेट्टु
चुट्टु पोरिञ्ञिरियकुमेर
चूट्टु तलत्तुवान तीयकुञ्ञि तन्निले
चाटिनाल चुट्टु तलत्तमो तान ।[2]

इस सुखद शीतल चन्द्र को देखना मानो सन्तप्त सूर्य की धूप से बचकर, हम लोगों को धधकती हुई अग्नि में डाल देना है। यहां संचारी भाव 'उद्वेग' का वर्णन कवि ने भली भांति किया है। अन्त में निराश होकर गोपियां मरणासन्न दशा को प्राप्त होती हैं। उसका चित्रण कवि यों करते हैं—

घडञ्ञे निन्नुटे लीलकलोपर्वम्पो
चेट्टने जट्टल पोरप्पूनिप्पोल
मेलत्तिलत्तिदकु फोल परुत्तलति ।
पकातिनत्त पिन्नाले नो परम्पोल
मुट्टे घरयोल पायकंरनाम्स्ट्टू
इटोट्टेट पमन्तो जट्टल दन्नु
इट्टिट्टने मुन्न निननुत्त शाम्पारे
येट्टल पोम्दर मनोवेंग मेन्ना
पन्तिरन्नर नन्नय पुणिन्दटु चूट्टु

---

१. कृष्णगाथा—सं० [illegible], पृ० ८१।
२. कृष्णगाथा—सं० [illegible], पृ० ८२।

नल्ल मरडङलु मुण्डरिके
अल्लले प्पोक्कुवानाराञ्जु पार्कण्ड
तिल्लेडङल पर्कोन्नतु तेग्निालु
आरे निनच्चेडङल जीविन्नु कोत्तु ते
मारोमल कान्ता ! नी कैवेटिञ्जाल
अच्छनुमम्मयु कूटि प्पिरन्नोर
मिच्छयिल मेविन कान्तन्मार
मेच्चमे जङङले कैवेटि ञ्ञोर जउ
लिच्छयल्लातुत चेश्टक याले
अच्छनाय निन्नतु मम्मयय निन्नुतु
निश्चलनाकिन नीतानत्रे
नियिन्नु अङङवेकैवेटिञ्ञायेन्किल
पोयेयल्ला वेण्डाये कालनिप्पोल ।[१]

अर्थात् हे भगवान् ! आप ऐसा करेंगे तो क्या हमारा अस्तित्व रह सकेगा ! शाम के समय गायो के पीछे वशी वजाते हुए आपका आगमन देखने के लिए हम कितने दिनो मे आया करती थी ? आपको देखे विना एक पल भी हम रह नहीं सकतीं। देखिए, यहा वहुत-से पेड और लताए है। आत्महत्या करने के लिए कही जगह ढूढने की आवश्यकता नही। जिनके सहारे और जिनका नाम जपकर हम सदा रहती है यदि वे हमे छोड देगे तो हमारे लिए मृत्यु के अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं। हमारे सारे सम्बन्धियो ने हमे छोड दिया है। आप ही हमारे मा-वाप और सर्वस्व है।

हास्य रस

दोनो भाषाओ के कवियो ने हास्यरस-प्रधान वहुत-सी कविताए लिखी है। हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' होता है। उसका आलबन (विभाव) विकृत आकृति वाला व्यक्ति या वस्तु है। उद्दीपन (विभाव) आलवन की अनोखी आकृति, वाते, चेप्टाए आदि है। अनुभाव (आश्रय की) मुस्कराहट, हसी, उसके नेत्रो का मिच जाना आदि है। सचारी, हर्प, आलस्य, चपलता, अवहित्था आदि है।

हिन्दी के उदाहरण--

सूरदास ने वाललीला का वर्णन करते समय अनेक पद लिखे है जिनमे हास्य रस प्रधान है। एक दिन वालगोपाल मक्खन की चोरी करते समय पकड लिए गए। उनके मुह पर मक्खन लगा हुआ था। तुरन्त उन्होने उसे पोछा और हाथ का मक्खन पीठ की आड मे छिपाते हुए सफाई देने लगे—

१ कृष्णगाथा—म० राजराज वर्मा, पृ० ८५।

राग रामकली

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायो।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊंचे धरि लटकायो।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसैं करि पायो।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायो।
डारि साटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायो।
बाल विनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायो।
सूरदास जसुमति को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायो।[1]

मुख से लगा हुआ दही पोंछना, पीठ के पीछे दोना छिपाना आदि उद्दीपन विभाव है। इसमें वर्णित सम्पूर्ण परिस्थिति के सामने आते ही हमारा हृदय खिल उठता है।

जब उद्धव ने आकर भगवान् के निर्गुण रूप के विषय में लम्बी चौड़ी बातें कीं तब उद्धव की हँसी उड़ाते हुए गोपियाँ कहती हैं—

राग कान्हरौ

निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे बरन, भेष है कैसो, किहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगो पुनि कियौ आपनो, जो रे करैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरो सूर सबै मति नासी॥[2]

मलयालम के उदाहरण

हास्यरस-प्रधान कविताएँ लिखने में मलयालम भाषा के कवियों में, चेरुश्शेरी नम्पूतिरि और कुन्चन नम्प्यार की अपनी विशेषता है।

यह कथा सर्वविदित है कि सुभद्रा का [illegible] अर्जुन [illegible] गया। [illegible] सुभद्रा का अपहरण करने के लिए अर्जुन संन्यासी [illegible] बलभद्र के पास गया। बलदेव ने संन्यासी का अच्छी भाँति स्वागत सत्कार किया और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने का भार [illegible] सुभद्रा पर सौंपा गया। सुभद्रा इसके पहिले अर्जुन पर मोहित हो चुकी थी। संन्यासी में अर्जुन का [illegible] सुभद्रा के मन में उनके प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा। [illegible] दोनों की [illegible] हुई। एक दिन [illegible] संन्यासी के पास सुभद्रा आई। [illegible] हास्य-रस का [illegible] —

१ सूरसागर—[illegible]
२ सूरसागर—[illegible]

श्रोदन तन्न विलपिनिन्नीटिनाल
वेदन पूण्डुल्लोरुल्लवुमाय
मुन्निलिरुन्नोरु भिक्षुकन तानु म
प्कन्यक तन्मुख फाण्कयाले
श्रोदन तन्ने विलम्पुवान वल्लाते
योच्चंयु पृण्डडड सेवुकयाल
पात्रत्तिल निन्नुल्लोरोदन मेल्लामे
पत्रत्तिलाम्मारु वीणु कूटि
श्रक्षण पिन्नेयु कन्यक मुन्निले
भिक्षुकन तन्मुख नोक्कि नोक्कि
उत्तम मायोरु नल घृत चेन्चम्मे
पत्रत्तिलाम्मारु वीज्ति निन्नाल
चालत्तोलिच्चूल्ल चाजप्पजडडलु
चाटि क्कलञ्जितु चापल्यत्ताल
श्रत्तोलि तन्ने विलपि निन्नोटिनाल
चित्त मयडिडनालेन्नु जाय
ञ्जत्तिलायुल्लो रत्तोलि तन्नेयु
चित्त मजिञ्ञनास्वदिच्चान
कपवुमाण्डु करुतु मकन्न डड्
सभ्रमिच्चोदुन्न कन्यकतान
मुनपिले वेण्डतु पिनपिल विलपिनाल
पिनपिले वेण्डतु मुनपिल त्तन्ने
इडडने वन्नव योन्नु मरिञ्जील
कन्यक मुनपिलिरुन्नवन तान।[1]

सार यह है कि सयानी सुभद्रा का मन युवा सन्यासी को देखकर चचल होने लगा। मारे घबराहट के वह जितना चावत लाई थी वह पूरा पत्तल पर डाल दिया। उसकी दृष्टि फिर भी भिक्षुक पर पड गई। तभी उसने सारा घी पत्ते पर उडेल दिया। केले का अन्तर्भाग हाथ से निकल गया और छिलका हाथ मे रह गया। उसने उसे परोस दिया। उसे बडे चाव से सन्यासी ने खा लिया। ठीक है, जब मन मोहित होता है तब इस प्रकार की करतूतें होती ही रहती हैं। कवि आगे कहते हैं—

क्रम के विरुद्ध तरकारिया परोसी गई। जो पहले परोसना चाहिए वह पीछे परोसी गई और जो पीछे, वह पहले।

कुचन नप्यार की हास्यरस-प्रधान कविताओ के उदाहरण आगे दिए गए हैं।

---

१ कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० २०५।

करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। उसका आलंबन (विभाव) विनष्ट प्रियजन, बन्धु या ऐश्वर्य आदि है। उद्दीपन (विभाव) उनका दाहकर्म, उनसे सम्बन्ध रखने वाली चीजें—जैसे घर, वस्त्र, भूषण आदि और उनकी कथा है। अनुभाव दैव-निन्दा, स्तम्भ, प्रलाप, विवर्णता आदि हैं, संचारी, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद, दैन्य आदि हैं।

हिन्दी में—

कृष्ण के विरह में राधा शोक की मूर्ति बन गई। उसका चित्रण सूर करते हैं—

राग केदारो

देखी मैं लोचन चुवत-अचेत।
मनहु कमल ससि त्रास ईस को, मुकता गनि गनि देत।
कहु कंकन कहु गिरी मुद्रिका, कहू टाड कहुं नेत।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाई सौचेत।
द्वार खरी इकटक मग जोवनि, ऊर्ध उसासनि लेत।
सूरदास कछु सुधि नहिं तन की, बधी तिहारे हेत।[1]

मलयालम में—

मलयालम भाषा के कवि एजुत्तच्छन की कविताओं में करुणरस-प्रधान बहुत-से पद पाए जाते हैं। तिर्यक् जाति के प्रति उन्होंने करुणा प्रदर्शित की है। फिर मनुष्यों के बारे में क्या कहना! उदाहरणार्थ भारत का एक प्रसंग नीचे दिया जाता है।

जब मन्दपाल मुनि को सन्तानशून्यता के कारण स्वर्ग में स्थान नहीं मिला तो सन्तानलाभार्थ उन्होंने शार्ङ्गपक्षी की योनि में जन्म लिया और जरिता नामक पक्षिणी से ब्याह किया। जरिता से मुनिश्रेष्ठ के चार पुत्र पैदा हुए। फिर उन्होंने लपिता नामक दूसरी पक्षिणी से विवाह कर लिया। वे एक दिन प्रातःकाल चले गये कि खाण्डव नामक वन में आग लगी। उसी वन में जरिता अपने पुत्रों के साथ रहती थी। अचानक अग्नि को देखकर अपने पुत्रों की रक्षा करने के लिए जरिता व्याकुल हो उठी। उस समय उस पक्षिणी को जो दुःख और चिन्ता हुई उसका वर्णन कवि यों करते हैं—

मारण्य नन्निम पिटि पेट्टु पहिवेषा
मरन्नु मुटद्रिदमार कनिक मातृगोन
नियुनाय लिगापिषट्टे मुवेन्नियान
इनि मरुमारावि लार पेन्द्रदलिवन्नु
दरकर पोन्नेयु पनित्तु मार स्मारणे

१. सूरसागर — [illegible] — ४७११ पृ. १५३१।

निरक्के प्पिटि पेट्टु वन त्तिलगिन तानु
ञानिनि इक्ट्टे एन्तोर्त्त तेन तन्पुराने
फानन त्तिलगिन पिटिच्चु नालुपाटु
इटङने फरयुम्पोल पेतडउलुग्चेय्तार
एङङानु पोयदकोलकम्मे नी फूटे मरियकान्डा
जडल चाकिलो पिन्ने पेट्टु सन्तति युण्डाम
एङिङन युण्डाकुन्नु नी फूटे मरिविक्रलो
अटङले स्नेहिच्चु नी सन्तानम मुटिवकण्डा
मगल वन्नु कूटु पिन्नेयु मेन्ने वग

एन्नतु केट्टु परञ्ञोटिनाल जरितयु
एन्नुटे पतॅङटले निङटल मोन्नु वेण
इक्कण्ड मरत्तिन कीजुण्णलिमटयतिल
पुककु कोल्लुविन निट्टलेन्नाल जानोन्नु चेयवन
पूजि कोण्डतिन मुख मूटि वेक्कयु चेय्या
ऊजि तन ताजे तीयु तट्टुक यिल्लयल्लो
कीजे पोय क्किट्न्नु कोण्डोटु विन तीयारियाल
पूजियु नीविकक्कोण्डु पोन्नु कोल्लुविनल्लो
पॅतटडलतु केट्टु मातावोटुर चेयतार
पॅदाहत्तादु मेयुन्नु एलियुड्तिलम्मे
परप्पान चिरकिल्ल नटप्पानिल्ल कालु
मिरच्चि कण्डालेलि पिटिच्चु तिन्नु मल्लो
जन्तुक्कल भक्षि च्चिट्टु मरिकुन्नतिनेक्काल
वेन्तु चाकुन्नतत्रे ग तियन्निरिञ्ञालु
मर्तावु तन्ने प्रापिच्चुत्तमन्मारायुल्ल
पुत्रन्मारेयु लभिच्चीटुक मातावे नी
एन्नुतु फेट्ट नेर वन्न शोकत्तोटे
तन्नुटे पॅतटटले नोक्कियु करञ्जिट्टु
पिन्ने त्तान परक्कयु मरञ्ञु नोक्कुकयु
एन्नुटे कर्म्म मेन्नु फलिपच्चु पोयालवल।[1]

सार यह है कि जगल मे आग लगी। तब जरिता ढाहे मारकर रोने लगी और कहने लगी—निर्दय पिता मुझे और इन बच्चो को छोडकर चला गया। हाय! हाय! मेरी और इन बच्चो की क्या दशा होगी। बच्चे उड भी नही सकते। आग चारो ओर लगी

१ महाभारत—ले० एजुत्तच्छन, पृ० १५०।

है। इनकी रक्षा मैं कैसे करूं ! तब बच्चों ने कहा—मा ! तुम हमारे साथ मत मरो। यदि हम मरेंगे तो कोई हानि नहीं होगी। तुम मर जाओगी तो हमारे वंश का उच्छेदन हो जाएगा। अतः तुम तुरन्त यहां से चली जाओ। रोती बिलपती वह फिर कहने लगी—मेरे प्यारे बच्चो ! इस पेड़ की जड़ में एक बिल है। वहां तुम शरण लो। तब बच्चों ने कहा—वहां एक चूहा रहता है। हमको देखते ही वह हमें खा जाएगा। जानवरों के शिकार बनने की अपेक्षा अग्नि में भस्मीभूत होना अच्छा है। हम यहां से कहीं नहीं जा सकते। तुम पिता के पास जाओ और उत्तम पुत्रों को पैदा करके अपना जन्म सफल करो। —अन्त में विवश होकर जरिता अपने बच्चों को देखती उड़ती फिर लौटती, फिर भी उड़ती, कराहती और अपने भाग्य को कोसती हुई वहां से उड़ गई।

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायीभाव क्रोध होता है और उसके आलम्बन (विभाव) शत्रु, विपक्षी, कोई धृष्ट व्यक्ति, देशद्रोही, जातिद्रोही, कपटी आदि होते हैं। उद्दीपन (विभाव) उनके किए हुए अपराध, उनकी चेष्टाएं, गर्वोक्तियां, कूटनीति आदि होते हैं।

हिन्दी में—

भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार गोपों ने इन्द्र की पूजा बिना किए गोवर्द्धन की पूजा की। तब इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए जिसका चित्रण सूर के निम्नलिखित पद में दिया गया है—

राग सोरठ

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
ब्रज घातनि करौं चुरकुट देउँ धरनि मिलाइ।
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
बरषि जल ब्रज धोइ डारौं लोग देउँ बहाइ।
खात खेलत रहे नीकें, करी उपाधि बनाइ।
बरस दिन मोहिं देत पूजा, दई सोउ मिटाइ।
रिस सहित सुरराज लीन्हे प्रलय मेघ बुलाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि, परौ ब्रज पर धाइ॥'

प्रस्तुत पद में आलम्बन विभाव कृष्ण-गोप हैं। उद्दीपन (विभाव) इन्द्र की पूजा का त्याग है। अनुभाव वज्राघात से गोवर्द्धन को चूर-चूर कर देना, बादलों को बुलाकर ब्रज पर आक्रमण करना। नष्ट पूजा की स्मृति, गर्व आदि संचारी हैं।

मलयालम में—

रुक्मिणी स्वयंवर में श्रीकृष्ण के द्वारा अपहरण करने पर रुक्मी को बड़ा क्रोध हुआ। कवि

लिखते है—

> अच्छन् ताने परज्जोटिन वचनमिव
> केट्टु कोप मुजुत्ति
> ट्टुच्चैरक्कणणु रण्डु नृप सवसि चुव
> प्पिच्चु मन्चाटि पोले
> स्वच्छ तन्नानत्तिल श्रमजल कणिका-
> वृन्दवु चेर्तु मेन्मे
> लुल्च्चेरु सर्व गर्वं तटविन वचन
> घोषयामास रुक्मी ।[1]

अर्थात् पिताजी के वचन सुनकर रुक्मी वडा कोवित हुआ। उसकी आखे लाल हो गई। चेहरे पर पसीने की बूदे दिखाई देने लगी। वडे अहकार से उच्च स्वर मे वह बोला।

वीर रस

शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनो की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय मे उनको नष्ट करने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता है और तदनुसार क्रियाशील हो जाता है। उसीके वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता मे उमड पडता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है।

हिन्दी में—

भगवान् कृष्ण अपने भाई वलराम के साथ मथुरा पहुचे। तव कस ने उनको मारने के लिए चाणूर, मुष्टिक जैसे पहलवानो को भेजा। उनसे कृष्ण और वलराम की मुठभेड हुई। इस प्रसग पर ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली भाषा मे सूर लिखते है—

राग मारू

> देखि नृप तमकि हरि चमक तहँई गए, दमकि लीन्हौ गिरह वाज जैसें।
> धमकि मार्‌यौ धाव, गुमकि हिरदै रह्यौ, झमकि गहि केस चले ऐसें।
> ठेलि हलधर दियौ, झेलि तव हरि लियौ, महल के तरं धरनी गिरायौ।
> अमर जय धुनि भई धाक त्रिभुवन गई, कस मार्‌यौ निदरि देवरायौ।
> धन्य वानी गगन, धरनि पाताल धनि, धन्य हो वसुदेव ताता।
> धन्य अवतार सुर धरनि उपकार कौं, सूर प्रभु धन्य वलराम-भ्राता।[2]

स्थायी भाव उत्साह यहा पर चमकि, दमकि, धमकि, गुमकि, झमकि आदि शब्दो से प्रकट किया गया है। केश पकडना कुपित होना आदि अनुभाव हैं।

---

१ भाषाचम्पू—म० उल्लूर, पृ० २७६।
२ सूरसागर—भाग दो, सभा सस्करण, पद स० ३६६७।

भीष्म की प्रतिज्ञा के प्रसंग पर सूर लिखते हैं—

राग मलार

आजु जौं हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनुसुत न कहाऊँ।
स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
इतौ न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊँ।
सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ।[1]

मलयालम में—

जब स्वयंवर-मंडप में दमयन्ती ने नल के गले में माला डाली तब दूसरे राजाओं को बड़ी ईर्ष्या हुई। उन लोगों ने दमयन्ती के पिता को कैद करना चाहा। इस प्रसंग पर कुन्चन नम्प्यार लिखते हैं

गमिच्चु कोलुकये चेण्ट नटप्पिन् भूपानम्मारे
नटप्पिन् कुतिरडन तन्निल कटप्पिन् भीमने क्वेन्नु
पिटिप्पिन् कन्यके प्पाञ्ञटुप्पिन कार्मुक कल्पिप
लेटुप्पिन् घोर बाणट् इल नोटुप्पिनोर्तु कोलूहेल्ला
मटुप्पिन् पतन कुत्ति तकर्प्पिन् सर्वत्र चेन्नु
हरिप्पिन् पेटिमुल्लोरटिहु रिरिप्पिन् पेणिणने क्वोल्लि
मरिप्पिन् मन्नवन्मारे नाण क्केटेल्ला।[2]

अर्थात् राजा लोग मारे जोश के कहने लगे - अरे ब्राह्मण लोगो! तुम लोग जाओ और भीष्म को कैद करो। राजकुमारी के निकट जाओ। धनुषबाण लेकर अस्त्र चलाओ। शत्रुओं को लूट लो। जो कायर हैं वे अपने घर में रहें। यदि हम कुछ न करें तो बड़ा अप-मान होगा।

भयानक रस

किसी भयप्रद वस्तु का वर्णन, उसके भयकारी व्यक्ति की चेष्टा, वाणी आदि का उल्लेख, जिससे मन को विकलता होती है, भयानक रस की उत्पत्ति के कारण हैं। इस रस का स्थायी भाव भय है। आलंबन (विभाव) कोई भयानक वस्तु (जैसे हिंसक जन्तु, बढ़ी हुई नदी, किसी जंगल या गाँव में लगी हुई आग [illegible] आदि), चोर, डाकू, बटमार एवं आदि हैं। उद्दीपन (विभाव) भयानक दृश्य, चोर आदि की चेष्टाएँ, उनके मारे, उनकी दहाड़, वर्षा आदि, इनसे उत्पन्न [illegible], [illegible] शब्द, [illegible], [illegible]-

शून्यता आदि है। अनुभाव कंप, स्वेद, रोमांच, वैवर्ण्य, स्वरभंग, पलायन, मूर्च्छा, इधर-उधर ताकना, भौंचक्का हो जाना आदि है। संचारी, संभ्रम, आवेग, शंका, दैन्य, चिन्ता आदि हैं।

हिन्दी में—

इन्द्र ने अत्यन्त कुपित होकर व्रज को डुबाने की आज्ञा अपनी सेना को दी। घोर वृष्टि के समय उनकी मेघसेना का वर्णन सूर यों करते है

राग गौंड मलार

मेघ दल प्रबल व्रज लोग देखें।
चकित जहँ तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखें।
ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंधकाला।
चकित भए नंद, सब महर चकित भए, चकित नर नारि हरि करत ख्याला।
घटा घन घोर घहरात, अररात, दररात, थररात व्रज लोग डरपे।
तड़ित आघात तररात, उतपात सुनि, नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपे।
कहा चाहत होन, भई कबहू जो न, कबहुँ आगन मौन विकल डोलें।
मेटि पूजा इन्द्र, नंदसुत गोविन्द, सूर प्रभु आनँद करि कलोलें।[1]

बादलो को देखकर वृन्दावन-निवासियो को बड़ा भय हुआ, यह स्थायी भाव है। मेघो का गर्जन करना, बिजली की कड़क आदि उद्दीपन है। चकित होना, थर्राना आदि अनुभाव है। चिन्ता आदि संचारी भाव है।

मलयालम में—

कंस तलवार लेकर देवकी को मारने जाता है। उसे देखकर देवकी थर-थर कांपने लगी। उसका वर्णन चेरुश्शेरी 'कृष्णगाथा' मे करते है—

केसरि वीरन तन्नानन तन्निलाय
मेषि निन्नीटुन्न देवकी देवि तान
दैवमे येन्नङङ् चोल्लि च्चोल्लि
घोरनायुल्लोरु कंसने नोक्कीट्टु
कोज पूण्डेट्टवु केजु पिन्ने
चङ्ङाति मारुटे नन्मुख नोक्किकनि
न्निङङने येन कर्म्म मेन्नु पिन्ने
अच्छने तन्नेयु मेच्चमे नोक्किकनि
न्नुच्च त्तिलेरे विलिच्चु केजु

× × ×

को देखकर मुझे बडा आनन्द होता है । किन्तु कोमल शरीर को घायल करने के कारण मुझे बडा भय होता है। आपकी अपार कृपा से मै अत्यन्त प्रभावित हो गया हू । आनन्द भय तथा आश्चर्य से मै आपकी वन्दना करता हू।

बीभत्स रस

स्थायी भाव घृणा। घिनौने दृश्य इसके आलवन है। उसमे कृमि, मक्खिया, दुर्गन्ध आदि उद्दीपन है। मोह, अपस्मार, व्याधि आदि सचारी है। थूकना, मुह सिकोडना, मुह फेरना आदि इसमे अनुभाव है।

उदाहरण—

हिन्दी के कृष्णभक्त काव्यो मे वीभत्सरस-प्रधान पद बहुत कम है । मलयालम के कवि कुन्चन नम्प्यार एक बूढे का चित्रण करते है

पाण्ड् पिटिच्चु वेलुत्त् शरीर
नीण्ड कज़ुतु मुज़्ज चुलिज़्ज़ु
कोलुकल पोले मेलिज़्ज़ु कुजज़्ज़ोरु
कालु कय्यु कण्डाल विकृत
एल्लु मिसच्चु पल्लु वयिच्चु
कण्णु कुजिज़्ज़ु कालु पिटच्चु
मूक्कु ताटियु मोन्निच्चिचट्टु।[1]

शरीर पर सफेद धब्बे पड गए। गला लबा हो गया। मुह पर झुरिया पड गई। हाथ और पैर लाठी के समान हो गए। वे बहुत भद्दे दिखाई पडे। शरीर पर हड्डी ही रह गई। दात बाहर निकलने लगे। आखे धस गई। उनसे गदगी बहने लगी, पैर कापने लगे। नाक और ठुड्डी एक हो गई।

यहा आलवन बूढा है। उद्दीपन, अस्थिशेष शरीर, निस्तेज और पीव भरी आखे आदि उद्दीपन है।

अद्भुत रस

इसका स्थायी भाव विस्मय होता है। आलवन (विभाव) अलौकिक वस्तु, असभावित व्यापार, असाधारण या लोकोत्तर कार्यकलाप, विचित्र दृश्य, आश्चर्यजनक व्यक्ति आदि है। उद्दीपन, (विभाव) इनका देखना या वर्णन सुनना, इनकी महिमा का निरूपण आदि होते है। अनुभाव मुह खोलकर रह जाना, दातो तले उगली दबाना, रोगटे खडे हो जाना, स्वरभग, स्वेद स्तभ आदि है। सचारी-वितर्क भ्राति, हर्ष, आवेग आदि है।

---

१ कुचन नम्यार—म० आर० नारायण पणिक्कर, पृ० १९९।

हिन्दी में—

भगवान कृष्ण के वेणुगान सुनने पर जगत् में क्या प्रभाव पड़ा, उसके सम्बन्ध में सूर लिखते हैं—

राग केदारौ

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत, पाहन-बिफल वृच्छ फले।
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात।
सुनत खग-मृग मौन साध्यो, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति उर मैं, जती जोग बिसारि।
ग्वाल गृह गृह सबै सोवत, उहै सहज सुभाइ।
सूर प्रभु बिनु रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाइ[1]॥

इस पद का स्थायी भाव विस्मय है। चराचर का एकाएक स्तम्भित होना आदि असम्भावित व्यापार आलम्बन विभाव हैं।

मलयालम में—

पाण्डवों ने जब भस्म की रखी हुई निधि को देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। एज़ुत्तच्छन लिखते हैं—

पिन्ने वकुत्तिच्चु निधि कण्टनेरत्तु
वन्नोरु विस्मयं चोल्लावतल्लेतुं
पोन्नु कोण्डुल्ल पात्रङ्ङल पलतर उपतपारण
वाजि पशु मृग मेन्निव पोन्नु कोण्डुल्लवयपि
मूल रत्नङ्ङल पोले चमच्चुन्ननुं
मालकला दिव्याभरणङ्ङलुं
अणुलोपङ्ङल कण्डालुमोरोन्निव
पणङ्ङलुटे पटिकला नमुकेन्नी
पन्नुन्न तेरङ्ङलेव मनुजिव
मन्नान् नी धूलि कम्कु नमस्सन्तो।'

ानो सारा शरीर उसके अन्दर से घुस सकेगा । उन्हे देखकर हम यह समझते है कि हम उनकी अपेक्षा कीट समान है ।

शान्त रस

शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है । आलवन (विभाव) परमार्थ होता है। उद्दीपन (विभाव) ऋषियो का आश्रम, महात्माओ का सत्सग, उपदेश आदि है । अनुभाव रोमाच, पुलक, अश्रु-विसर्जन आदि होते है। सचारी, धृति, मति, हर्ष, स्मरण आदि है।

हिन्दी तथा मलयालम कृष्णभक्ति-काव्यो मे शान्तरस-प्रधान अनेक पद मिलते है। मायावश जीव की दशा का वर्णन करके श्याम सुन्दर की सेवा करने का उपदेश सूर देते है—

राग बिहागरौ

माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ।
लाभ हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यो पतग तन दीन्हौ।
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।
मैं मति हीन मरम नहि जान्यौ, पर्‌यौं अधिक करि दौर।
बिवस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ।
मैं अज्ञान कछू नहि समुझ्यौ, परि दुखपुज सह्यौ।
बहुतक दिवस भए या जग में, भ्रमत फिर्‌यौ मतिहीन।
सूर स्यामसुन्दर जो सेवै, क्यौं होवे गति दीन[1]।

नर-जन्म की महिमा का वर्णन करते हुए और कृष्ण भगवान् का भजन करने के लिए प्रेरित करते हुए मलयालम भापा के एक अज्ञात कवि लिखते है—

अट्ट तेल, तेरट्ट, तोट्टारट्टि नक्त व्याघ्र
तोट्ट जन्म मोक्के त्तीर्न्नी मट्टिलायि जानु
मर्त्यनायि प्पिरन्नीटानेत्र पुण्य वेण
व्यर्थ माक्कीटोला जन्म, चत्तिटुन्नतेन्नो ?
चित्तमे ! नी गुरुवायु प्पर्केत्तिटेण वेग,
नत्र वाजुन्नुण्डु साक्षाल चित्तिनुल्लतत्व
विश्व मूर्ति, चिदानन्दन, विश्वसिप्पान योग्यन
वश्यनायालेतवर्क्कु माश्वसि क्कामल्लो
दाह मुन्डो विशप्पुण्डो, मोह मुन्डो पार्त्ताल
देह मुण्डो देहियुन्डो, स्नेह मुन्डो पिन्ने ?
भार्य येन्नु, मक्कलेन्नु वीटनेन्नु मट्टु

---

1 सूरसागर—भाग १, सभा सस्करण, पद स० ८६, पृ० १६।

पारमोर्त्तु कुत्तिरयाल फार्य मोक्केतेट्टु
आरियनाव्टे येतु पाटिल निन्नु यन्नु
फार्य मेन्ताणेन्दु पोमु माररिञ्ञु नूहम ?
नोरिले प्पोल पोले निस्सार माय देह
फार्यमेन्नु फल्तात्तोल धीर धीरन तन्ने
पोट्टु चिट्टु फोल्ल कोज़िक्कोट्टु पालघराट्टु
नाट्टुतोर नटन्नेरे प्पाट्टु पेट्टु नम्मल
भार्य येन्नु, धनमेन्नु पारितेन्नु मट्टु
पारमोर्त्तु चुट्टु पोन्नि, मार मोर्त्ताल जोयन
फर्म्म मेन्नु चोट्टिल निन्नु सम्मतिच्चु पोन्नु
पट्टि, पूच्च, मत्त्यनानयकुट्टि पट्टुरन्नु
तोट्ट देहं पुक्कु पाट्टु पेट्टुवन्नु चुट्टं
फण्डरिञ्ञु तन्य मोर्त्तु फण्टिरन्नाल पिन्ने
दण्डलुण्डो सत्य फप्पु पण्ट विचयन्तो[1]

सार यह है कि हे मन ! बिच्छू, कीट, नर, बाघ आदि की योनि में जन्म लेने के बाद कई पुण्यकार्य करके ही नरजन्म मिल पाया है । अत इसे व्यर्थ नष्ट मत कर । तू जल्दी कृष्णमंदिर में जा और वहा स्थापित मूर्ति की भक्ति से अर्चना कर ले । यदि भगवान् प्रसन्न हो जाएगे तो सब कुछ प्राप्त हो जाएगा । तत्पश्चात् भूख-प्यास आदि की चिन्ता न रहेगी । स्त्री, पुत्र आदि की चिन्ता में लगा रहेगा तो सब कुछ बिगड़ जाएगा । मैं कौन हू, कहा से आया, यहा आने का उद्देश्य क्या है, यह शरीर जल के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर है, यहा कुछ भी नहीं, ये विचार जिनके मन में उत्पन्न होने लगते हैं वही धीर हैं । 'कोल्लम' 'कोज़िकोट' 'पालघाट' आदि देशों में भ्रमण करके लोग तरह-तरह के घृणित काम करके अपने संबंधी लोगों का पालन करते हैं । उनको इतने पर भी आत्मा के सम्बन्ध में ध्यान लगाने का समय भी नहीं मिलता । यदि सत्य का ज्ञान हो जाएगा तो दुःख कभी नहीं होगा ।

इस प्रकार सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों भाषाओं के काव्यों में विविध-स्वरूपात्मक तत्त्वों पर भिन्न भिन्न कवियों ने लिखे हैं । ज्यों-ज्यों हम उनका विस्तार से अध्ययन करते हैं त्यों-त्यों ब्रह्मानन्दसहोदर काव्यानन्द का आस्वादन करने की सामग्री हमें मिलती जाती है । किस भाषा का काव्य अधिक श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करना असम्भव है । प्रत्येक भाषा का काव्य अपनी विशेषता रखता है ।

---

१. [illegible] पृ० ४५, ४६ ।

अलंकार-विधान

रूप, स्वभाव, कार्य-व्यापार, दृश्य-घटना आदि के वर्णन तथा भावाभिव्यक्ति मे सौन्दर्य-प्रतिष्ठा करने के लिए कवि को अप्रस्तुत दृश्य अथवा कार्य-व्यापार की सृष्टि करनी पडती है। प्रस्तुत के ग्रहण के लिए अप्रस्तुत का उपयोग काव्यशास्त्र मे अलकार के नाम से अभिहित है। कवि अप्रस्तुत की योजना विविध प्रकार से करते है। इन योजना-प्रणालियो का नामकरण विविध अलकारो के रूप मे किया जाता है। हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो की कल्पना किस प्रकार की योजना-प्रणालियो अथवा अलकारो मे प्रकट हुई है उसे हम क्रमश देखेगे।

हिन्दी के कवि

सूरदास के काव्य मे सभी प्रमुख अलकार हम पाते है, किन्तु कुछ अलकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते है। यह अलकार उनके काव्य मे पग-पग पर दिखलाई देते है। भावपक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य मे शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालकार अधिक है। अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलकारो का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। शब्दालकारो में अनुप्रास और यमक प्रधान है।

अनुप्रास—

श्रीकृष्ण 'बालक-सग' खेलते है—

१ डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि धूसर अग।
चलत मग, पग जाति पैंजनि परसपर किलकात॥

२ जागिए गोपाल लाल, आनँद निधि नद बाल।
जसुमति कहै बार बार भोर भयौ प्यारे॥
नैन कमल दल बिसाल प्रीति बापिका मराल।
मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे॥[1]

यमक—

यमकालकार का प्रयोग सूरदास के 'दृष्टकूट'-सबधी पदो मे अधिकता से मिलता है। उसके प्रयोग से वे राधा और कृष्ण के सौन्दर्य की रहस्यात्मक व्यजना कर सके है—

१. हरिसम आनन हरिसम लोचन हरि तह हरिवर आगी।
हरिहि चाहि हरि न सोहावए हरि हरि कये उठि जागी॥

२ कमलनयन के कमल वदन पर वारिज-वारिज वारि
ऊधो योग योग हम नाहीं।

---

१ सूरसागर—दशम स्कन्ध, पद म० ६०८, म० प्रो० राम।

३ सारँग सम कर नीक नीक सम सारँग सरस बखाने।
सारँग बस भय भय बस सारँग सारँग बिसमै माने॥
सारँग हेरत उर सारँग ते सारँग सुत ढिग आवै।

सुदामाचरित के निम्नलिखित पद्य में स्पष्ट, छेकानुप्रास वृत्यनुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास हम देख सकते हैं—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल, स्रवननि कुन्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजन्ती माल, संख चक्र गदा और पद्म धरे हाथ हैं।
कहत नरोत्तम सन्दीपनि गुरु के पास तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरेंगे पिय, द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।[1]

उपमा—

भृकुटि विकट नयन अति चंचल। यह छवि पर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन जिमि डरपत। नाहिं सकत उड़िबे अकुलावत।
(सूरसागर से)

नीचे लिखे सूरदास के पद में उपमाओं की झड़ी हम देख सकते हैं—

स्याम भये राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति, चकोर चन्द्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे।

२ ज्यों चकोर बस सरद चन्द्र के, चक्रवाक बस भान
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यों बस स्याम सुजान
ज्यों चातक बस स्वाति बूंद है, तन के बस ज्यों जीय
सूरदास प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौं होय।

३ चाकर ज्यूं घूमूं सदा री।[2] (पद)

४. मैं कोइल ज्यूं कुरलाऊंगी।[3]

उत्प्रेक्षा—

उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों के सुन्दर नमूने हैं—

राग बिहागरौ

जसुदा मदन गुपाल सोवावै।
देखि सपन गति, त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै।
असित अरुन सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।

---

१. सुदामाचरित—पद सं० ६, श्री नरोत्तमदास।
२ मीरापदावली से।
३ मीरापदावली से।

जनु रवि गत सकुचित कमल जुग निसि अलि उडन न पावैं।
स्वास उदर उससित यों मानो दुग्ध सिंधु छवि पावैं।[1]

सूरदास मानो पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावैं।

नीचे लिखे पद मे सूर ने उत्प्रेक्षाओ की भरमार कर दी है—

कहा लौं वरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुंवर कनक आगन मैं नैन निरखि छवि पाई।
कुलही लसति सिर स्याम सुभग अति, वहु विधि सुरँग वनाई।
मानहु नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन मुख वगराई।
मानहुँ प्रगट कज पर मजुल, अलि-अवली फिरि आई।
नील सेत अरु पीत लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु असुर देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई।[1]

रूपक—

इसके एक विशेष भेद सागरूपक का प्रयोग करने मे सूर वडे निपुण हैं—

देखो भाई सुन्दरता को सागर।
वुधि विवेक वल पार न पावत, मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अवुनिधि कटिपट पीत तरग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भवर परत अग अग।
मीन नैन मकराकृत कुडल भुजवल सुभग भुजग।
मुकुत माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए सग।[2]
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम वेलि वोई।
भौ सागर अति जोर कहिये अनत ऊडी धार।
राम नाम का वाध वेडा उतर करके पार॥[3]

रूपक के अन्य उदाहरण--

नव मरकत मणि श्याम, कनक मणि गण अजवाला।

रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग अनेक प्रकार मे किया गया है—

१ राधा-कृष्ण के नखशिख-वर्णन मे

नद नदन मुख देखो भाई।

---

१ सूरसागर—स० नन्ददुलारे वाजपेयी, पद स० ६८३, पृठ स० २८३।
२ सूरसागर—दशम स्कन्ध, पद स० ५३२, पृ० २७६।
३ मीरावाई की पदावली—पद स० ६५।

खंजन मीन कुरंग भृंग बारिज पर अति रुचि पाई।

(सूरसागर से)

२. मुरली के प्रभाव-वर्णन में

जब मोहन मुरली अधर धरी।
दुरि गए कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी।
उडुपति विद्रुम, बिम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी।

(सूरसागर से)

व्यतिरेक—

देखि री हरि के चंचल नैन।
राजिव दल, इन्दीवर, सतदल कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि ये विकसत दिन रानि।

प्रतीप—

उपमा हरि तन देखि लजाने।
कोउ जल कोउ बन में रहे दुरि कोउ गगन समाने।
मुख निरखत ससि गयो अम्बर को तड़ित दसन छवि हेरो।
नील कमल कर चरन नयन डर जल में कियो बसेरो।

(सूरसागर से)

स्मरण—

सुन सुत एक कथा कहौं प्यारी।

रावन हरन कर्यो सीता को सुनि करुनामय नींद बिसारी।
सूर स्याम कहि उठे चाप कहँ लछिमन देहु जननि भय भारी।

(सूरसागर से)

स्वभावोक्ति—

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन मुख प्रतिबिंब पकरिबे धावत।
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को पकरन को चित चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ पुनि पुनि तिहि अवगाहत।

(सूरसागर से)

विभावना—

माई मन सों यह सरद निसा [illegible] दीनी।
[illegible] कारो [illegible] बिन [illegible]।

मारुत सुत सुभाय तज्यो दसो दिसा मूदें ।[1]

अर्थान्तरन्यास--

हेरी मैं तो दरद दिवाणी होय, दरद न जाणे मेरी कोई ।। टेक ।।
घाइल की गति घाइल जाणे, की जिण लाई होई ।
जौहरि की गति जौहरी जाणे, की जिन जौहर होई ।[2]

'यहा प्रेम वेदना से पागल हो गई' उसकी वेदना को कोई नही जानता । इस विशेष बात का समर्थन घाइल की गति घाइल जाणे, जौहरि की गति जौहरी जाणे आदि सामान्य बातो से करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलकार हुआ ।

विभावना--

बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे ।
बिनि सूर राग छतींसू गावै, रोम रोम रग सार रे ।[3]

कारण के बिना कार्य जब होता है, तब विभावना अलकार होता है । करताल के बिना भी, कार्य पखावज का बजाना होता है ।

उदाहरण---

जब दो वाक्यो मे, जिनका साधारण धर्म भिन्न है, वाचक शब्द के द्वारा समता दिखाई जाती है, तब उदाहरण अलकार माना जाता है ।

मीरा प्रभु गिरिधर मिले जिले पाणी मिल गयो रग ।[4]

यहा मीरा का गिरिधर से मिल जाना उसी प्रकार होता है जैसे पानी से रग मिल जाता है । दोनो का साधारणधम भी एक नही, परन्तु जिसे शब्द के द्वारा समता दिखाई गई है ।

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज धामा ।[5]

उन्मीलित---

मक्खन की चोरी करने के लिए बाल गोपाल शाम के समय एक गोपी के घर मे घुस गए । कृष्ण का रग अधकार के रग मे मिल जाने के कारण मीलित अलकार हुआ । कृष्ण का रूप नही दिखाई पडा । उन्होने तुरन्त अपना चतुर्भुजी रूप दिखाकर गोपी को चकित कर दिया । यहा कवि ने मीलित और उन्मीलित अलकार का प्रयोग करके काव्य का माधुर्य बढा दिया है

१ परमानद पदसग्रह से, पद स० २८१ ।
२ मीराबाई की पदावली, पद स० ७२, पृ० ३७ ।
३ मीरा की पदावली, पद स० २५२ ।
४ मीराबाई की पदावली—पद स० २०२ ।
५ मीराबाई की पदावली—पद स० २१२ ।

राग कल्यान

ग्वालिन घर गए जानि सांझ की अबेरी।
मंदिर में गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ।
देह गेह, रूप कहौ को सकै निबेरी?
दीपक गृह दान कर्यो, भुजा चारि प्रगट धर्यो।
देखत भई चकित ग्वालि इत उत को हेरी।
स्याम हृदय अति बिसाल, माखन दधि बिंदु जाल।
मोह्यौ मन नंदलाल, बाल हौं चकेरी।
जुवती धनि भई निहाल, भुज भरि दै अंकमाल।
सूरदास प्रभु कृपाल टार्यो तन फेरी।
कर सौं कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाइ।
आनंद उर नाहिं समाइ, दान है घनेरी।[1]

दृष्टान्त—

नीलाम्बर स्यामल तनु की छबि तुम छबि पीत सुबास।
घन भीतर दामिनी प्रकासत दामिनि घन चहु पास।[2]

यहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों में भावसाम्य (बिम्ब प्रतिबिम्ब-भाव) होने के कारण दृष्टान्तालंकार है।

सहज प्रीति गोपालहिं भावै।

× ×

सहज प्रीति कमलनि अरु भानै, सहज प्रीति कुमुदिनी अरु चन्दै।
सहज प्रीति कोकिला बसंते सहज प्रीति नाद मृग फन्दै।
सहज प्रीति चातक अरु स्वातें सहज प्रीति धरनी जलधारै।
मन क्रम वचन दास परमानंद सहज प्रीति कृष्ण अवतारै।[3]

प्रतीप—

विमल जसु वृन्दावन के चंद को।
कहा प्रकास सोम सूरज को जैसो मेरे गोविंद को।[4]

१. [illegible]
२. [illegible]
३. [illegible]
४. [illegible]

अप्रस्तुतप्रशंसा—

राग सारंग

तब तै इन सबहिनि सचु पायौ।
जब तै हरि सदेस तुम्हारौ, सुनत तावरौ आयौ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेटि भरि खायौ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतौ जु जिय बिसरायौ।
ऊचे बैठि बिहग सभा मै, सुख बनराइ कहायौ।
किलकि किलकि कुल सहित आपनै, कोकिल मगल गायौ।
निकसि कदराहू तै केहरि, पूंछ मूड पर ल्यायौ।
गहवर तै गजराज आइकै, अंगहि गर्व बढायौ।
सूर बहुरि ह्वै है राधा कौं, सब बैरिनि कौ भायौ।[1]

उपमानो की आनदावस्था का वर्णन करके यहा कवि सूरदास ने अप्रस्तुतप्रशंसा द्वारा राधा के अगो और चेष्टाओ का विरह से द्युतिहीन और मद होना व्यजित किया है। चेष्टाओ और अगो का मद और कान्तिहीन होना कारण और कार्य उपमानो का आनदित होना है। यहा अप्रस्तुत कार्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत कारण की व्यजना की गई है।

मलयालम के कवि

ऐसा युग था जबकि मलयालम के अधिकाश कवि द्वितीयाक्षर प्रास का प्रयोग करने मे दत्तचित्त थे। पद्य के प्रत्येक चरण मे दूसरा अक्षर जब समान दिखाई पडता है तब उस पद्य मे द्वितीयाक्षर प्रास होता है। जैसे—

पन्चायुध रिपु तन्नुटे नाम
पन्चाक्षरमतु पठन चेय्तु
पन्चाग्नि कलुटे नटुविलनारत
मन्चाते कण्टविटे धसिच्चू
पन्चानन सम धीरनताकिन
पान्चाली पति पाण्डुतनूजन
पन्चेन्द्रियवु अटपिक मनस्सिल
सन्चारत्तिनु वजिकल मुटपिक
चचल भाववु अखिल मकन्नुक
रान्चल युगल मुकुलितमाक्कि
किन्चन सशय मिट फूटाते
नेन्चिलुरच्चु शिवोह मितेन्न

---

1 सूरसागर—भाग २, पद स० ४७५६, पृ० १६३६।

विराट् राजा के यहा पाचाली को कैसी बुरी दशा मे रहना पडा, उसका वर्णन कवि ने वडी कुशलता से किया है

मुट्टमोदके श्रटिच्चु तूत्त् तलिच्चु भगिवरत्तण
मट्टुमनवधि वेंकलड्डल तुटच्चु वेण्म तिलयकण
मट्टु दासिकलोदु चेर्न्नु पुरत्तलत्तिलिरिक्कणम्
कुट्टमङ्गन कल्कु वरुवतिलोट्टु तान पिज्ञएलक्कण
एज्ञरय्केज़ुनेट्टु वेल्लमनत्ति एण्ण एदुक्कण
कोज विट्टुथ तालिक्ट्टि मेतुक्कि इन्च पतक्कण
केज़ुमा नृपबालरेंकिल एणीट्टु पोयि उरक्कणम्
नाज्ञिकय्कोरु नालु कल्पन राज्ञि चोल्वतु केलक्कण
मञ्ञुमूतण काट्टुमेट्टु वेलिक्कु तन्ने किटक्कण
कुञ्ञु करकिल एणीट्टु तोट्टिलु मन्दमाट्टियुरक्कण
नृत्तवेलयिल मद्दल चिलपोतिलेन्ति वदिक्कण
मुग्ध गात्रिवियत्तु वाडिडयालथ वीशण
कञ्ञिवार्न्नुवरु तुरप्पु शरिप्पेट्टुत्ति मिनुक्कण
मुञ्ञिवीत्तु मुखिञ्ञु पट्टरुरच्चिट्टुन्नतु केल्क्कण

(कुचन नप्यार)

साराश —झाड् लगाना, वर्तन माजना, दूसरी दासियो के साथ वाहर वैठना, उनके अपराधो मे भागी बनना, वडे सवेरे उठकर स्वामिनी के स्नान के लिए तेल आदि चीजें तैयार करना, यदि बच्चे जाग उठे तो लोरी सुनाकर उनको सुला देना, समय-समय पर रानी की आज्ञाओ का पालन करना, सनसनाती ठडी हवा मे, नगी ज़मीन पर सोना, नाच के समय नर्तकियो की सेवा करना और यहा तक कि क्रोधी कारिन्दो की आज्ञा का पालन करना द्रौपदी के लिए अनिवार्य था। इस तरह नौकरानी के विविध कार्यों का वर्णन कवि ने उक्त पद मे किया है।

अप्रस्तुतप्रशसा—

काट्टिल किटक्कु कटुवायिनेच्चेस्रु
काल्पिटिच्चेन्नाल कटिक्कातिरिक्कुमो

(नृगमोक्ष से)

अर्थात् यदि जगली वाघ के पैरो पडे तो क्या वह विना खाए हुए छोड देगा ?

आनत्तलवने एन्ये करिणिकल
मानिनेयुण्टो कामिक्कुन्न्

(निवातकवच-वध मे)

अर्थात् हथिनी गजराज को छोडकर क्या कभी हिरण से प्रेम करेगी ?

कात्यायनी (माया भगवती) देवी के वर्णन मे कवि की पटुता देखने योग्य है। वे कहते है देवी के अग-लावण्य का यथोचित वर्णन करना मेरी जिह्वा की शक्ति मे परे है। उनके बालो का वर्णन मै करना चाहता हू। सादृश्य-रहित शब्दो का प्रयोग किया जाए तो वह बहुत भद्दा लगेगा। इस पद मे कवि ने देवी के बाल, अलक, भाल, भौहे, कान, नाक, गण्डस्थल, अधर, मुस्कराहट, गला, हाथ, दन्त, जाघे, जानु, नख, चरण, चरणरज इनका वर्णन किया है। बालो की उपमा (अरिचण्डि) काले बादल आदि से की है। किन्तु एक वस्तु से उपमा करते समय कवि सोचते है कि दूसरी नाराज हो जाएगी। इस प्रकार कहकर जिनसे उपमा की गई है उनका निपेध करके उपमा देने के काम मे निवृत्त होते है। यहा अनन्वय अलकार है। भाल रूपी आगन मे खेलते हुए केश रूपी नायिका के पुत्रो मे अलक की उत्प्रेक्षा की गई है।

यहा रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार है। भाल को देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो शिव के मस्तक के चन्द्र के बिम्ब का आधा रूप टूटकर गिरने पर भौहो पर जाकर रुक गया हो। यहा उत्प्रेक्षालकार है। भौहो की उत्प्रेक्षा युद्धस्थल की सीमान्त रेखा मे की गई है। मुख मेरे समान है ऐसा मानकर चन्द्र आगे बढा। तब कमल ने कहा मेरे समान है। जब दोनो मे युद्ध छिड गया तो मुख की श्री बीच मे पडी और रेखा खीचकर चन्द्र मे ऊपर रहने और कमल से नीचे रहने को कहा। इस प्रकार की खीची हुई सीमान्त रेखाए है भौहे। मुख की ऊपरी भाग की चन्द्र से, तथा निचले भाग की कमल मे तुलना की गई है यही सार है आखो को भौहे रूपी लहरो के नीचे खेलने वाली मछलिया कहा है। लहरो के नीचे ही मछलिया खेलती है यह प्रसिद्ध है। इन कारणो से आखो मे मत्स्यत्व (मछली-पन) का आरोप करने से यहा अनुमान अलकार है। काना की तुलना आनन-कान्ति रूपी तरुणी के सोने के झूके से की गई है और अधर रूपी बिम्बाफल को देख, खाने के लिए आगे बढने वाले कीर के ओठो से उत्प्रेक्षा की गई है। सौन्दर्य की होड मे लाल फूल अधर से हार गया। अत अपमानित होकर माला मे गुथने के बहाने फासी पर चढना चाहता है। यहा कैतवापह्नुति और उत्प्रेक्षा अलकार है। छाती पर शोभित मोतियो का हार देखकर दात उसके पास न जाए, इस विचार मे होठ दातो को छिपा देते है। यहा उत्प्रेक्षा है। मुस्कराहट को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि वह शिवजी के नेत्र रूपी चकोरो के खाने के लिए चादनी हो। कवि का सकल्प है कि चकोर चादनी का भोजन करता है यहा मुस्कराहट पर चादनी का आरोप करने के कारण अनुमान अलकार है। मुख के अधोभाग और कण्ठ की पूर्णचन्द्र को सिर पर धारण किए शिवजी के लिंग से उत्प्रेक्षा की है। (मुख पूर्णचन्द्र और गला शिवलिंग के समान है।) हाथ मानो स्तन-रूपी मलय पर्वत से निकलने वाले सर्प हो। स्तनो को यौवन रूपी मस्त हाथी के मस्तकों और रोमावलियो को सूड के समान बताया गया है। उन रोमावलियो के अग्रभाव मे नाभि रूपी पुष्कर दिखाई देता है। हाथी के मस्तक के मध्य मे सूड निकली हुई है, स्तनो के मध्य मे रोमावलिया उनके अग्रभाव मे कटि के हाथ के अग्रभाग के समान नाभि भी दिखाई

ऊर्जित रूपनाय निर्ज्जरनायुल्ल तन्पद तीर्त्त तिन्नो विकलावर्को
सु भनाय निन्नुल्लोरुम्पर कोन वैरि तन डभत्ते तीर्तंतु मव्वण्णमे।

(कृष्णगाथा पृ० १३८ मे १४२ तक)

कवि ने मथुरा की उपमा अमरपुरी मे दी है। यहा उपमालकार है। मथुरापुरी-निवासियो की, अमरपुरी मे जाने की तनिक भी इच्छा नही है। यहा अमरावती मे मथुरा पुरी की श्रेष्ठता दिखाई गई है। अत व्यतिरेकालकार है। 'धर्म्मिष्टरायोरे चिन्निच्चु काण्किला' से कन्मष तोन्नुम क्कौमुदिक्कु तक धर्मिष्ठता स्वर्णमयता दानवीरता, विद्या, अस्त्रशिक्षा, कान्ति, सौन्दर्य आदि मे देवताओ की अपेक्षा मथुरापुरी के धर्मिष्ठ लोगो को अधिक श्रेष्ठ दिखाया गया है। अतएव व्यतिरेकालकार है। नगरी की उत्प्रेक्षा इन्द्रनगरी से की गई है।

वसुदेव वालगोपाल को लेकर वृन्दावन जा रहे थे। उस समय वडी वर्षा हुई। उनका गमन देखकर कवि कल्पना करते है कि यह एक जुलूस निकल रहा है।

दुंदुभि तन्नुटे चेणालु पाणियायुल्लोरु यानमेरि
वारुट्टु निन्नोरु वारिद नादमा भेरि तन नादवु पूरिच्चेटट
वन्कनिवाण्टोरु पन्नगनाथना वेण्कुट तन्नेयु चूटिनन्नाय

अर्थात् भगवान् वसुदेव के हाथ रूपी वाहन पर यात्रा कर रहे है। वादलो का गर्जन नगाडा है। सर्प छाता वना हुआ है। विजली दीपक है। किमी प्रवल राजा की धूमधाम सहित यात्रा की प्रतीति यहा होती है। अत अलकार रूपक है।

रूपक—

सन्ध्ययायुल्लोरु वन्धुर गात्रितान
चन्तत्तिन पोय मरञ्ञोरु नेरम
रात्रियायुल्लोरु तार्त्तेन्मोजि वधु चीर्त्तोरु केशमजिच्चुचेम्मे
नीले विरिच्चते येन्नकणक्केय पकालिमकोण्टु निरञ्ञतेट्टु
सुन्दरमायुल्लोरिन्दु वित्तन्पोटु मन्द निनच्चु चमच्चपोले

(सपादक वटक्कुकूर राजराज वर्मा, पृ० १)

कवि कहते है कि सन्ध्या रूपी सुन्दरी के चले जाने पर रात्रि रूपी मधुरभाषिणी स्त्री अपने घने केश फैलाए हुए विराजमान हुई। उस समय मन्मथ रूपी किसान ने इन्दु रूपी बीज बोया। यहा अधकार की कालिमा मे मधुभाषिणी के केशो का आरोप किया गया है। मन्मथ किसान इन्दु बीज आदि मे रूपकालकार है। यह वडी सुन्दर कल्पना है।

अतिशयोक्ति—

हेमन्त के वारे मे कृष्णगाथाकार लिखते है—

वेलतमेन्निट्टने चोल्लित्तुटट्टुपोल
तुल्लि तुटट्टि विरच्चेल्लारु

परोक्ष रूप से किया है । स्वर्ग में केरल के नायक लोग तथा उनकी स्त्रियों को हम देख सकते हैं। पौराणिक कथा-पात्रों की वेशभूषा में केरलीयत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। दुर्योधन, देवेन्द्र आदि को केरल के राजाओं के समान ही कवि ने चित्रित किया है। दुर्योधन के परिजन केरलीय थे। उन लोगों का कवि ने वर्णन किया है—

ओन्नु तिरियात्तालुकलुण्टिह
मन्दन्मारवरेन्तिनु कोल्ला
तिन्नुमुटिप्पानल्ला तवरा
लोन्नु मिनिक्कोरु लाभवु इल्ल
ओन्निनयच्चाल् अतुमाधिक्कि
ल्लेन्नल्ल मलियुमोन्नु वरत्तु
तन्नत्तानरियात्तोरु कूट्ट
वन्नु निरञ्जु नम्मुटे नाट्टिल
एन्नुटे मुतलु मुटिप्पानेप्पोज़ु
मेन्नुटे भृत्यन्मार मुतिरन्नु
अप्टि कणक्किनु कूटाञ्जालवर
कुट्टिप्पट्टरे एत्तमिटीक्कु
पट्टिणियेन्नतु नम्मुटे पिल्ले
यर्कोट्टु तन्ने सहिप्पान मेला
वेट्टमेटुक्कु मुन्पे यप्टि कल
घट्टिसाद एटुत्तु मुटिक्कु
कोट्टु कजिच्चोर तेयकन मुण्टु
चुट्टि युटुत्तोरु तोन्कलुतूविक
वेट्टिल तिन्नु नुवप्पिच्चुको
ण्टेट्टुतिरिक्कु रसिकन्माराय।[1]

दुर्योधन के महल के पास परिचारक लोगों का चित्र उपर्युक्त पदों में दिया गया है। वे लिखते हैं कि जो नौकर हैं उनको केवल खाने-पीने की चिन्ता है, अन्य किसी काम की नहीं । किसी काम के लिए यदि वे भेज दिए जाए तो असफल होकर लौट आएंगे। ठीक समय पर भोजन न दिया जाए तो रसोइए के सिर पर चढ़ेंगे। खा-पीकर वस्त्र पहन-कर पान खाते फिरना ही वे चाहते हैं। सार यह है कि उस समय के ज्यादातर परिचारक भोजनप्रिय, शौकीन तथा सुखलोलुप थे। बड़े-बड़े धनिकों के यहाँ 'पट्टर' नामक ब्राह्मण जाति भोजन बनाने का काम करती थी।

उस जमाने में लोगों के बीच में यदि झगड़ा हुआ तो फैसला करने के लिए आज-कल के समान कोर्ट-अदालत नहीं थे। राजा ही सब-कुछ करते थे । अत राजा को खुद

१ कुंचन नंप्यार—मलयाळम प्रो० आनिरुद्धन नारियर, पृ० ११८।

कि राष्ट्र के धन का हिस्सा किया जाए तो न ताक न ... । कवि ने मन्त्रियों का चित्र बड़ी तन्मयता से खींचा है—

डरिरालप्पेट्टियु तेटिच्चित गन्नि प्रवरन्मार
पत्तिल्नापि मेलेरि त्तिरुमुपिल चेम्न निन्नु
पल्लिवकट्टितिन ताज़े निम्नु गूविकरा विरत तलित
पल्लुकाट्टिकोन्टु कार्यमुणर्त्तिच्चु वरिपक्कुन्नु
चोल्लुन्न नृपतिक्कु तल्लुन्न सचिवन्मार
तल्लुन्न नृपतिक्कु कोल्लुन्न सचिवन्मार
कोल्लुन्न नृपतिक्कु तिन्नुन्न सचिवन्मार
एल्लामिङ्ङने येन्नु चोल्लुन्नु मतिमान्मार
ओरुत्तन चेन्नोरु कार्यं धरिप्पिप्पान तुटङ्ङुपोल
करुत्तुल्ल यजमान्मार विरुद्धमायुरचेय्यु
करत्तिल नालेट्टुत्तड्ङु कोट्टुत्ताल् काय मोट्टेल्ला
वरुतु शीलमव्वण्ण विरवोट्टु धरिच्चाल्लु

कुछ मन्त्री ऐसे भी होते थे जो बड़ी नम्रता से राजा के पैताने आकर बैठते और दीनतापूर्ण वचनों द्वारा राजा को कपटजाल में फँसाते थे। अधिकांश सचिववृन्द ऐसे हैं कि यदि राजा किसी अपराधी को धमकी देकर बुला लाने की आज्ञा दे तो वे मार-पीट-कर लिवा लाएंगे, मारकर अपने सामने लाने को कहेगा तो सचिव वध करके लाएगा, वध करके हाजिर करने का हुक्म हो तो सचिव अपराधी का मांस तक खा जाएगा। यदि अपनी रामकहानी सुनाने के लिए कोई पौरजन सचिव के पास जाने में देरी करे तो वह कोरा जवाब दे देगा। किन्तु कुछ रुपये हाथ में रख दे तो शिकायत करने वाले की इच्छा के अनुसार सब कुछ करेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय के कर्मचारी रिश्वतखोर, चुगलखोर तथा घमंडी थे। सब कहीं तरफदारी और अन्याय का बाजार गरम था। नम्प्यार इस प्रकार के अन्याय के कट्टर विरोधी थे। ऋण तथा सरकार के विविध प्रकार के करों से पीड़ित वर्तमान कृषक जाति की हालत उस समय कहीं अच्छी थी।

वीट्टिल प्पराधीन शाप्पर्कुमिल्ला कट
वीट्टिच्चु पोरत्तुन्नु विरा कोदुत्तु आन
वित्तु पूत्तिपक्कु वकयित्तेयेकिरा को
दुत्तु वाजिपक्कु माकण्टङ्ङत्तोक्कवे
यित्तिरट्टिट्टप्पाट्ट नेल्लुमतप्पिवक्कु
इत्तर नम्मुटे राज्य रक्षा विध[1]

अन्न का अभाव घरों में नहीं था। सब सुखी और सम्पन्न थे। खेत में बोने के लिए

प्रकार के लोग व्यापार करने के लिए केरल मे आए थे। चीन मे भी रेशम के वस्त्र का व्यापार इस राज्य से होता था।

स्वभाव के अनुसार नामकरण करने की कला मे केरलीय अद्वितीय थे, उसका प्रमाण नप्यार की कविताओ मे हम देख सकते हैं। पुरुषो को ईच्चरच्चन, चिट्च्चार, ताच्चन, कण्टच्चार, रामच्चार, मूर्खच्चार, कान्नन कोन्ति, चात्तु, शकु, चाकरन चारन, परड्डोटन आदि नाम रखते थे। स्त्रियो को कोता, चिरुता, माधवि, कालि, चक्कि, नड्डेली, तेवि, उण्णच्चि, नाणि, कुञ्जि, मालु, लक्ष्मि, उण्णूलि आदि कहकर पुकारते थे।

गहने—

जब यह अफवाह उडी कि श्री कृष्ण ने प्रसेन को मारकर स्यमन्तक को हडप लिया तब स्त्रियो ने अपने-अपने गहने छिपाकर रख दिए। इस प्रसग पर लिखित नप्यार की कविता से उस समय के गहनो का पता लगता है—

वलयु तलयु मणिमोतिरवु
मिटक्कात्तालि मरक्कात्तालिकल
पूत्तालिकलु मालकल नलुकल
चिक्किटु कुजलु कटक कातिल
तुक्कु मणिकल पतक्क तोलवल
तुटलु कूट्ट मणि किड्डिणि पोन
मणियु मिन्नु मिरट्ट क्कुजलु
पविजक्कुजलू मुत्तु क्कुलयु
कुरलार पल काशलिकलु[1]

उस समय स्त्रिया कगन, कटक, अगूठी, हार, कुडल, केसर, किड्डिणी आदि गहने पहनती थीं। पुरुष भी कगन, किड्डणी, कटक, विदुमहार आदि पहनते थे।

युद्ध के समय तलवार, भाला, फरसा, तीर, कमान, त्रिसूल, मुसल, चक्र, बन्दूक आदि हथियारो का इस्तेमाल करते थे। इसका प्रमाण निम्नलिखित पद्य मे है—

वालु परिचयु विल्लु शरड्डलु
नील पेरुत्त चवल कट्टुत्तिल
शूलट्डलु मुसलड्टलु मुलत्तटि
वेलु चुरिकयु कुन्तट्डलु नीट्ठु
कोलु परिघ मसृष्टि चक्र ट्डलु
ईट्टियु तोट्टियु चाट्टु कुन्तट्डलु
चोट्ट कोलोट्टवालूरु खड्गट्डलु
लन्तक्कुजलु परन्किक्कुजलकलु

---

१ कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० २०२, २०३।

जादू का खेल आदि से वे मनोरजन करते थे। खेद की वात है कि उन खेलो का स्थान वैडमिटन फुटवाल, हाकी आदि खेलो ने आजकल छीन लिया है।

समाज मे आजकल की अपेक्षा ब्राह्मणो का वडा सम्मान किया जाता था। राजा महाराजा कलारसिक थे। विद्वानो को उच्चस्थान दिया जाता था । दरवारो मे अनेक विद्वानो की मडली रहा करती थी।

आठवां परिच्छेद

नंप्यार की हास्य-कविता

मे व्याप्त दुर्गुणो की निन्दा कवि इसीलिए करते है कि जिसमे लोगो की प्रवृत्ति उस ओर से हटकर उचित मार्ग पर आ जाए।

यूनान देश मे आर्च्चिलोक्कस, अरिस्टोफनीस, रोम मे ज्यूवनल, लूसिलस, इग्लैड मे ड्राइडन, पोप एडिसन, स्विफ्ट, फ्रास मे वाल्टेयर, मोलियर आदि महान् साहित्यकारो ने अपने-अपने समय मे जन-समुदाय को घेरे रहने वाले दुष्कर्म रूपी वादलो को हटाकर उसे प्रकाश मे लाने के अनेक प्रयत्न किए है। कुछ लोगो को हास्य की प्रभावशालीनता पर सन्देह है। वास्तविकता यह है कि व्यग्य और हास्य द्वारा मनुष्य के हृदय मे दुर्गुणो के प्रति विराग उत्पन्न करके उन्हे सद्गुणो की ओर प्रेरित किया जा सकता है। मनुष्य को अपनी दुर्वलताओ का पता लगेगा तव वह सवल वनने का प्रयत्न करेगा ही। इसमे उसकी उन्नति होती है। श्री नप्यार ने अपने समय की जनता की दुर्वलता तथा दुर्गुणो को दूर करके उन्हे सच्चे सीधे मार्ग पर लाने के उद्देश्य से ही कविताए रची है। श्री नप्यार के उच्च आदर्श की पवित्रता निम्नलिखित पद से समझी जा सकती है

चुरुक्कत्तिलोरु भाग उरय्क्कुन्नुण्टितु नेर
अरय्क्का नाजिक नेर स्मरिक्का कृष्णने येन्नाल
तरिक्का अर्णव पोले परक्कु दुष्कृतमेल्ला
गतिक्कु नल्लतु लोक स्थितिक्कु नल्लतु नन्म
भविक्कु शुद्धियुण्टाक्कु रतिक्कु पात्रमायीटु
अतिक्रूर नरकत्तिल पतिक्कु पोल मुकुन्दने
स्तुतिक्कु मानुषन्मार्कड्डु दिक्कु सार बोधड्डल
शमिक्कु सत्कय केट्टु रमिक्कु मानसमप्पोल
उरय्क्कु कौतुक चित्त निरय्कु भक्तियन्नेर
मरिय्क्कु मुन्निते शोक तुरक्कु ज्ञानमा दृष्टि[1]

सार —

मै अव सक्षेप मे एक वात कहता हू। यदि हम थोडी देर भगवान् कृष्ण के नाम का स्मरण करे तो दुष्कृत रूपी सागर को हम अनायास पार कर सकेगे। इससे हमारी तथा ससार की दशा सुधर जाएगी, मति शुद्ध हो जाएगी और हम सवके प्रेमपात्र वनेंगे। जव महाभयकर नरक मे पडेगे तो मुकुन्द की प्रार्थना की जाए तो ज्ञान मिलेगा, पाप शान्त हो जाएगा और विष्णुलोक मे जा सकेगे। ईश्वर की सत्कथाए सुनते समय मन को आनन्द मिलेगा, भक्तिभाव जम जाएगा, शोक दूर होगा और अन्त मे ज्ञानवृद्धि होगी।

स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य मनोरजन के साथ उपदेश देना भी जान पडता है। श्री नप्यार ने समकालीन परिस्थितियो का चित्र पौराणिक कथा-पात्रो का आश्रय लेकर

---

१ श्री कुचन नप्यार, म० वालकृष्ण वारियर, पृ० १४१।

यारी पाचाली को दुश्शासन ने चोटी पकडकर खीचा और ढकेल दिया, तव तुम लोगो ने क्या किया ? आखे फाडकर रह गए। उस समय तुम्हारी वहादुरी कहा गई ?—ये वचन जव भीम ने सुने तव मारे लज्जा के उसका सिर झुक गया और उसने अपनी मूर्खता समझी। अपने को वडा शूरवीर मानने वाले भीम को वुरी तरह लज्जित होना पडा। उसने पहले समझा था कि मै सारे विश्व को तहस-नहस करने की शक्ति रखता हू। परन्तु वही भीम एक वूढे बन्दर की पूछ को हटाने मे विलकुल असमर्थ दिखाई पडता है। अहकार के उच्च शिखर पर आसीन भीम को अपमान रूपी गढे मे वुरी तरह गिरना पडा। दुर्मद रूपी तिमिर मे रहने वालो का अहकार भीमसेन जैसे पात्र के द्वारा दूर करने मे श्री नप्यार सफल होते है। इस प्रकार गणपति के भोजन मे कुवेर के अहकार के नाश का वर्णन कवि ने वडी सरसता से किया है।

लोभ मे पडकर मनुष्य अपनी असली स्थिति को छिपाना चाहता है। यह इच्छा नैसर्गिक रूप से हम सभी मनुष्यो मे देखते है। काम-क्रोध आदि मे फसा हुआ मनुष्य जव अपनी असली हालत को छिपाने का प्रयत्न करने लगता है तो वह परिहास के योग्य वनता है। ऐसे प्रसग ही हास्यरस के उपयुक्त विषय है। नप्यार की 'तुल्लल' पद्धति के अनुसार लिखी हुई कविताओ का प्रधान विषय अहकार-शमन है। कल्याण-सौगन्धिक मे भीमसेन का अहकार, कार्तवीर्यार्जुन मे रावण की मानहानि, किरात तथा सतानगोपाल मे अर्जुन का घमड, सभा-प्रवेश मे दुर्योधन का अहकार आदि के नाश का सवसे सरस वर्णन कवि ने किया है। धन की तृष्णा, पौरुष भाव, कापट्य आदि दुर्गुण भी कवि की कविता के विषय वन चुके है। कभी-कभी सकल्प कथाए भी रचकर उन्होने सुन्दर हास्यपूर्ण कविताए लिखी है। सकीर्ण मनोवृत्ति वाले राजाओ और समाज की दुर्नीतियो का चित्रण वडी कुशलता से कवि ने किया है। उनके जीवनकाल मे वर्तमान तिरुविताकूर राज्य छोटे-छोटे टुकडो मे वटा हुआ था और छोटे-छोटे देश के राजा छोटी-सी वात के लिए आपस मे झगडते थे। मार्तण्डवर्मा नामक प्रवल राजा ने दूसरे छोटे-छोटे राजाओ को अपने अधीन कर लिया था। इस विषय पर कवि ने कहा है देखो, छोटे राजा लोग आपस मे झगडा करते है। वे विचारते है कि मै वडा हू, मै वडा हू। इसका यह नतीजा है कि एक-एक का राज्य धीरे-धीरे वरवाद होता है। अत विना झगडा किए रहना अच्छा है।

नादुवाषिकल एण्ण एरु पोल अवरतन्टे
नादु पा ज़िलाक्कीदु मन्योन्य कलहिक्कु
ञानत्रे यजमानन ञानत्रे यजमानन
तानत्रे ञेलियातड्डटड्ड प्पातुं कोण्टालु[1]

(सभा प्रवेश से)

किन्तु ये राजा लोग झगडा करते रहे। तव तिरुविताकूर राजा अपनी विशाल

---

१ श्री कुंचन नप्यार—स० वालकृष्ण वारियर, पृ० १४८।

तन्नत्तानरियात्त जलन्मारे मन्त्रियाक्कि
तन्वगि मणियोटु तन्टे कार्यं विचारिच्चाल
तन्नुटे प्रजकलोटे कोज्ञकलवाड्ङि
तान् तन्ने तन्टे राज्य नाशप्पिक्कु प्रभुक्कन्मार[1]
(हरिश्चन्द्र चरित मे)

राजाओ के आश्रय मे रहने के कारण उनके कर्मचारियो के अत्याचारो का पता नम्प्यार को भली भाति था। वडे कर्मचारी वडे घमडी, रिश्वतखोर, चुगलखोर और स्त्री-लपट थे। स्वार्थ सिद्ध करने के लिए घृणित से घृणित कार्य करने मे उन्हे जरा भी सकोच नही होता था। विना उनकी सहायता के लोग राजाओ से कोई भी कार्य पूरा नही करा सकते थे। कार्यो की सफलता, रिश्वत की रकम पर निर्भर रहती थी। वे हमेशा दूसरे लोगो के विरुद्ध कान भरते थे। उनकी योग्यता नम्प्यार की भाषा मे 'राजा की सेवा करके तथा उनकी चापलूसी करके दूसरो को धोखा देना है।'

धीरे-धीरे लोगो को चूसकर धन लेने का काम रिश्वत है इनका।

राजाविनेच्चेन्नु सेविच्चु निलक्कयु व्याज परञ्ञु पलरेच्चतिक्कयु[2]
कैक्कूलि मेल्लेप्पिटुड्ङुवानल्लाते इक्कारियक्कारन्मार्क्किल्ल वाच्छितम्

कवि आगे कहते है—

नम्मुटे कार्यक्करन्मारिलहम्मति कूटातुल्लवरिल्ल
उम्मान वकयिल्लात्तवर मुन्न धर्म वकञ्जि कुटिच्चु किटन्नु
नम्मुटे शुद्धत कोन्दु वरुत्ति सम्मानिच्चु समीपत्ताक्कि
चेम्मे पालु कोटुत्ताल पिन्ने नम्मेक्कालोरु पौरुषमेरु[3]
(पात्रचरित से)

सार—

हमारे कर्मचारी वडे घमडी है। ये पहले दूसरो की दया के सहारे जीवन विताते थे। हमारा मन पिघल गया। उनको बुलाया और काम दिया। अब वही वडे साहब बने बैठे है।

उक्त कर्मचारी-प्रमुखो मे कण्डन मेनोन नामक एक धूर्त था। उसका आचरण बहुत बुरा था। एक दिन एक घटना हुई। उस समय वहा एक वडा व्यापारी था जो कण्डन मेनोन का शत्रु था। मेनोन ने उसे एक सबक सिखाना चाहा। एक दिन मेनोन ने राजा से व्यापारी के विरुद्ध कई शिकायते की। राजा आपे से वाहर हो गया और व्यापारी को कैद करने का हुक्म दिया। व्यापारी हिरासत मे लिया गया। व्यापारी की स्त्री ने एक उपाय किया। उसने बहाना किया कि वह मेनोन से प्रेम करती है। जिस दिन उसका

---

१ श्री कुचन नम्पार—स० वालकृष्ण वारियर, पृ० १५०।
२ श्री कुचन नम्पार—स० वालकृष्ण वारियर, पृ० १५०।
३ श्री कुचन नम्पार—स० वालकृष्ण वारियर, पृ० १५१।

करता है।

कवि राजधानी के निम्न श्रेणी के नौकरो की हसी भी उडाते है। गले मे रुद्राक्ष माला धारण कर, छाती पर भस्म लगा, कानो मे बालिया पहनकर वे बाहर प्रत्यक्ष होते है। उनका काम साधु लोगो को सताना, कपट करना तथा स्त्री-सेवा है। हरिणी-स्वयवर मे वे लिखते है कि ये लोग जब पथिक दूर देश से आते है तब अपने सेवको को चुगी घरो मे बिठाकर उनका माल-असबाब लूट लेते है और उस लूट से अपनी बीबी-बच्चो का पालन करते है—

चुक स्थलड्डलिल चेन्नु पथिकरे
किकरन्मारकले क्कोन्टु मरिप्पिच्चु
सकटप्पेट्टु किट्टुम्न पण कोन्टु
मकमार वीटु पल तुन्नितु चिलर [1]

(हरिणी-स्वयवर से)

ये कर्मचारी हाथ मे तालपत्र लेकर निकलते है। लोगो का शोषण करके अपना मतलब निकालने के लिए ये लोग घूमते फिरते है। एक रुपया जहा कर है वहा दस वसूल करके ये झूठे बडे साहब बनकर बन-ठन के चलते फिरते है।

वर्योलयु ओरु कैयिलेट्टु
कार्यस्तन्मार वोभि विरिच्चति
शौर्यं काट्टि नटुन्नु तुटट्टि
कल्लक्कार्यं चेय्वतिनतिविरु
तुल्लोरु कार्यस्तन्मारिड्डने
युल्ल तरत्तिल तड्डटे मुट्टुक
लेल्ला तीवकर्मिन्तुमुरच्चु
उल्लतिलेट्टु पत्तु कूट्टि
फल्लक्कुत्तु कणक्कुकलेजुति
उल्लिले मोह पोले द्रव्य
कल्ल वजिक्कु करस्थवु आक्कि [2]

(चन्द्रागत-चरित से)

गाव के मुखिया लोगो को भी कवि ने नही छोडा है। वे कहते है—

रक्षिप्पानधिकारियायुल्ल यजमानन
भक्षिप्पान पुरप्पेट्टालक्काल प्रजकल्क्कु

---

१ श्री कुचन नम्पार—स० वारियर, पृ० १५४।
२ श्री कुचन नम्पार—स० वारियर, पृ० १५४।

मुट्टिच्चमञ्जु पोलुत्तानपादनी
ज्येष्ट कल्वकोट्टुमटक्कमिल्लाय्कयाल[1]
(ध्रुवचरित मे)

लोग आपस मे कहते है अरे भाई! तुमने सुना नही? उत्तानपाद के घर मे उनकी स्त्रिया आपस मे वडी हलचल मचाती है। वडी और छोटी मे घर की हाडिया तक वटने लगी है। इनके मारे राजा वडे परेशान हुए है।

इसके अलावा एक स्त्री के एक से अधिक पुरुष होते थे। वे भाई-भाई भी थे। इसकी हसी उडाते हुए कवि कहते है—

रण्टु पुरुषनु कान्तयायिट्टोरु
वण्टार कुजलियालुण्टाकिलप्पोषे
रण्टु पेक्कुं तम्मिलिष्ट मिल्लेन्नल्ल
शण्ठयु तल्लु पिटियु भविक्कुमे[2]
(सुन्दोपसुन्दोपाख्यान से)

उस स्त्री के जव दो पुरुष हुए तव से घर की शान्ति भाग गई है। छोटी-सी वात के लिए आपस मे झगडा होता है।

कवि नप्यार के समय के अधिकतर राजा लोग विषयासक्त थे। रुक्मिणी-स्वयवर मे उनकी चेष्टाओ के सम्वन्ध मे कवि के वचन देखिए—

कन्यक तन्नुटे वदन सरोजे
कण्णुकल रण्टु मुरप्पिच्चोरुवन
तन्नेत्ताने मरन्नु वसिच्चानु
न्नतमायोरु कुट्टिट कणक्के
मटोरु मन्नन वाल्यक्कारन
वेट्ट तेरुत्तु कोट्टुत्तु वाडि ड
तलमुटि तन्निलतेल्लाचूटि
चलमिजियाले कण्टुवासिच्चान
वेल्लियटप्पनेटुत्तु तुरन्नति
लुल्लिरिक्कु चुण्णापेल्ला
पच्चप्पुजुवेन्नोत्तुं मुखत्तु
तेच्चु तुट्ड्डीमट्टोरु भूपन[3]
(रुक्मिणी-स्वयवर से)

---

१ श्री कचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १६२।
२ श्री कचन नप्यार—म० वारियर, पृ० १६३।
३ श्री कुचन नप्यार—म० वारियर, पृ० १८०।

परिशिष्ट

कुछ चुने हुए छन्द[1]

निरणम कवि

माधव पणिक्कर

यह पद्य कवि की लिखी हुई 'भगवद्गीता' से लिया गया है—

पद्य—

अत्भुतमाय अमृताय मरनालिनु मरिवाय जगल पूर्णवुमाय
उत्भव मरणादिकल करणादिक्लो निणन्नोदुम कूटानोलिवाय
पुष्प मण पोल स्थावर घरमोदु पुणराते पुणरुम पोरुलाय
निन्नेप्पोजुतुम सच्चिल सुखमाय निन्नोटिन परमात्मानम तोजुतेन

सार—

उस परमात्मा को हाथ जोडता हू जो चमत्कारमय है, जो वेदो से ही जाने जा सकते हैं, परिपूर्ण हैं, जन्म मृत्यु जरा आदि से परे हैं, पुष्प की गध के समान चर और अचर से निस्सग हैं और हमेशा सच्चिदानन्दमय हैं।

आरालुम चिन्तिच्चालरिवा
नरुताकिय करुणाकर जय जय
नलिनदलायत लोचनने जय
तारार मकल मणवाला जय जय
धरणी वल्लभ सकलेशा जय
वाराकर मतिल निन्नोरु मीनाय
मरकले वीण्ट महापुरुषा जय
जय कूर्म्माकृतियाय मन्दरगिरि
चेम्मे मुतुकिलेट्टुत्तवने जय

---

[1] यहा मलयालम भाषा के कृष्णभक्त कवियों के कुछ चुने हुए छन्द दिए गए हैं। कण्णश और और एजुत्तच्छन—पृ० ४१।

भयकर सूकर विग्रह माधे
पल्लयनियेषु मुचनंयने जय
जलनरियात्त हिरण्यने देसवान
नरसिंहाकृति पायघने जय
येन्निमिदुत्तिग्पत्तारे मृटि
मन्नरे परति पेटुत्तयने जय

सार—

हे भगवान्, आप चिन्ताओं से अगम्य हैं। नारायण हैं, [illegible] हैं, कमलनयन हैं, लक्ष्मीदेवी के स्वामी हैं, आपने [illegible] का अवतार लेकर वेदों की रक्षा की, धरणी-वल्लभ हैं, कूर्म का अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार किया, हिरण्यकशिपु को मारने के लिए नरसिंह का जन्म लिया, आपकी जय हो।

तुंचत्तु एजुत्तच्छन—

भारतयुद्ध छिड़ गया। प्रत्येक दल अपनी-अपनी सेना का संचालन करते युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ रहा है। कर्ण एक दिन के लिए सेनापति बन युद्धक्षेत्र में आया। और प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन की खोज करने लगा। उसने सारथी शल्य से पूछने लगा कि अर्जुन और उनका सारथी श्रीकृष्ण कहाँ है? तब शल्य ने कहा कि देखो वहाँ अर्जुन रथ में बैठा है और भगवान् कृष्णचन्द्र [illegible] हैं। सारथी के मन में भगवान् का दर्शन करते ही

तटयु मुत्तु मालकलु कौस्तुभ मणियु चेरुन्न गलवु
चम्मट्टि पिटिच्चोरु करतलवु कुकु म मुरषके प्पूशिन तिरुमारु मारु
निरञ्ज मञ्ज प्पूंनुकिकलु कान्चिकलपद सरोरुह युगवु एन्नुटे
हृदय तन्निलु कुलिक्कं पोलेय म्मणि रथ निलक कुलुक्किय
मणिवर्णन तन्ने तेलिञ्ञु कण्टु जान। (महाभारत, कर्णपर्व, पृ० २७८)

सार—

मोरपख और बाल बडी सुन्दरता मे बाधे गए है। काले मेघ सदृश सावले रग के बाल, मणियो से चमकता किरीट धूलि-धूसरित अलक, निमिप मात्र से सारे प्रपच की सृष्टि, स्थिति और सहार करने की क्षमता रखने वाली भौहे। भक्तो की ओर का कृपा-कटाक्ष, क्रूर शत्रुओ की ओर का क्रोध, मधुरभाषिणी स्त्रियो के प्रति प्रेम, लडाई-झगडे को देखकर पैदा हुआ अद्भुत रस, और चपलो की चपल वृत्ति देखकर हास्यरस, सामना करने वालो के लिए भयकर, समय-समय पर बदलते हुए नव रसो की झलक दिखाई पडने वाली आखें, मकराकृति कुण्डल, कुण्डल की छाया पडने वाला गाल, कमल-मुख पसीने से तर नाक, मीठी मुस्कराहट, अधर की शोभा, तुलसी और सरसिज दलो की माला, मोती का हार, कौस्तुभ मणि से चुंबित गला, चाबुकधृत हस्त, कुकुम लगी हुई छाती, पीताम्बर और चरण-कमल को मैने अपनी आखे भर देखा।

यहा भक्त कवि ने अपने भगवान् को जैसे वह उनके सामने स्वय प्रत्यक्ष हुए हो वैसी पटुता से चित्रित किया है। कवि कहते है कि मैने भगवान् को अपने हृदयस्थित भगवान् के समान ही देखा। कवि की अगाध भक्ति यहा स्पष्ट है।

शल्यपर्व मे भगवान् की स्तुति कवि यो करते है—

मथितमदवारण सुखिन तर वारण जनि मृति निवारण जगदुदयकारण
चरण नत चारण चरित मधु पूरण दनुजकुल मारण सुरसुख परायण
पट निवह भीषण पद गत विभीषण मधुरतर भाषण यदुजनन पोषण
जगदमलभूषण जन हृदय मोषण नत कलुष शोषण शमित कलिदूषण
विजय रथ भूषण विनतजन तोषण विहग पति वाहन मुनि निकरमोचन
गुणजनन साधन नरक भय मोचन नलिनदल लोचन नरकमुर शासन
धृत दर शरासन रमित पुर शासन नमित नलिनासन शरधर निभानन
गुण निकर भाजन शकलित दशानन सुररिपु विनाशन मुपिनघृत भोजन
भुवन तनु जीवन नयन कलिताजन भवमरण भजन पशुपवरनदन
युवति जन मदिर विमल मति सुन्दर मणि ललित कन्धर विटयुवतिवधुर
मदन मद मन्थर विगतभय सिन्धुर पशुपकुल बालक भुवनतलपालक
चलित कर कन्गण मुदित समरान्कण कण्टुकौतूहल पूण्डोरानद
मुल यकोण्डु रन।

आरोमल् केशवन् तन् मधुरिम तिरलु
वेणुगीत प्रभावाल्
वारन्र्नानन्द मूर्छा तटवुमोरु
लता पादपाना कदब
वार वार प्रसूनाकुर पुलकमणि
ञ्जग मेड्डु मधूली
धारा बाष्पड्डलु चेय्तटवियिल
विलसी निश्चलानम्रशाख

(केरल-भापा-चरित, भाग २, पृ० २६)

कदम्ब वृक्ष ने प्यारे दुलारे श्रीकृष्ण के मधुर वेणु-निनाद से प्रभावित होकर कलियो द्वारा अपना पुलक प्रकट किया और मधु रूपी आसू वहाते हुए झुकी डालियो सहित खडा रहा।

भगवान् ने कब रासक्रीडा की, उसके बारे मे अज्ञात कवि ने यो लिखा है—

उम्पर पुरानु मोरुनाल वनड्डले कण्टु
मलर विरञ्जल्ल पवल्लिकल मल्लिक
नल्ल कुरु मोजि, चेमन्ति मुल्लकल कान क
नारिकल कैतकल चेम्पक नल्लोरिलञ्जियु
मट्टुमी नन्मलर नीले विरिञ्ञु
मण पेरतु वन्पुकल पूण्टु मूरण्टु
वण्टिण्टकल सभ्रममाण्टु फलिक्कु
फलिकलु मोहनमाय कुलुरत्तु मति
निलावाके वितच्चु निरत्तिलुदच्चतु
कण्टु मनोहरन नन्द कुमारनु मन्नु
कुजलेटुत्तोन्नु विलिच्च प्पोल

(केरल-भापा-चरित, पृ० ३८)

एक दिन श्रीकृष्ण ने देखा कि वन मे वहुतसी लताए कई प्रकार के रग-विरगे पुष्पो से लदी झुकी हुई है। उन्होने देखा कि गुलाव, केतकी, मल्लिका, प्रियगु आदि पुष्प अपनी सुगन्धि चारो ओर फैला रहे है। उन पुष्पो पर भ्रमर मडरा रहे है और घवराते हुए पुष्पो पर बैठ रहे है और उडते है। उस समय चादनी छिटकी हुई थी। अच्छा अवसर पाकर भगवान् वशी वजाने लगे।

तिलमल रोत्तोरु नासापुटवु
तेलिवोटु कर्णद्वयवु
वलरिपु मणि मुकुराभ कलन्नोरु
गण्ड युगे कुण्डलवुं
तेलु तेले विलसिन दन्त मधुरिम
कलरु विंवाधरवु
गलतलवु वत काणाय
तरिवल तोलवल विरल मोटिरवु
परिचोटणि ञ्ञ्ञकोटे
करयुगल कोण्टोटवकुजलतु
सरस मणच्चधरान्ते
मधुर मृदु स्वर जातिकलूतु
मधुरिपु निलयु काणाय
मारिटवु मरुवु मणिमालकल
निरमियलु वन माल्य
श्ररयालिल योटु सममामुदरवु
मञ्ञकिय रोमावलियु
तिरुनाभियुमरञाणुकलु
परिहित पीता वरवु
मञ्ञत्तु किलिल मरोञ्ञोरु तुट्यु
मञ्जुल जानु द्वयवु
सकट निकर मशेष मकट्टु
जधकलु पुरवटियु
नूपुर युगलवु ममरकल पणियु
श्री पादावुज युगवु
तापमकन्नय काणाय वन्नु
गोपिक मारुकुं समीपे
कोण्टल निर पूण्टोरु हरि तन्ने
मकण्टेजुन्नेटवर मोदाल
मण्टियणञ्ञु मनोरथ मेल्ला
मिण्टलकन्नु लभिच्चु

(सम्पादक मच्चाट्ट नीलकठन)

साराश—

काले वादलो को मात करने वाले वालो को सवारकर उनमे मोरपख लगाए

अम्पाटि तन्निले चेन्नु केलप्पिन
अम्पाटि तन्निले चेन्नु नेर
अङ्ङलारु मम्मे कण्टतिल्ल
वट्टारत्ते रुविले चेन्नु नोक्किन
वट्टार तेरुविले चेन्न नेर
वट्टु जेरिक्कुन्ने वासुदेवन्
नोक्किनान पिल्लरायम्म वरुन्नत
अरमणि किङ्ङिणि पोत्ति क्कोण्ट
ओटित्तु टङ्ङिनान कृष्णनप्पोल
ओटाते ओटाते वा मकने
ओलियाते ओलियाते उण्णिकृष्ण
कदलिक्कनि तरा वा मकने
वट्टकप्पाल तरा वा मकने
वट्टकप्पालिन्नो राशयिल्ले
कदलिक्कानिकु मोराशयिल्ले
चेरुविल्लु कणयु तरा मकने
अस्त्र प्रयोग जान चेरकपिल्ले
वलर्मुल प्पाल तरा वा मकने
वलर्मुल प्पलिलोट्टाश चोत्त
वन्नदु त्तीदुन्ने कृष्णनप्पोल
कय्येलु चेन्नु पिटिच्चु कोण्ट
पोन्निन तुटलाले कैकल पूट्टि
मत्तु कोल कय्यिलेटुत्तालम्म
मत्तु काण्टोन्नङ्ङ टिच्च नेरम
मत्तु मुरिञ्जु निलत्तु वीणु
कैकोण्टु मोन्नु रण्टटिच्च नेर
गोविन्द श्रीकृष्णन मुर तुटट्ङ्ङ
तल्लाते तल्लातेन्टोन्क लम्मे
कायाम्पू तिरुमेनि नोवुन्नय्यो
पेट्ट निनक्केन्ते ताशियिल्लो
एन्नुटे मार्वत्ते वटिवुकण्टो
आनोरु वेण्ण कट्टुण्ट वना-
णेन्नुटे वाय पिलर्न्नु नोक्कु
वायु पिलर्न्नुण्णि केजुन्नप्पोल

मारो मत। मै तुम्हारा प्यारा बेटा नही ? मेरे वडा दर्द होता है । तुम ज़रा मेरी छाती की ओर देखो। बडी चोट लग गई है। यदि मैंने चोरी से मक्खन खाया हो तो मेरे मुह मे देख ले। इतना कहकर उसने अपना मुह खोला। तब यशोदा ने देखा चौदह लोक, वरगद पेड, जिस मथनी से मा ने उसको मारा वह मथनी, स्वय यशोदा, कृष्ण, यम तथा यम का डरावना किला । यम का किला देखते ही वह डर गई और पृथ्वी पर गिर पडी । जब होश आ गए तब कहने लगी अरे मेरे कान्ह, मै तुमको हाथी के मस्तक जैसे परिमाण मे मक्खन दूगी। तू मुह वन्द कर। किंकनी और सोने की अगूठी से तुझे सजाऊगी। जरा मुह वन्द कर। गायो को चराने के लिए खेत मे जाने दूगी। मेरे प्यारे दुलारे! मुह वन्द कर। नदी मे नहाने के लिए तुझे ले चलूगी, वाप का अगोछा दूगी। मुह वन्द कर।— पिताजी का नाम सुनते ही कान्ह ने अपना मुह वन्द कर लिया।

कृष्ण-गाथा के चुने हुए पद—

रासक्रीडा करते समय गोपियो के मन मे अहकार उत्पन्न हुआ तो भगवान् एका-एक अदृश्य हो गए। उनके इस आकस्मिक विरह से गोपियो को वडा दु ख हुआ। उनकी खोज मे रोती विलपती गोपिया मारी-मारी फिरती दिखाई देने लगी। जब भगवान् को मालूम हुआ कि अपनी प्रेमिकाओ का अहकार दूर हुआ तब वे उनके सामने प्रत्यक्ष होते है। उस प्रसग पर कृष्णगाथाकार की कल्पनाशक्ति विविध अलकारो के प्रयोग करने की कुशलता और सहृदयो के लिए सचमुच आनन्द की वस्तु ही है।

पद—

कण्णन मेय तन्नुटे कान्तियेप्पोले काण
तिण्ण विलङ्ङुन्न तेन्तित्तोजि
अल्लले प्पोक्कुवानम्वुज लोचनन
मेल्ले वरुन्नोनेन्नल्ले चोल्ली
एन्नवल चोल्लुम्पोल नन्दतनूजन तान
एट्ट विरिञ्ञु वेलिप्पेट्टाने
अचित मायोर पुचिरि कोण्टवर
नेञ्ञक कूटे वकुलिप्पि वकुन्नोन
अजन कुन्निन्मेल निन्नु विलङ्ङुन्न
कुज मनोरमनेन्नतु पोल
तूम कलर्न्न किरीट कोण्टेट्टवु
कोमल कान्तिये कं तुटर्न्नोन
नीलक्कल कोण्टु चमच्चिट्ट
ड्ङोलक्क माण्टोर भित्ति तन्मेल
माण्पुट्ट काचनम् कोण्टु चमच्चोर

गला। श्री कृष्ण के हाथ गोपियो को यमपाश से बचाने वाले है । आशय यह है कि भगवान् श्री कृष्ण की कृपा से गोपियो को यम से डरने की आवश्यकता नही। कृष्ण की छाती पर शोभित मोती की माला देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो गोपियो के कटाक्ष रूपी पैने बाणो से क्षत हृदय से निकली पीयूष-धारा हो ।

भगवान् का उदर देखकर कवि यो कहते है भगवान् ने सोचा होगा कि मुझे क्षीरसागर सदा से धारण किए रहा है। अत मै उसका ऋणी बन गया हू । वह ऋण दूध ढोकर मै चुकाऊगा, इस विचार से वे सदा दूध पीते हो।

मनुष्यो के समान जानवर भी सुख-दु ख का अनुभव करते है। जानवर क्या चिडियो की भी वैसी ही अवस्था होती है। चकवा और चकवी के विरहकाल के बारे मे कृष्णगाथाकार का मार्मिक चित्र देखिए—

कोकड्डलेल्लामे गोपतिमण्डल
कोपिच्चु नोक्कि इरुन्नुटने
तूम तिरण्टोरु पेट मुखन्तन्ने
प्रेम मियन्नड्ड्ु नोक्कु पिन्ने
तामर नूलड्डु कोत्ति वलिच्चुटन
कामिनी वायिल कोटुक्कु मेल्ले
नीलिम कोलिन वेलिने कण्टिट्टु
नीले नेटुतायी वीर्क्कु पिन्ने
वापिक तन्मरु तीरत्ते नोक्कोट्टु
माज्किस्तलर्नोन्नु कूकु पिन्ने
पक्षति कोण्टु तन पक्षिणी तन्नेय
ड्डक्षमनायी त्तुवुकि निन्नु
नेञ्चुचक तन्निलु पच शर नट्टु
चचु पुटन्तन्ने वाय्क्कोण्टुटन
पोकुन्ने नॆंकिल आनेन्नड्ड्ु चोल्लीट्टु
तूकि त्तुटड्डीते कण्णु नीरु

(कृष्णगाथा, पृ० ३५२)

सार—

सन्ध्या के समय एक नायिका के विरह के विषय मे और किसी कवि ने शायद ही इतनी सुन्दरता के साथ लिखा हो। कवि, कालिदास से भी इस प्रसग पर बाजी मार ले गए है। चकवा और चकवी सूर्यमण्डल को देखकर कुपित होते रहे। चकवा ने अपनी प्रेयसी का मुह बडे प्रेम से देखा। फिर कमल की डडी अपने चोच मे लेकर अपनी प्रेमिका के मुह मे रखा। फिर शाम होते देखकर लम्बी सास ली। सरोवर के उस पार की ओर

ब्रज ले गए थे। उस बार इस रहस्य को कोई जान न सका था। परन्तु इस बार यद्यपि कृष्ण को मन मे छिपाकर नन्द ले जा रहे थे परन्तु यह भेद बीच मे ही खुल गया। कारण यह था कि आखे डबडबा आती थी और शरीर के रोगटे खडे हो जाते थे। सबने यह अवस्था देख ली। ठीक है, चोरी किसी न किसी समय खुल ही जाती है। नन्द अपने मन मे दृढ रूप से भगवान् का ध्यान धारण कर चले गए। उस समय उनकी अगाध भक्ति के कारण आनन्दाश्रु बह रहे थे। शरीर पुलकायमान हो रहा था। यह आशय बडी प्रतिमा तथा चतुराई से कवि ने यहा स्पष्ट किया है।

'चेरुश्शेरी-भारत' के चुने हुए पद--

कृष्णगाथाकार का दूसरा ग्रन्थ है चेरुश्शेरी-भारत। उसमे श्री कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का वर्णन देखिए—

पकज मक तन कोकयिल चेर्न्नुल्ल
कुकुम पक कदम्ब तन्नाल
अंकित मायुल्ल नन्मणि मारुम
प्पकज नेत्रवु पाल मोजियु
कज विलोचन मारुटे मानस
चचल माक्कुन्न पुचिरियु
धूलियिल वीणु तिरञ्जु निन्नीटुन्न
बालातपो लीलयु चापलवु
केटट्टपाल वेण्ण काणुन्न नेरत्त
ड्डाटुन्न नाटक रीतिकलु
श्यामल कान्ति कलर्न्नु निन्नीटुन्न
कोमल आयुल्ल पूवल मेय्यु
ऊनमेट्टेंकल पुर्लात निन्नीदुवा
नानाय पैतले कैतोजुन्नेन

(चेरुश्शेरी-भारत, पहला अध्याय, पृ० ३)

मुनि के शाप से पाडु को अपनी स्त्रियो से अलग होकर रहना पडा था। एक दिन राजा अपनी रानियो के साथ वन मे घूम रहे थे। वसन्त का काल था। उसके प्रभाव से काम-पीडित राजा ने अपने शाप की बात भूलकर अपनी स्त्री का आलिगन किया। उसी दम प्राणहीन होकर वे ज़मीन पर गिर पडे।

जिस वसन्त के कारण राजा की मृत्यु हुई उसका वर्णन कवि यो करते है—

मगल नायुल्लो रगजन तन्नुटे
चड्डाति यायल वसन्त मप्पोल

कालक्षण वेविट्टु पोकुन्न नेरत्त्
तीक्कनल कोरि च्चोरिञ्ञ पोले
मेय्यिलेज्ुन्नारु वेदनयेल्लाम
दैवमोजिञ्ञु मट्टारञ्ञोर ?

(चेरुश्शेरी-भारत, अध्याय २४, पृ० १३३)

सार—

अर्जुन का रूप देखकर कामिनी पाचाली को कामपीडा उत्पन्न हुई और वह हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई बोली। सुन्दरी नारियो की आखो के लिए आपका पुष्प के समान सुन्दर शरीर सुखदायी है। ऐसे रूपवान् आपको एक निमिष के लिए भी अपने से अलग रखना ऐसा दिल दहलाने वाला होता है मानो शरीर पर आग के अगारे रखने पड रहे हो। मेरा दु ख भगवान् के अतिरिक्त और कौन जान सकेगा!'

जब भगवान् कृष्ण विदुर के घर आए तो वे आनन्द के मारे उछलने-कूदने लगे। *उन्होने अपने प्यारे भगवान् का सत्कार कैसे किया उसके बारे मे कवि ने जो चित्र खीचा* है, देखिए—

पन्नग शायि तान वन्नतु कण्टिट्टु
तन्नेयु कूटे मरन्नु मेन्मेल
भक्तनायुल्लवन नर्त्तं तुटङ्ङिना
नुत्तमर्क्कङ्ङने तोन्नि जाय
चित्त तेलिञ्ञुल्ल पकज लोचनन
भक्तनायुल्ल वनोटे चोन्नान
नृत्तम कोण्टेतुमे येन्नुटे युन्निलले
क्षुत्तटङ्ङीटुन्न तल्ल चोल्ला
पालोलि वर्णन्टे लीलये क्केट्टिट्टु
चाले त्तेलिञ्ञुल्ल दासी पुत्रन
चाले वलन्नोरु भाजन तन्निल नल
पाल वेण्ण कोण्टन्नु वच्च नेरम
आनाय नारिमार नल्कि निन्नीटिन
आनायच्चेरियिलेन्न पोले
आनन तन्निल वच्चानन्दमा वण्ण
पान तुटङ्ङि नानि वणन

(चेरुश्शेरी-भारत, पृ० ३१५, ३१६)

श्रीकृष्ण को अपनी झोपडी की ओर आते देखकर भक्त विदुर अपने को भूलकर नाचने लगे। ठीक है, भगवान् को देखकर भक्त ऐसा ही करते है। उस समय प्रसन्न होकर

भगवान् ने कहा देखो, तुम्हारे नृत्य से हमारी भूख मिट जाएगी। भगवान् के ये वचन सुनकर विदुर ने खुश होकर गोपियों की भांति भाजन में दूध और मक्खन लाकर उनके सामने रख दिया। भगवान् कृष्ण खुशी-खुशी उसका आस्वादन करने लगे।

स्यमन्तक-कथा में प्रसेनजित के भाई का वध करके हरि ने उस अमूल्य मणि को अपने अधिकार में कर लिया, यह अपराध सबने कृष्ण पर लगाया। उसकी पुष्टि में दी गई युक्तियां देखिए—

वण्टार पृथायतार चीट्टुकलगुदिन
वेण्ण कट्टुण्टयन तान
कण्ठ मेल्ले मुरिच्चि म्मणियु मपहरि
च्चीटिमानेनु मन्ये
चुम्टइट्टा कट्टतेफिल पुन स्तनोर पो
न्नुपुट कवमुमेन्नाय
पण्टे योल्लुन्ट मिन्टायफोग यनोटिट् ना
पन्नतो नूनमल्लो

(भाषा-साहित्य-चरित्र, पृ० १८, भाग दो)

सार—

श्री कृष्ण ऐसा एक व्यक्ति है जो बचपन से ही गोपियों के घर से मक्खन की चोरी करता था। उसने अवसर पाकर मेरे भाई का गला काटा और मणि छीन ली होगी। ठीक है, जिसे बाल्यकाल में छोटी-छोटी चीज़ों की चोरी करने की आदत पड़ गई है वह थोड़ा बढ़ते ही सोने के गहने की चोरी करेगा ही। मगर फिर भी कहना है यह बात और कहीं प्रकट नहीं करनी चाहिए।

बाल गोपाल की बाल-लीला के बारे में कवि अपनी कृति श्री कृष्ण-कर्णामृतम् में लिखते हैं—

कांचाटोट्टुन्न पिन्न मरनिर यिन्दु रिट
कोमन चक्लुयूर्पति
ट्टंपु देटेरे तृत्तं शिरनुषत मतरे
सोट्टे विट्टाल्लु कलोन
कृञ्ज्ञि ल्पर्पं मरिच्च मन्न महोदिनं

पुचिरि त्तॅचोरिञ्ञु
कुञ्ञि क्कॅरण्टु माय्क्काट्टन भुवनपते
निन्ने ञान कॅतोजुन्नेन
मानत्तम्मामने क्कण्टमृतु पोज़ियुम
क्कणणनुणिणक्कु चित्ते
मानत्ते पॅक्कॅ वलर्ना नमृत किरणनुम
मेल्ले मेलिन्निरड्ङी
मानिच्चम्मक्कु काट्टि प्रमद परवशाल
रण्टुर्क कोण्टुमन्दम
मानत्ते य्क्कड्ड यच्चोटिन तोज़ि लोरुना
लास्यया काण्मनो ञान

(पून्तानम की कृतिया, पृ० ८७)

पीठ के बल लेटे हुए, हाथ को ऊपर उठाकर मुस्कराते हुए भगवान् का चित्र इस पद मे दिया गया है। ऐसे बालगोपाल की वदना कवि करते है।

चन्द्रमा को आकाश मे उतारकर मा को अपना प्रभाव दिखाया। यह कथा यहा सूचित है।

हे भगवन्! आकाश मे चन्द्र को देखकर आपके मन मे यह इच्छा हुई कि चन्द्र मेरे पास आए। तुरन्त अमृतकिरण चन्द्र आपके पास आ गया। यह चमत्कार आपने अपनी मा को दिखाया। तब मा की खुशी तथा अचरज का ठिकाना न रहा। आपका अद्भुत कार्य मै कब देख सकूगा।

कुञ्ञि क्कालुम करत्तार कुलुर मति मुखवु
कण्णिले कण्णेज़ुत्तु
किंचिल पोन्नर्तुरिक्कु दशन मुकुलवु
कृष्ण, चॅचोरि वायुम्
पचत्व वन्नद्दुक्कुम्पोज़त्तु, मति मर
न्नट्टु वीणीट्टु मप्पो
ञॅचित्ते पौन्नु दिव्वीट्टक तव निरूमे
य्क्कुन्ल कोण्पुम मुरारे

(पून्तानम की कृतिया, पृ० ८८, पद स० ११)

सार—

मृत्यु के समय भगवान् के बाल-रूप-दर्शन हो, यही प्रार्थना कवि करते है।

सुन्दर पैर, पुष्प के समान कोमल हाथ, चन्द्रमुख, आख का काजल, प्रस्फुटोन्मुख दन्ताकुर, लाल ओठ मे युक्त आपके सुन्दर शरीर के दर्शन मृत्यु के समय अवश्य हो। हे भगवान्, आप ऐसी कृपा अवश्य करे।

पच्चपकलोत्त पूर्म निरवु मणि पज्ञल
प्पल्लय मेल्ले मेल्ले
वेच्चीट्टुम्पोन्न वितच्चीटिन मधुरिमयु
पिच्चयु विश्व मूर्ति
मच्चित्ते वन्नुविच्चीटेण मतिनु विशे
विच्चु विक्षापयेहम
सच्चिल कल्लोलमे नी कृप तरिक सदा
कृष्ण कारुण्य सिन्धो
(पून्तानम की कृतियाँ, पृ० ८६, पद न० १४)

सार—

मरकत रत्न के समान सुन्दर शरीर, किसलय-सदृश सुन्दर पैर, चलते समय डग-मगाते पैर, इन सबका दृश्य है भगवान्! मुझे आप दिखाई दें। इसके लिए मैं विशेष रूप से प्रार्थना करता हूँ।

भागवत नालुवृत्त के पद—

भागवत नालुवृत्त नामक एक गम्भीर कृति मिली है। उसके रचयिता के बारे में निश्चित नहीं हुआ है। नरजन्म की क्षणभंगुरता, भगवान् की महिमा आदि के बारे में चार भिन्न-भिन्न वृत्तों में यह कृति रची है।

पद—

कारलिल विवेकम कूटातेक
ण्टरनिमिम घन कलयपरनारम
मरण वरुमिनि येन्नु निनच्चिरु
कारुक मतन नारायण जय
काणुन्नु चितर मलतुमुपायम
काणुन्निल्ल मारिपुय तेनुम
काणु किलु मोरु नुट्टाण्टिनकत्ति
ल्लेन्ने काणू नारायण जय

द्वितीयपाद—

मन्युन्नु टे मुग्ग मेट्टु केट्टायोन
मिरन्नु मट्टोनिट्टुम कैयना निन्दम
विरयनायोदयन वेन्नपनिन्नुम मना
पापिकन वरेत्त मो कृष्ण रामा हरे
मानिमुत्तम घर दुन्न परतिना
[illegible]

एजुत्तच्छन की कृतियों से पद--

श्री तुन्चत्तु आचार्य ने संस्कृत के आधार पर भारतम् लिखी है तो भी ऐसे बहुत-से भाग पाए जाते हैं जहां कल्पना की मौलिकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। पाडु राजा अपनी पत्नियों के साथ वन में जाकर वनोत्सव मना रहे थे, जिसका वर्णन मूल में भी अधिक सुन्दरता के साथ आचार्य ने किया है—

मूल—

सचरन् दाक्षिण पार्श्वं रम्य हिमवतो गिरे ।
उवास गिरिपृष्ठेषु महासालवनेषु च ।।

क्षणेन पतिता भमौ विललापातुरोमृत ।

अनुवाद—

मुएय भोगेन सुखिच्चिरिक्कुम कालत्तिक
लुरक्काम्पिलोन्नु तोन्नि पाडुविना पत्तिनाय
कान्तिये रीटुन्नोरु कान्तमारोटुम कूटि
कान्तारम तन्निल पुक्कु नन्नायि रमिक्कणम
वाट्टमेन्नियें मम नायाट्टिन वेंदान्यवु
काट्टुण मिवर क्केन्न कौतुकत्तोटु कूटि
द्युमणि त टे रश्मि पोलु मट्टणायात्त
हिमवान त टे तेक्के पुरपेरिटु काट्टिल
पेरिके रमम पूण्टु कलिच्चु मरुवितान
गिरि शृगड्डल तोरुम मनि कौतुकत्तोटे
करिणी युग मध्यगत नाय् मदिरपोरु
करि वीरनेप्पोले मदन विवशनाय
करिणि गमन मारायिय मार्यमारा
तरणी मणिकला कुन्तियुम माद्रि तानुम
सरसीरुह शर समना दा तन तन्ने
शर तूणीर करानोज्वल करवाल
धरनाय गगामन करनाय काण तोरुम
सरसीरुह निर निरुट्ट एरवश
तरमानभस्माराय मर्वोटिन नेरम
हरिण हरि करि किटि शार्दू लादिक
लरिकि दरीमुगरट्टलाय काणायपोन
शरट्टला कोट्टु वीणुम मरण भयत्त कोण्टु

सार—

पसीने से आधी भीगी हुई सिन्दूर की टीका, लाल मिट्टी लगी हुई देह मे गायो का पीछा करने वाला वाल गोपाल का मनोहररूप हे मन ! तू याद कर।

कालिन्दि प्पुज्ञ वल्किलुण्टोरयाल वृक्षम, कणिक्कोन्नये
वक्कालुम मञ्ञलमाय मञ्ञवसनम चार्तुन्नोरालुण्टतिल
कालाव्दान्वित कोमलाकृति कलापालम कृतोष्णीषना
न्नालेन निर्भर भाग्यमे मदन गोपालन मदालबनम

सार—

जो कालिन्दी के तीर के वरगद वृक्ष पर पीताम्बर पहने और सुन्दर टोपी सिर पर रखकर बैठे हे वे ही है मेरे आश्रय।

सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी—

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय भाग १ व २, डा० दीनदयालु गुप्त
२ अष्टछाप डा० धीरेन्द्र वर्मा
३ उत्तरभारत की सन्त-परम्परा : श्री परशुराम चतुर्वेदी
४ सूरदास, जीवन और काव्य का अध्ययन . डा० व्रजेश्वर वर्मा
५ सूर-पंचरत्न श्री भगवानदीन
६ सूर-साहित्य की भूमिका · श्री रामरतन भटनागर
७ सूरसागर, भाग १ व २, स० काशी नागरी प्रचारिणी सभा
८ सूरसागर : वेंकटेश्वर प्रेस
९ सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१० सूर जीवनी और ग्रन्थ . ले० श्री प्रेमनारायण टंडन
११ सूर-सौरभ श्री मुंशीराम शर्मा
१२ सूरदास एक अध्ययन श्री [illegible]
१३ सूर-सुषमा श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
१४ अष्टछाप-परिचय श्री प्रभुदयाल मित्तल
१५. सूरसागर . स० प्रोफेसर राम, एम० ए०
१६ कृष्णायन ले० श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र
१७ मध्यकालीन प्रेम साधना श्री परशुराम चतुर्वेदी
१८ कृष्णकाव्य में भ्रमरगीत श्री [illegible]
१९ कृष्णकाव्य की रूपरेखा श्री वेदमित्र 'व्रती'
२० सन्तवाणी . स० श्री वियोगी हरि
२१. मीरा एक अध्ययन श्री पद्मावती 'शबनम'
२२ मीरा [illegible] स० श्री [illegible]
२३ मीरा की प्रेम-साधना श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र
२४ मीराबाई की पदावली स० श्री परशुराम चतुर्वेदी
२५ [illegible]
२६ हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२७ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
२८ हिन्दी साहित्य का [illegible] इतिहास ले० डा० [illegible] वर्मा, श्री [illegible] शास्त्री
२९. हिन्दी-साहित्य की [illegible] प्रो० [illegible]

३० गीतामृत श्री कृष्णदत्त पालीवाल
३१ आधुनिक हिन्दी साहित्य, १८५० से १९०० ई०, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
३२ संस्कृत साहित्य का इतिहास
३३ मीरा की पदावली श्री सदानंद भारती
३४ सुदामाचरित श्री नरोत्तमदास
३५ सुदामाचरित संपादक श्री कालीदास कपूर
३६ सुदामाचरित संपादक श्री ललिताप्रसाद शुक्ल
३७ तुलसीदर्शन डा० बलदेवप्रसाद मिश्र
३८ कबीर-साहित्य का अध्ययन श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव
३९ सूरमुक्तावली सं० श्री हरदयालुसिंह
४० मीराबाई डा० कृष्णलाल
४१ भारतीय दर्शनशास्त्र डा० देवराज और डा० रामानन्द तिवारी
४२ त्रिवेणी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४३ कबीर श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
४४ हिन्दी साहित्य की भूमिका श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
४५ आलोचनांजलि श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी
४६ सिद्धान्त और अध्ययन श्री गुलाबराय
४७ नंददास भाग १ और २ श्री उमाशंकर शुक्ल
४८ नंददास डा० रामरतन भटनागर
४९ काव्यप्रदीप श्री पं० रामबहोरी शुक्ल
५० भक्त सूरदास सं० ठाकुर सूर्यनाथसिंह
५१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रकाशक वेंकटेश्वर प्रेस

मलयालम—

१ हरिनामकीर्तन कवि तुन्चत्तु आचार्य
२ अध्यात्मरामायणम ,, ,,
३ भारतम् ,, ,,
४ भागवतम् ,, ,,
५ चिन्तामन्तानम् ,, ,,
६ भगवत्गीता निरणम कवि
७ कृष्णाभागवतम् ,, ,,
८ भारतम् ,, ,,
९ कृष्णगाथा चेरुश्शेरी नम्पूतिरि
१० भाषा-नैषधचम्पू मलमङगलम
११ ज्ञानप्पाना पून्तानम नम्पूतिरि

१२ श्रीकृष्णकर्णामृतम् पुन्तानम नम्पूतिरि

१३ कुचेलवृत्तम् रामपुरत्तु वारियर

१४ साहित्यचरित्रम्, भाग १, आर० नारायण पणिक्कर

१५ „ „ भाग २ „ „

१६. „ „ भाग ३ „ „

१७ „ „ भाग ४ „ „

१८. „ „ भाग ५ „ „

१९ „ „ भाग ६ „ „

२० „ „ भाग १ उल्लूर परमेश्वरय्यर

२१ „ „ भाग २ „ „

२२ श्री वासुदेवस्तवम्, स० डा० पि० के० नारायण पिल्ला

२३ महाभागवतसार-संग्रहम्, गाणुमुट्टि मेनोन

२४ श्रीमहाभागवतम् दशमम्, स० पोरयन्नूर भास्करन नम्पूतिरि

२५ भगवद्गीता, स० पि० गोपा ली वी० ए० एम० एल०

२६ स्तोत्र-रत्नाकर-मालिका, स० के० के० पिल्ला

२७ प्रदक्षिणम्, डा० अच्युत मेनोन

२८ एकुनक्कुर, „ „

२९ „ पि० के० नारायण पिल्ला

३० „ आर० नारायण पणिक्कर

३१ कुचन-नम्प्यार „ „

४६ श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम्, टीकाकार देवस्व बोर्ड
४७ भजनकीर्तनमाला, भाग १, स० के० शकरन मूस्सत
४८ ,, भाग २, स० के० शकरन मूस्सत
४९ कण्णशन्मारु एजुत्तच्छन्‌ स० विद्वान्‌ के० इ० नारायण पिल्ला
५० पाट्टुकल, भाग १, योगक्षेमम्‌ कपनी
५१ मोहमुद्गरस्तोत्र, श्री शकराचार्य
५२ वाललीला, कवि अज्ञात
५३ कृष्णलीला रामक्रीडा स० कोलत्तेरि शकर मेनोन
५४ चेरुश्शेरी-भारतम्‌, श्री चेरुश्शेरी
५५ प्रेमसोपानम्‌, वि० आर० एन० कयूमल
५६ भारतम्‌ इरुपत्ति नालुवृत्तम्‌ श्री कुचन नप्यार
५७ ,, पतिन्नालुवृत्तम, श्री कुचन नप्यार
५८ पत्तुवृत्तम्‌, प्रकाशक श्रीराम विलासम्‌ प्रेस
५९ मद्दीप श्री कुचि रामन्‌ नायर
६० भाषा चपू स० उल्लूर, एस० परमेश्वरय्यर

पत्र-पत्रिकाए—

१ माधुरी
२ सरस्वती
३ अवन्तिका
४ कल्याण
५ कल्पना
६ नागरी प्रचारणी (खोज रिपोर्ट)

अग्रेजी की पुस्तकें—

१ अरली हिस्टरी आफ वैष्णविज्म इन साउथ इण्डिया
२ वैष्णविज्म, शैविज्म, एण्ड मैजर रिलीजियस सिस्टम्स
३ स्यानरीज लिटरेचर
४ वैष्णव फथ मवमट

० ० ०